



भारतीय  
स्वतन्त्रता-आन्दोलन  
का  
इतिहास  
(पहला खण्ड)



# भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन का इतिहास

(पहला खण्ड)

लेखक  
ताराचन्द

भूमिका-लेखक  
हुमायू कबीर



प्रकाशन-विभाग  
सूचना और प्रसारण-मंत्रालय  
भारत-सरकार

वर्षाख 1887

मई 1965

मूल्य 6 रुपये

निदेशक प्रकाश विभाग पुराना मन्दिबन्धन दिल्ली 6 द्वारा प्रकाशित  
और प्रबन्धक भारत-संस्कार-मुद्रणालय फरीदाबाद द्वारा मुद्रित ।

मानव-इतिहास की सम्पूर्ण धारा यहीं, सिद्ध करती है कि शाक्त और श्रेष्ठता दोनों ने सदैव पान का अनुसरण किया है। यह मानव की सीखने की क्षमता ही थी, जिसने उसे समस्त प्राणियों में सर्वोपरि बना दिया। मनुष्यों में भी श्रेष्ठता उन्हें ही प्राप्त हुई, जिनमें पानाजिन और उसके उपयोग की क्षमता सर्वाधिक थी। पुराने जमाने में पुरोहिता और तान्त्रिकों ने श्रेष्ठतर पान के ही माध्यम से अपना प्रभुत्व स्थापित किया था और एक मूल्यवान रहस्य के रूप में उसे गोपनीय रखने की चेष्टा की थी। उन्होंने यह नहीं समझा था कि पान को छिपाने अथवा सीमाबद्ध रखने का प्रयत्न व्यर्थ है और इससे अन्ततः पान, श्रेष्ठता तथा शक्ति का ह्रास होता है। भारतीय इतिहास में ऐसे विद्वानों ही दृष्टान्त हमें मिलते हैं, जब कुछ विशिष्ट बगों एवं श्रेणियों तक ही पान के सीमित हो जाने के कारण लोगों को भारी मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं।

भौतिक सम्पत्ति के विपरीत, पान दान और वितरण के माध्यम से बढ़ता है। हालांकि औरगजेव का दृष्टिकोण कितने ही क्षेत्रों में अत्यन्त सकील था और यह अनन्यता के भाधार पर अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयत्न करता था फिर भी वह उन चन्द भारतीय सम्राटों में से एक था, जिन्होंने सत्ता को स्थिर रखने के साधन-रूप में पान के महत्त्व का समझा था। एक बार एक विद्वान् ने जब इस आधार पर उससे विशेष व्यवहार पाना चाहा कि उसने उसे पढ़ाया था तब औरगजेव ने इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा— यदि आपन मुझे वह दान पढ़ाया जाता, जो मानस को युक्ति युक्त बनाता है और जो अत्यन्त ठोस तर्कों के बिना आश्वस्त होने की सीध नहीं देता यदि आपने मुझे मानव-स्वभाव से परिचित कराया होता मुझे श्रेष्ठतम सिद्धान्तों के प्रयोग का अध्यासी बनाया होता, यदि आपन मुझे ससार और उसके अंगों की व्यवस्था तथा नियमित गति का उल्लेख और समुचित परिचय दिया होता, तो मैं आपका उससे भी अधिक आभार मानता जिनका सिकन्दर अरस्तू का मानता था।” औरगजेव ने यह भी घोषणा की कि एक ज्ञानक के लिए यह आवश्यक है कि वह 'ससार व प्रत्येक राष्ट्र की विशिष्टताओं की, उसके प्राकृतिक साधन और शक्ति की, उसके नडाई के तरीकों की उनके आचार-व्यवहार धर्म और प्रशासन प्रणाली की जानकारी रखे।' वह जानना था कि किसी भावी राजा के प्रशिक्षण का एक अंग यह भी है कि वह ऐतिहासिक अध्ययन की एक नियमित प्रक्रिया के द्वारा राज्या के उद्भव उनकी प्रगति और उनके पतन की तथा उन घटनाओं दुघटनाओं अथवा भूतों की जानकारी प्राप्त करे जो महान् परिवर्तन और शक्तिशाली क्रान्तियों को जन्म देती हैं।”

औरगजेव की बौद्धिक क्षमता तो अमन्दिग्ध थी ही इसके अतिरिक्त यदि उसे वैसा प्रशिक्षण भी मिला होता और उसने यह सीखा होता कि राष्ट्रों की प्रगति और उनकी सम्पन्नता सभी नागरिकों को धर्म जाति राजनीतिक मत अथवा सामाजिक स्तर का भेदभाव किए बिना समान न्याय प्रदान करने पर निर्भर करती

है तब भारतीय इतिहास का क्या रूप होता इसकी कल्पना भी अत्यन्त रोचक है। जो भी हो उसकी इस धारणा को तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि मानवीय विषयों के प्रशासन की जिम्मेदारी जिन पर है उनके लिए उन मूलभूत सिद्धान्तों का ज्ञान अनिवार्य है, जो राज्या के उत्थान-यतन तथा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रियाओं का नियमन करते हैं।

ऐसे ऐतिहासिक अध्ययन का महत्व आधुनिक युग में और भी बढ़ गया है और वह स्वयं मानव के अस्तित्व की जरूरी शर्त बन गया है। सत्सर् की वर्तमान लोक-तान्त्रिक व्यवस्था में—यह बात बहुत हद तक उन क्षेत्रों के लिए भी सच है जहाँ विधिवत् लोकतन्त्र नहीं है—देश की नीतियाँ और उसके नागरिकों की जिम्मेदारी हर व्यक्ति पर आती है। फिर विज्ञान और टेक्नोलॉजी की प्रगति ने विभिन्न देशों के भाग्य को जो परस्पर बाध दिया है उसके चलते आधुनिक मनुष्य का उत्तरदायित्व उसके अपने देश की सीमाओं से भी आगे पूरे विश्व तक विस्तृत हो गया है। चूँकि किसी एक देश में घटनेवाली घटना का सभी देशों पर असर होता है, इसलिए आज के नागरिक को मानव-जाति के भाग्य की चिन्ता प्राचीन युगों के राजाओं और राजकुमारों के मुकाबलें बड़ी अधिक रहती है। औरगजेब ने महसूस किया था कि इतिहास की शिक्षा राजाओं के लिए आवश्यक है लेकिन आज भारत-जैसे लोक-तान्त्रिक गणराज्य के सभी नागरिकों के लिए ऐसी शिक्षा अनिवार्य हो गई है।

1. समग्र दो-शताब्दी तक एक विदेशी सत्ता के अधीन रहने के कारण भारतीय जातियों के उत्थान-यतन के कारणों के प्रति जागरूक हो गए हैं। धीरे-धीरे उन्होंने सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त की, और फिर जो सबकुछ उन्हें प्राप्त हुआ है उसे काम में लाया ताकि पहलेवाली दुःखद गाथा की पुनरावृत्ति न हो पाए। इससे अतिरिक्त जिस तरह भारत ने अपनी स्वतन्त्रता खोई और जिस तरह उसने उसे पुनः पाया उसमें कुछ असाधारण तत्व थे जिनके कारण उसका इतिहास सारे सत्सर् के लिए भारी महत्त्व का बन जाता है। विशेष रूप से, महात्मा गांधी-द्वारा विकसित अहिंसात्मक संघर्ष की प्रणाली मानवीय सम्बन्धों की दुरहलतम समस्याओं में से एक का समाधान प्रस्तुत करती प्रतीत होता है। अब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय ऐतिहासिक अभिलेख-आयोग का जो पहली बैठक हुई, उसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि भारतीय स्वाधीनता-ग्राम के विभिन्न चरणों का एक-प्रामाणिक और विलुप्त इतिहास लिखा जाए। दिवंगत भोलानाथ अवुल कलाम आज़ाद ने इस प्रस्ताव का तत्काल स्वागत किया और आदेश दिया कि इस कार्यन्वित करने के लिए अविनाशक काम उठाए जाए।

कुछ लोगों का विचार था कि यह काम एक सरकारी अभिवरण के माध्यम से पूरा कराया जाए पर शास्त्र ही यह अनुभव कर लिया गया कि ऐसे अभिकरण सम्भवतः इस प्रयास के लिए उपयुक्त नहीं। कारण, प्रथमतः किसी भी सरकारी संस्था के लिए सामाजिक है कि वह तत्कालीन सरकार के विचारों और मताओं को प्रतिबिम्बित करे जबकि राष्ट्रीय हिता और ऐतिहासिक तथ्यात्मता की दृष्टि से भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन के इतिहास को वस्तुनिष्ठ तथा निष्पक्ष माना चाहिए। दूसरी बात इस इतिहास की सामग्री पूरे देश में बिखरी पड़ी है और बहुतों के हाथों में है।

जिन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था। एक सरकारी संस्था, अपनी परम्परागत पद्धतियों से ऐसे लोगों के पूर्वाग्रहों एवं सनका के साथ पटरी बिठाते हुए उनसे जानकारी प्राप्त कर सकेगी, यह बात सन्दिग्ध प्रतीत हुई। इसीलिए यह आवश्यक हो गया कि सरकारी और निजी अभिलेख-संग्रहालयों में तथा संग्राम के परवर्ती चरणों में सक्रिय भाग लेनेवाले लोगों के पास पड़ी विशाल सामग्री को इकट्ठा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किया जाए।

पहले कदम के रूप में, भारत-सरकार क तत्कालीन शिक्षा-परामर्शदाता डाक्टर तार चन्द की अध्यक्षता में प्रतिष्ठित विद्वानों की एक विशेष-समिति बनाई गई। इसकी प्रधान कर्तव्य-सीमा थी—सामग्री के संग्रह-कार्य को संगठित करने के लिए उपाय तथा तरीके प्रस्तावित करना और इतिहास तैयार करने के लिए अन्य व्यवस्थाएँ करना। समिति ने सिफारिश की कि इतिहासकारों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं से निर्मित एक केन्द्रीय मण्डल के अतिरिक्त, देश के विभिन्न भागों में समान पद्धति पर ही प्रादेशिक समितियाँ भी बनाई जाएँ। अतः, डा० मयद महमूद की अध्यक्षता और श्री एस० एन० घोष के सचिवत्व में एक केन्द्रीय सम्पादन-मण्डल गठित किया गया। जनवरी 1953 में इस मण्डल का पहला बैठक में भाषण करते हुए मौलाना आजाद ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास का वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के कारण यह सम्भव भी था और आवश्यक भी कि भावावेश से बचा जाए क्योंकि भावावेश निष्पक्षों का विरुद्ध करता है और विरुद्ध निष्पक्षों पर आधारित कार्य राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल होगा। उन्होंने यह भी सक्त दिया कि यद्यपि मुख्य रूप से यह राजनीतिक संघर्ष का ही इतिहास होगा, तथापि इसे साहित्य, शिक्षा, समाज-सुधार और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास-नैसर्गिक क्षेत्रों में हुए राष्ट्रीय जागरण को भी उचित महत्त्व देना चाहिए।

मण्डल ने तीन वर्ष तक काम किया और अपनी प्रादेशिक समितियों की सहायता से भारत में राष्ट्रीय जागरण के लगभग प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित सामग्री बड़ी मात्रा में एकत्र की। उसने न केवल केन्द्र और राज्यों के सरकारी अभिलेख-संग्रहालयों तथा राष्ट्रीय और न्यायोपरीक्षा-संग्रहालयों का उपयोग किया बल्कि विभिन्न राजनैतिक मतवालों ने सम्बन्ध रखनेवाले और विविध सामाजिक तथा आर्थिक विचारधारावाले लोगों के भी बहुरूप प्राप्त किए। सामग्री का यथासम्भव व्यापक बनाने के प्रयास में उसने भारत से बाहर के सूत्रों से भी सम्पर्क स्थापित किया।

इस प्रकार मण्डल ने बड़ी उपयोगी सेवा की पर शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि अस्थायी तौर पर बनाई गई एक तदर्थ सम्या आवश्यक सामग्री एकत्र करने के कार्य का पूरा नहीं कर सकती—पूरी सामग्री को चुन छांट कर और एक सूत्र में पिरो कर एक भंडार, इतिहास तैयार करने की ता बात दूर। विद्वान् इतिहासज्ञ और सक्रिय राजनीतिज्ञ दोनों ही इसमें सम्मिलित थे और सामग्री के संग्रह-काल में ही उनके दृष्टिकोण का पाथक्य स्पष्ट हो गया था। फिर, जब संग्रहित सामग्री की व्याख्या करने का समय आया, तब ये मतभेद और भी स्पष्ट हो गए। अतः तब निर्धारित गया कि लोगों के संग्रह का कार्य राष्ट्रीय अभिलेख-संग्रहालय को सौंप दिया जाए और सामग्री की व्याख्या करने और इतिहास लिखने का कार्य किसी एक प्रतिष्ठित विद्वान् के सुपुंज कर दिया जाए। तदनुसार ही— डा० ताराचन्द को, जो आरम्भिक स्तर पर आयात-समिति के अध्यक्ष थे और जिनमें



इस काय को करने की विशेष सामर्थ्य थी, सामग्री का चुनाव करने और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास तयार करने का काय सौंपा गया।

जसा कि पाठक स्वयं ही देखेंगे डा० ताराचन्द ने एक विशाल और कल्पनाशील दृष्टिकोण अपनाया है और न केवल ब्रिटिश शासन के आगमन के समय की भारत की दशा का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है बल्कि भारतीय और यूरोपीय इतिहासों का तुलनात्मक अध्ययन भी पेश किया है, जिससे विचाराधीन कालावधि में ब्रिटेन की प्रगति और भारत के पतन के कारणों पर हमारा ध्यान जा सके। उनका विषयोपचार वस्तुनिष्ठ तथा ऐतिहासिक है और उन्होंने राष्ट्रीय अथवा जातीय पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर नहीं बल्कि ऐतिहासिक मानदण्ड के अनुसार प्रशंसा और निन्दा प्रदान की है। विश्लेषण और मत एकमात्र उनके हैं। हो सकता है कोई उनके सभी निष्कर्षों और मतों को स्वीकार न करे पर मेरा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि उहान तथ्या का उपयोग बड़ी कुशलता और कलात्मकता के साथ किया है।

भारतीय स्वाधीनता के विलय और पुनः प्राप्ति की कहानी मानव इतिहास में अध्ययन का सबसे आवश्यक विषयों में से एक है। एक जाति को जिसका अतीत गौरवपूर्ण और शानदार था जिसने कला और हस्तशिल्प का अत्यन्त विकास किया था और जिसके पास लगभग असंभव मानवीय और भौतिक साधन थे, अपमान और पराजय का सामना केवल इसलिए करना पड़ा कि उसने न तो समाज के सभी स्तरों में राष्ट्रीय भावना का विस्तार किया था और न बाहरी दुनिया में हुई विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी की प्रगति के साथ अपना मेल रखा था। उसके पुनरुत्थान का आरम्भ तब हुआ जब पराजय की ग्लानि ने एक गूस्तर राष्ट्रीय जाग्रति पदा की ओर विदेशी शासकों ने महा के प्राचीन समाज में आधुनिक शिक्षा और विज्ञान की विस्फोटक शक्तियाँ प्रविष्ट करा दी। इस प्रकार जो उफान साया गया वह आज तक राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में समाहित है और सामाजिक संगठन तथा बौद्धिक चिन्ता शक्तियों में एक धार्मिक विश्वासों तथा आचारों में दूरगामी परिवर्तन ला रहा है। जब राष्ट्रीय जागरण के चलते राष्ट्रीय आत्मसम्मान कापस आया तब भारत पुनः स्वतन्त्र हो गया यद्यपि इस प्रक्रिया में द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में पलित होनेवाली विश्व की हलचल न भी उसकी स्वाभाविक सहायता की।

यह निराय विद्या गया है कि भारत में स्वतन्त्रता-आन्दोलन की कहाली तीन खण्डों में बँटा जाये और प्रत्येक खण्ड में चार सौ से पांच सौ तक पृष्ठ हों। पहले खण्ड का प्रकाशन आज—ब्रिटिश आधिपत्य को अनिवाय बना देनेवाली पानीपत की तीसरी लड़ाई के दो सौ वर्ष बाद—किया जा रहा है। आरम्भिक युग में भारतीय जाति के जीवन और इतिहास को आकार देनेवाली ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में अठारहवीं सदी के भारत की सामाजिक राजनीतिक सामूहिक और आर्थिक अवस्थाओं का ज्ञान एक खण्ड में किया गया है। यूरोप में आधुनिक युग सानेवाले विकास क्रमों का भी एक विहंगम चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है ताकि अपभ्रूत रूप में भारतीय समाज पर पड़े परिष्कृत का नए गतिकारण का प्रभाव का समझा जा सके।

इतना विशाल काय अनन्य सरकारी और गैर-सरकारी समस्याओं तथा भारत में और भारत के बाहर रहनेवाले स्त्री-शुल्का के महयाग के बिना पूरा नहीं किया जा सकता था। इस राष्ट्रीय काय की पूर्ति में महयायना प्रदान करने के लिए हम उन सबके कृतज्ञ और ऋणी हैं। इससे भी अधिक हम डा० ताराचन्द और उनके सहयोगियों के ऋणी हैं।

जिन्होंने बड़ी लगन और सावधानीपूर्वक इतनी विशाल सामग्री का चुना छाटा और उन सिद्धांतों को खोजा जिन्होंने इस सन्नमणमूलक किन्तु प्रातिकारी काल में भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों को चित्रित करनेवाली विविधतामूलक और यदा-कदा परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों का एक दिशा और एकता प्रदान की है।

नई दिल्ली,

26 जनवरी 1961

—हुमायूँ खबीर

## श्रामुख

स्वतन्त्रता-आन्दोलन का इतिहास लिखने के सिलसिले में मुझे कितनी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस इतिहास का आरम्भ कहाँ से हो? एक उत्तर था 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से। लेकिन कांग्रेस तो एक विकासशील राष्ट्रीय आन्दोलन की संगठित अभिव्यक्ति थी और राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास बनाए बिना कांग्रेस के जन्म के कारणों और परिस्थितियों को स्पष्ट कर सकना असम्भव था। तब, राष्ट्रीय चेतना क्या पदा हुई? 1857 की शान्ति की लपटों में या उससे भी पहले? अब, यह ज़रूरी हो गया कि राममोहन राय तब लाटा जाए। लेकिन राममोहन राय तो ब्रिटिश विजय के प्रभाव की उपज थे। अतः इस निष्पत्ति से अलग जाना सम्भव नहीं था कि उस प्रभाव का स्वरूप का अध्ययन और स्पष्टीकरण अत्यन्त आरम्भिक अवस्थाओं से ही किया जाना चाहिए।

एक दूसरे प्रश्न का उत्तर दे सकना इससे भी कठिन था। मुझे न सिर्फ स्वाधीनता प्राप्ति की कहानी कहनी थी, बल्कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन का इतिहास लिखना था। स्वाधीनता एक सकारात्मक धारणा है। इसका अर्थ है, पराधीनता की अनुपस्थिति। इसमें कोई सकारात्मक अर्थ-बोध नहीं है। यह विदेशी आधिपत्य को उलट कर राजनीतिक प्रभुसत्ता प्राप्त करनेवाले समाज के गुण-चरित्र की ओर कोई संकेत नहीं करती। स्वतन्त्रता विदेशी नियन्त्रण का अनुपस्थिति-भाव से कहीं अधिक कुछ है, कारण इसका तात्पर्य उम्र समाज से है, जिसमें कुछ सकारात्मक गुण भी हैं—अघात, जनता की इच्छा, अनुसार अपने मामला का व्यवस्थित करने की सामर्थ्य और अपने सब सदस्यों को स्वतन्त्रता और समानता प्रदान करनेवाली लोकतान्त्रिक जीवन पद्धति प्रदान करना।

अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश हुम्नक्षय के फलस्वरूप भारत ने अपनी स्वाधीनता खो दी। किन्तु नगमन दो शताब्दों के ब्रिटिश सारक्षण में ही उसने पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। अब इससे सम्बद्ध दो प्रश्न उत्पन्न हुए। भारत ने अपनी स्वाधीनता क्यों खो दी और भौतिक तथा नैतिक अर्थों में इस हानि के क्या परिणाम निकले? दूसरे भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति का योग्य क्यों बना? यूरोप स्वाधीनता से स्वतन्त्रता तक प्रगति कर चुका था और यह यात्रा उसने एक हजार वर्षों में अर्थात् रोमन साम्राज्य के प्राप्ति में ट्यूटानिका के खाना के बस जाने से लेकर अठारहवीं सदी तक की अवधि में तय की थी। लेकिन विश्व आधिपत्य और शासन का अनुभव उसने कभी नहीं किया था। दूसरी ओर गवशासन तब पञ्चानवानी कष्टसाध्य यात्रा पर निकलने से पहले भारत को अपनी प्रभुसत्ता खो देना पड़ा था और यूरोप-द्वारा लिए गए समय के पाचवें हिस्से में ही उसे यात्रा का अन्त पड़ाव तय करने पड़े।

मैं मानता हूँ कि आज-कल भारत में हुआ उसका व्याख्या के लिए मुझे सन्तोष में हाँ मही। पश्चिम का अनुभव पर प्रमाण बनना चाहिए। इसीलिए भारत की स्वतन्त्रता की कहानी का भूमिका का रूप में बने पराग में हुई प्रगति के इतिहास का सार-सत्व देना का प्रयत्न किया है।

भारत-द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति एक चमत्काररूप घटना है। यह एक सम्पत्ता का एक राष्ट्रीयता में रूपान्तर है। यह राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की स्थापना के माध्यम से राष्ट्रीयता की पूर्णता है। अपनी प्रगति के पूरे माग में यह जितना अन्य की हिंसा के विरुद्ध एक आन्दोलन रहा, उतना ही अपनी असंगतियों के खिलाफ एक आवाज भी। मतलब यह कि विदेशिया और स्वयं अपने सागा, दोनों के मन्दम में यह एक नैतिक सघष था। और, जहाँ हर जगह ऐसे सघष रक्तपात से परिपूर्ण रह हैं, वहाँ भारतीय आन्दोलन अत्यन्त नीत्र और यातनाआ से ओतप्रोत होते हुए भी अहिंसक बना रहा।

स्वतन्त्रता का इतिहास एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। इसका पहला चरण उस सीमा तक प्रतिपत्तात्मक था जहाँ तक वह प्राचीन व्यवस्था के विनाश का आग्रही था। यह उस प्रक्रिया का प्रतिपादन है, जो अठारहवीं सदी के मध्य में आरम्भ हुई और सन् 1857 के विप्लव में जिनकी परिणति हुई। दूसरा चरण है एक नई व्यवस्था का उद्भव, जिसने सन् 1857 के बाद की आधी शताब्दी में क्रमशः जोर पकड़ा। तीसरा चरण है, प्राचीन एवं नवीन व्यवस्थाओं की तथा पूर्व एवं पश्चिम की भावनाओं के सघष और सगम का और भारत राष्ट्र नामक एक नई इकाई के ससार में प्रवेश पाने का।

एक द्वन्द्वात्मक विषय-वस्तु का मैं तीन चरणों में प्रस्तुत किया है जिनमें से यह पहला चरण विवेचन के प्रथम अंश से सम्बन्ध रखता है।

भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन का इतिहास लिखा जाए—यह विचार प्रथमतः भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री दिवंगत मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के मन में उठा था। मौलाना आज़ाद में एक विद्वान् तथा राजनीतिज्ञ का और पुरानी दुनिया की परिष्कृति तथा सस्कृति एवं स्वतन्त्रता और प्रगति के लिए, आधुनिक उत्पत्ता का एक दुतम सम्मिश्रण था। अपने जीवन का बड़ा भाग उन्होंने सघष में बिताया। इस उद्देश्य की बेदी पर उन्होंने अपना सब-कुछ अर्पित कर दिया। अपनी सारी शक्ति—अपनी अद्वितीय वकूता अपनी सन्तुलित निगम-श्रमता अपने विवेकपूर्ण परामर्श, अपनी उदार दैर्घ्य, अपनी तीव्र लगन, अपना आत्ममन्मान, अपना आदर्शवाद, सब-कुछ—उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता की बत्ती पर न्योछावर कर दी। फिर भी, प्रचण्ड सघषों और चैन की शमिज अवधिया के बीच पान के प्रति अपने अनुराग को उन्होंने कभी नहीं त्यागा। उनकी स्मरणशक्ति बड़ी अशुभ थी और उनका मस्तिष्क उदू, फारसा जखी आदि कितनी ही भाषाओं की कविताओं का किन्ते ही दगा व इतिहास का एवं धार्मिक कथाओं का खजाना था। अपनी पुस्तक के बीच बैठ कर अपना साहित्यिक कार्यों में व्यस्त रह कर उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता होती थी। भारत की स्वतन्त्रता उनका काम्य थी और उनकी उपलब्धि के बाद उसकी कहानी कहना उनका जनि प्रिय इच्छा।

मुझे शिक्षा-मन्त्रालय में लगभग चार बरस तक उनके साथ काम करने का सौभाग्य मिला था और इतिहास में मेरी शक्ति से वह परिचित थे। अतः यह काम हाथ में लेने के लिए जब उन्होंने मुझसे कहा तब मैंने प्रसन्नता से इन स्वीकार कर लिया। मैं उनका आभारी हूँ कि उन्होंने यह काम करने का अवसर मुझे दिया जो कि मुझे हृदय से प्रिय है। उन्होंने तीन विद्वानों—डा० बी० जी० दिग्ग, डा० आर० के० परमू तथा डा० बी० एम० भाटिया—का सहयोग मेरे लिए उपलब्ध कर दिया। इन सहने वैदिक और पूरे अनुराग से काम किया है। इस पुस्तक को लिखने में इन्होंने उल्लेखनीय योगदान किया है और इस चरण को पूरा करने में इनसे प्राप्त अमूल्य सहायता के लिए मैं इन सबका

आमारी हूँ । बगानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक मामलों के मन्त्री श्री हुमायूँ कबीर को भी मैं उनकी सहायता के लिए धन्यवाद देता हूँ । इस काय में उन्होंने जो रुचि और उत्सुकता लिखाई, उसकी मैं बद्र करता हूँ क्योंकि यदि वह इसमें रुचि न लेते तो कितनी ही बठिनाइयाँ को विशेषकर प्रकाशन-सम्बन्धी कठिनाइयों को हल करना सम्भव न होता । मैं भारत के राष्ट्रीय अभिलेख-संग्रहालय के निदेशक और बलवत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष मैं प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपने अभिलेखों एवं पुस्तकों के अध्ययन की सहज अनुमति मुझे प्रदान की ।

नई दिल्ली,

—ताराचंद

5 जनवरी 1961

## विषय-सूची

	पृष्ठ
दो शब्द	5
आम्रुष	10
भूमिका	15
पहला अध्याय	
मुगल-साम्राज्य का पतन और विनाश	52
दूसरा अध्याय	
अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक गण्डन	73
तीसरा अध्याय	
भारत की राजनीतिक प्रणालियाँ	120
चौथा अध्याय	
अठारहवीं शताब्दी में आर्थिक परिस्थितियाँ	162
चिंथा अध्याय	
सांस्कृतिक जीवन—शिक्षा, कला और साहित्य	186
छठा अध्याय	
भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना	211
सातवाँ अध्याय	
अंग्रेजी प्रशासन का विकास—1793 तक	252
आठवाँ अध्याय	
अंग्रेजी प्रशासन का विकास—1793 म 1857 तक	289
नौवाँ अध्याय	
अंग्रेजी शासन के सामाजिक और आर्थिक परिणाम श्रमीण अप-व्यवस्था का विघटन	315
दसवाँ अध्याय	
अंग्रेजी शासन के सामाजिक और आर्थिक परिणाम व्यापार और उद्योग का ह्रास	334

1

# भूमिका

## 1 सिंहावलोकन

अठारहवीं शताब्दी में भारत पर ब्रिटेन का प्रभुत्व जन्म गया। भारत के इतिहास में लगभग पहली बार ऐसा हुआ कि इसके प्रशासन और भाग्य निणय की डोर एक ऐसी विदेशी जाति के हाथों में चली गई, जिसकी मातृभूमि कई हजार मील दूर अवस्थित थी। इन तरह की पराधीनता भारत के लिए एक सवया तथा अनुभव थी, क्योंकि या तो अतीत में भारत पर कई आक्रमण हुए थे और समय-समय पर भारतीय प्रदेश के कुछ भाग अस्थायी तौर पर विजेताओं के उपनिवेशों में शामिल हो गए थे, पर ऐसे अवसर कम ही आए थे और उनकी अवधि भी अल्प ही रहती थी। उदाहरण के लिए ईरान के अकमिनियन साम्राज्य में भारत के सीमान्त प्रदेश शामिल थे और सिन्धु घाटी में बर बनूला जाता था, कुषाणा ने कश्मीर और उत्तर-पश्चिमी भारत को जीत लिया था और एक शताब्दी से भी अधिक समय तक वे इन प्रदेशों पर शासन करते रहे थे। पल्लवों, शका और हूणों की भी घुसपैठ अल्पकालीन ही सिद्ध हुई थी। गजनेवी उपनिवेश में पञ्जाब सम्मिलित था और सिन्धु पर अरबा का शासन था। अस्थायी शासन की इन घटनाओं के अलावा भारत को कई आक्रमणों का भी सामना करना पड़ा था, किन्तु आक्रान्ताओं के वे तूफानी अभियान इस दशक के कुछ ही समय तक रौंदने के बाद आगे बढ़ गए थे। इनमें प्रमुख थे सिकन्दर, तैंग, नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली। जिन विजेताओं ने भारत के अधिकांश पर स्थायी साम्राज्य स्थापित किए, वे थे— आरम्भिक मध्य-युगों में तुर्क और बाद में चंगतार्ई मुगल।

उत्तर-पश्चिमी भारत पर शासन करनेवाले कुषाण विजेता पूरा तरह भारतीय बन गए थे। उन्होंने भारतीय धर्मों भारतीय भाषाओं और भारतीय रीति रिवाजों को अपना लिया था। वे भारतीय समाज में घुल मिल गए थे। लेकिन अफगानिस्तान तथा मध्य-एशिया से आनेवाले आरम्भिक मुसलमान विजेताओं का इतिहास इनसे भिन्न रहा। महमूद गजनेवी, शहाबुद्दीन गोरी अथवा बादर के बाद जो मुसलमान सैनिक तथा सेनापति, विद्वान् तथा व्यापारी भारत आए उन्होंने शका, कुषाणा और हूणों के विपरीत भारत में अपने पृथक् व्यक्तित्व का मिटने नहीं दिया। वे अपने धर्म पर तो दृढ़ रहे ही अपनी सभ्यता के अधिकांश को उन्होंने ज्वाला-वाल्या रखा, लेकिन इस दशक में स्थायी रूप से बसने का उन्होंने निश्चय किया। अपने विदेशी मूल के होने से उन्होंने सम्बन्ध विच्छेद किया और भारतीयों के साथ अपना भाग्य जोड़ा। जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं ने उन्हें अपनी प्रजा के साथ अधिकाधिक सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने को विवश किया। नए वातावरण के अनुसार और प्रशासन के हित में, उन्होंने शासन और व्यवस्था-सम्बन्धी अपनी मायनाओं में भी परिवर्तन किए। अपने कितने ही विदेशी सैनिकों को उन्होंने त्याग दिया और भारतीय जीवन तथा सभ्यता के तत्त्वों को ग्रहण किया। एक नए धर्म के आ जाने से धार्मिक क्षेत्र में भारत समृद्ध हुआ और नए तत्त्वों के समाहित होने से उनकी उद्गम मन्थना में और विविधता उत्पन्न हुई।



इस प्रकार यद्यपि मुस्लिम आधिपत्य के कारण भारत के प्राचीन समाज में कुछ राजनातिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आए तथापि उसकी प्राचीन संस्कृति का आधार और स्वरूप बहुत कुछ ज्वा-वा-स्था रहा । भारतीयों ने तबागन्तुवा को काफी-बुछ लिया और बन्ने में बहुत-बुछ प्राप्त किया । उन्होंने विजेताओं-द्वारा प्रचलन में लाई गईं नई सामाजिक पद्धतियां सीखीं । बट्टर एकेश्वरवादी और समतावादी समाज पर बल बनवाने इस्लाम धर्म का प्रभाव ने कतिपय प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कीं और हिन्दू धर्म तथा सामाजिक पद्धतियों में एक आलोटन पया हुआ जिसके फलस्वरूप दोनों पक्षा के दृष्टिकोण तथा रीतियों में समन्वय स्थापित हुआ । मुसलमानों की भाषाओं और साहित्यों ने हिन्दुओं की भाषाओं और लेखन पर व्यापक प्रभाव डाला । नए शब्द मुहावरों और साहित्यिक विधाओं ने इस देश की धरती में जड़े जमाई-जार नए प्रतीक तथा धारणाओं ने उनकी विचार शक्ती का सम्पन्न किया । एक नई साहित्यिक भाषा विकसित हुई और किन्ती ही मध्ययुगान् भारतीय भाषा बोलिया आधुनिक साहित्यिक भाषाओं के रूप में प्रस्फुटित हुई । वास्तु-कला चित्र-कला और संगीत-कला के साथ साथ जय बराधा में भी भारी परिवर्तन आए और ऐमा नई शक्तियां ने जन्म लिया जिनमें दोनों का ही सत्य विद्यमान थे । तरहवी शताब्दी में यन् जो प्रक्रिया आरम्भ हुई वह पाच सौ वर्ष तक चलती रही ।

सोलहवीं शताब्दी में बाबर ने अफगान-वंशीय लोदी-परिवार को उलट दिया । उनके उत्तराधिकारियों ने भारतीय हितों का ही अपना हित माना और कुल मिला कर ऐसी नानियां का अनुसरण किया जिनके द्वारा राजनीतिक एकता और सांस्कृतिक सौमनस्य की प्रवृत्तियों को बन मिला । भारत के अधिकांश पर मुगल साम्राज्य का विस्तार के सुदूर-न्यापी परिणाम निकले । उनके चलते जातीय सरदारी प्रथा और कुलमुक्तार रियासतों का आत्मा हो गया । उन दोहरे आधिपत्यवाली राजनीतिक हवाइयां का भी जिनकी सत्ता को समय-समय पर मौय, कुपाण अथवा गुप्त-जैस साम्राज्यों ने सीमित किया था एक ऐसे साम्राज्य के संगठन में नम लिया गया, जिसका शासन सीधे केन्द्र में होता था । अर्द्ध-स्वतन्त्र बकीला के छोड़े-बहुत इलाक़े और सीमा पर विध्वंसि कुछ जागारणारियां तथा रियासतें हा बच रहीं ।

मुगल-सम्राट और उनके प्रमुख सामन्त कला तथा नाट्यिक व सुयोग्य सरदाय थे । ब्रह्म अथवा बगला मराठी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं का, जो परिष्कृत हिन्दू व और भक्ति-सम्प्रदाय (प्रेम और सेवा का धर्म) का वाहन बन चुकी थी राजराय प्रोसाहन प्राप्त था । सम्राट और उसके प्रांतीय सूबेदारों के दरबार कला और संस्कृति के केन्द्र बन गए थे । पहाड़ी प्रदेशों राजस्थान मध्य भारत और उत्तर में हिन्दू शासन मुगल व मराठा में विनमित शक्तियों का अनुसरण करते थे ।

मुगलों की राजनीतिक प्रणाली और भारत के सांस्कृतिक आदर्श उन सामाजिक आर्थिक आधार पर प्रतिष्ठित थे जो छाने मोटे परिवर्तनों के सिवा मधुन प्राचीन और मध्य युगान् द्रविड्य में अधिकांशतः सुन्दिर रहा । उनका आरम्भ सम्भवतः भारत में आर्यों के प्रारम्भिक निवास-काल में हुआ था ।

यह सामाजिक आर्थिक प्रवृत्तियां भारतीय इतिहास का एक उत्पत्तीय विगर्षण है । भारत के लोगों की बहुरंगी संस्कृति में जो एकरसता मिलती है,

उत्सव स्यात् यही है। उस प्रकार दशमि भारत में दत्त-मेधम, भाषाएँ और जातिवा  
हूँ तथापि जीवन का प्रति समका मूलमूल दृष्टिकोण सैकड़-हज़ारों वर्षों से एका  
रहा है। विभिन्न युगों ने महानुक्ति की नज़रों में वृद्धि के बावजूद उनमें एक विशेष  
भारतीयता रही है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि भारत का सामाजिक-आर्थिक  
टाका, निश्चय ही मन आर्थों के प्रथम आगमन का एक द्वापार पहुँचने का जायें  
भारतीयों को अपने में मित्र लेने में निहित है उन्नतता पताचौ तक बिना बिना  
मौलिक परिवर्तन के चला रहा। इनका वाग्य प्राप्त यह है कि यद्यपि के दिग्गज  
भारत का जातीय स्वयं एक बार जैसा बन गया वैसा बन गया जाग जागे कर  
उममें बहुत ही कम परिवर्तन हुए। यह स्वल्पनिर्माण उस समय हुआ जब प्रकृति  
आय भारत आए—गणद द का तथा में उट कर जाए और उन्होंने भारत का  
विभिन्न भागों पर अभिप्राय किया। हा प्रदा में क्या क मन निवानियों का विभिन्न  
प्रकार से और विभिन्न सट्टा में ग्रहण किया गया और इन प्रकार इन तथ्य-युक्त  
प्रयोग में अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाएँ स्थापित हुई। लेकिन आन्तक के साथ  
एन मय पर कमाव—ही और जा परम्पराएँ एक बार बन गये वे बाद के जातीय  
स्वानान्तरण तथा अन्य तद्वद्विजा के कारण बदन नहीं पाई। यह परम्पराएँ  
भारतीय जनता में जा, इविड और आदिवासी तत्वा के सम्मिश्रण का परिणाम  
थीं। चूँकि अन्धकार ज्ञान और स्यादा जाधिवय का जन-आधारण पर का  
उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पया, इसलिए परम्पराओं में कोई मूलमूल परिवर्तन नहा  
हुआ। बाद में एक नया जाट और गुरर जमी जानिया का आगमन मनुद म  
छोटी-छोटी उदरों में अधिक मिद न हा मया और ये जानिया उनका विभाजन म  
चो गई।

तेरहवीं शताब्दी में जब मुगलमान विजैनावा ने अपना साम्राज्य स्थापित  
किया तब भारत में एक नई सत्कृति न प्रवेश किया। तब प्राचीन और नवीन का  
मिलन हुआ और दाना का राव आगमन प्रदान हुआ। इस प्रक्रिया में एक उजिल स्थिति  
पदा हा गइ।

समाज के जातीय म्द आर्थिक आधार में अत्यय परिवर्तन हुआ। गाव  
सामुदायिक जीवन की आमनिभर इकाई के रूप में काम करना रहा। अद्याग आग  
ज्यागर में मक्यन जयका पद्धति-मन्वर्गी का मन मशासन नहीं हुआ और क  
ज्या-के-त्या करने रहे। हिन्दू और मुस्लिम-समाज का दा बगों—अधिकार-मन्वर्त,  
मुस्वामा और शासक-वग तथा प्रशासन-कार्यों में भाग नहीं लेनवाला अधिकार-  
शून्य मोन-वर्ग—में विभाजन कायम रहा। राजनैतिक प्रणाली में का अन्तर  
नहीं आया। प्रशासन और जनता का परस्पर दायनदाय मत्र रहन ही कम और  
उच्च वे कारण प्रशासन का काय-मत्र द्यन हा मौलिक था—प्रतिरक्षा के सयान  
न बार अन्ववस्था का करने के लिए एक सेना खणे करना और सेना का सच  
परा करने के लिए का उगात्ता। विधान-निर्माण नवे मन्वर्त स बाह था—समा  
प्रकार काय-मन्ववस्था का अधिन्याय थी। विधान-निर्मात्रा मन्वर्त ही नहा। शैवानी  
और ध्यक्रिया नामक जिक्रनर नै-मन्वर्त मन्वर्त-द्वारा निवृत्त जन थे।

जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है यद्यपि निम्न का क लोग अ-प्रतिरक्षा में डूबे  
रहे, वार बुद्धिजीवी-वग पर द्यन ही कम प्रभाव पया तथापि आगमन प्रदान दासा

हुआ। इस्लाम के प्रभाव से हिन्दुओं में नए मता और सम्प्रदायों ने जन्म लिया और उदारमना मुसलमान सूफियों तथा विद्वानों ने हिन्दुओं के दायजित सिद्धान्तों तथा आत्मसंयम की पद्धतियों को अपनाया। साहित्य और कला के क्षेत्र में, हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का बहुत अधिक सम्मिश्रण हुआ। लेकिन कानून के क्षेत्र में पारम्परिक आचान प्रदान बहुत ही कम हो पाया।

हा, सांस्कृतिक सामंजस्य अवश्य हुआ, पर एक राष्ट्रीय चेतना जगाने में वह असफल रहा, क्योंकि वंग और सम्प्रदाय जिन कठोर साक्षात् में जकड़े थे, उन्होंने उन्हें एक-दूसरे से मिलने नहीं दिया।

राज्य ने इस चेतना को बढ़ावा नहीं दिया और एक ही दंग में गाय-माय रहने के कारण जन-धर्मों में जो सम्पर्क पड़ा हुआ था, उसके सिवा ऐक्य भावना को बनाने के लिए सबत प्रयास बहुत ही कम हुआ। आर्थिक और सामाजिक विकास ने भी प्रादेशिक अनुराग अथवा व्यक्ति की ममत्त देशवासियों के साथ एकरूपता की भावना का बढ़ावा नहीं दिया।

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुगल-साम्राज्य का ढांचा चरमराने लगा और समय बीतने के साथ-साथ उसके पतन की गति तीव्र होती गई। केन्द्रीय सत्ता की दुबलता का शासन की आर्थिक स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा—राजस्व घट गया संचार-साधन लड़खड़ा गए और उद्योग व्यापार तथा कृषि को स्थानीय स्वरूप मिलने लगा। बन्द विरोधी शक्तियाँ हावी होने लगी, न्याय और व्यवस्था बिगड़ गई व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक नैतिकता हिल गई। साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए और विदेशी आक्रमणों तथा आन्तरिक शत्रुओं का मुकाबला करने की उसकी शक्ति टूट गई।

ठीक इसी सतक की घन्टी मंगरोपीय राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भारतीय मामला में हस्तक्षेप आरम्भ किया।

सन् 1498 में जब वास्को दि-गामा कालीकट के बन्दरगाह पर उतरा तब एशिया और यूरोप के सम्बन्धों में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। रोना महाद्वीप के बीच जो प्रतिस्पर्द्धिता प्राचीन काल से चली आ रही थी वह पन्द्रहवीं शताब्दी में स्पेहानी अन्तराष्ट्र संघर्षों के हट जाने और बाल्कन प्रदेश में तुर्कों के पुनः आगे बढने के साथ समाप्त हो चुकी थी। स्पेन और पुनगालवाना ने मुसलमानों का पीछा करते हुए समुद्र को छान मारा और पश्चिम की ईसाई शक्तियों को अबीसीनिया में स्ट्रेटर जान के बाल्पिनिय राज्य के साथ मिलाने का यत्न किया और इस प्रकार निरन्तर आगे बढ़ कर उत्तर-अफ्रीका और पश्चिम-एशिया के मुसलमानों को मुचलने का उपक्रम किया। अपने इन सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने अफ्रीका की जहूडी परिक्रमा की अरब-सागर को पार किया और वे भारत के पश्चिमी तट पर आ सगे।

पुनगामी साहसिकता के दूरगामी परिणाम निकले। प्रथमतः इमने तुर्कों और अरबी जहाजों को भारतीय समुद्रों से निवास बाहर किया और इस प्रकार अफ्रीका के अन्तर्देशों और अरबों से आने वाले भारत तथा पश्चिम-एशियाई पर्यटकों के बीच जा शान्तिपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध चलने आ रहे थे वे समाप्त हो गए। भारतीय आयात और निर्यात का सामान भारतीय और

एशियायी जहाज में लाया और ने पाया, माता था, बहु श्रम अब पुनगामी जहाज में बान-बान लगा जग भारतीय जहाजराती उद्या वा धातक जायात पुष्पा। दूसरी बात चूकि भारतीय नौकानयन सनात है गया, इसलिये दक्षिण-पूर्वी एशिया क माय भारत क मास्ट्रिक सम्बन्ध टूट गए और गा के प्रदय स परे बना सेलेकर इटानिया तक क सा भारतीय प्रभाव-क्षेत्र में बाहर हो गए। जिस भारतीय सस्कृति ने धार्मिक इज्जतीन जार इज्जतीन की गानग और जम्भूत उपनधियों को प्रसा दी थी जिसन मनाया मुनाजा जावा और पूर्वी द्वीप-समूह के द्वीप क पार तक पूरे विमान साम्राज्या क निनाग में नहापजा दा थी और जिसन इन प्रदेशो का एक नया धम और नई सम्पदा प्रगल की थी नया प्राति बचानक अवसद हा गई।

सबस बडी बात यह है कि पुनगामियों का भारतीय तट पर पाव रखना भावी का एक पूर्व-सकेत था। विज्ञान क नए आविष्कार, मानव की प्रतिष्ठा और समाज के सार के नए आदर्शों तथा भौतिक उन्नति और राष्ट्रीय शक्ति की नई कल्पनाओं से उत्प्रेरित हाकर एक पुनरज्जीवित और जाल-वित्त्वानयुक्त यूरोप क मध्ये में जूट पडा था बार उनसे पूर्व के सबसे समृद्ध दग के द्वारों का खटवदाना आरम्भ कर लिया था।

नविन अक्षर महान और धान शोक-सन्द पाहजहा का अपार वैभव समन अपनी बनाआ क लिए दूर-दूर तक विख्यात बार देनीपमान सस्कृतिवाना भारत अदारकी सग में पुष्प कर अपनी ताकत का चुका था। वह मुसल साम्राज्य के नाम-मात्र क प्रभु क नीचे गावों गतिपा या उपजातिया कबीला और तालुका का एक मध्य-युगीन खट निन्द-मात्र रहता था। भारत की अथ व्यवस्था कृषि-प्रधान थी उसका काय प्रगती अपना अपना पुरानी थी उनका सघटन मनुचित था उसका मय गुबार क ताकत बीजा का उत्सादन था। भारत का उद्या बटन छोटे पैमाने का था और उसका उद्योग या ता अमोरा क लिए बिलास-सामग्री बनाना था दा स्थानीय बाजार की मानवा उत्पत्ती का पूर करना। इसमें पूजा का योग्य बूट ही नाथ था। उनके विपरीत यूरोप समुद्र-पारतीय बाजार का विकास कर रहा था। वह अमेरिका म मान और चीन के खजान ला रहा था जिसन उद्योग और वाणिज्य का नवजीवन मिल रहा था। तेरी स दगा हुई पूजा क स्वाव में विनोदना का विनाल हा रहा था जो ध्यानायी एव वर मूल्याना तुनीन-वा पर छोटे जा रह थे। यूरोप क दिनाग का ज बयन-मुक्त कर रहा था और उसे नई छाजा तथा आविष्कारों क निग उतना रहा था वह उग्र वैधानिक आन्तन भारतीय बुद्धि क अपनी तक हावुगानही पाया था। भारत का सामाजिक आ व्यक्तिगत आचरण उन ससक्त भावनाओं स अनुभागत नहीं हुआ था जा यूरोप के सामन्तवाणी एव जरात्रक सनान का सुतारित टोन राष्ट्रा में स्थापनित कर रही थी। यूरोप में धम का दग समान हा रहा था और तक का दग द्योनी पर था, जब कि भारत के उच्चतम मनीषिया का दृष्टिकोन अभी तक परलारा नुय था और उनका सर्वोच्च आरागा थी परमत्रय क माय एकाकार हाना।

मत्रो गाना में मात्र का गारव अपनी परराष्ट्रा पर था और उसका मय-युगीन सस्कृति अपनी चरम सीमा पर पहुच गई थी। पर एक-दो-बाए-एक जडे-जडे सजातिया चीजें बिन-बस यूरोपीय सम्पदा का मय नेत्री से आकाय के मय की आ

बढ़ने लगा और भारतीय गणतंत्र में अप्रकार छातें लगा। फ्रान्स अल्पकाल ही देश पर अधेरा छा गया और नैतिक पतन तथा राजनीतिक अराजकता की परछाईया पड़ना होने लगी।

पुनः फ्रान्स ने अपने दूर-दूर तक फैले साम्राज्य का बनाए रखने के लिए बहुतेरे हाथ-पंज फेंके। लेकिन सन् 1580 में यह सब सोनी ताज के अधीन हो गया तब दोड़ में पीछे छूट गया। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में लगना था कि स्पेन समस्त सत्कार को अपने चरणों में मगुवा लगे। लेकिन उसरी मन्-जली अय-व्यवस्था और मगुचित धार्मिक बहुराज ने उन्ने परेशानी में डाल दिया। नीदरलैण्ड फ्रांस और इंग्लैण्ड-जैसे छोटे और युवा पर उत्साही देशों ने उसका सिर नीचा कर दिया। उन्होंने उन्ने जहाजी बेडा को समुद्र से निकाल बाहर किया और नेतृत्व अपने हाथों में ले लिया। धीरे धीरे नीदरलैण्ड ने भा दम तोड़ दिया और अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक मगान में बेवत दा प्रतिद्वन्द्वी—इंग्लैण्ड और फ्रांस—रह गए। आरम्भ में फ्रांस आगे चलता देखा। उसका नर और सशक्त नीतियों ने दक्षिण में उसने प्रभाव को सर्वोच्च बना दिया, लेकिन शीघ्र ही सन 1789 की क्रान्ति के मध्य में प्रकट हुई आन्तरिक विग्रह की परछाई समुद्र-भाग तक फल गई और भारत में फ्रांस के प्रतिनिधियों को अपने देश की सरकार से वह स्यामी सहायता नहीं मिल सकी, जिसके बिना अन्तिम विजय प्राप्त नहीं की जा सकती थी। सप्तवर्षीय युद्ध ने फ्रांस की महत्वावादाशा का अन्तिम रूप से कुचल दिया और मदान एकमात्र अण्डा के हाथ में आ गया।

अण्डा ने फ्रांस-द्वारा ईजाद किए गए तरीकों का सीख लिया था। उनके प्रयोग में वे उन्हें भी मान दे गए। उन्होंने भारतीय शासकों की कमजोरियाँ और मूढताओं का पूरा लाभ उठाया और स्वयं भारतीयों की सहायता से पूरे भारत के मालिक बन बैठे। उपनिवेश-स्थापना में जिम्मेदारियाँ निहित थीं। अण्डेज व्यापार करने लाभ बमाने आए थे। वे राम के छद्मन में आनवात शासकों का उपयोग नियत के लिए भारतीय मान के उत्पन्न और धरीद में बरन लग। वाणिज्य की और मालगुजारी उगाहने की बररना से प्रेरित होकर एक प्रशासन-यन्त्र का स्थापना की गई। इस प्रकार, एक मत्प्राय समान-मदति का भारी बोझ देनेवाला और फिर भी बला साहित्य दशन तथा धर्म की सम्पन्न पाली का स्वामी भारत विजेता, अठ्ठारी और प्रगतिशील उस क्रिटेन के आम्ने-आम्ने का पहूचा जो अपने नैतिक और भौतिक स्वरूप में एकदम आण्डित था।

पूरब और पश्चिम के मन् मितन स अदमृत परस्पर विरोधी परिणाम निबते— इंग्लैण्ड और अण्डेज का मिश्रण सामने आया। पहला नतीजा यह निकला कि भारतीय अय-व्यवस्था को ब्रिटेन की अय-व्यवस्था के अनुकूल बनना और डाला गया। राम हा बरीदी जनसंख्या और भूमि पर दबाव—में सब बह गए। एक विशाल भौतिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। दूसरा भारत का मस्तिष्क बहुत गहरे तक जादाजित हुआ। एक ओर तो गता में सत्त बरने की भावना पन् हुई और पश्चिम की भौतिक पद्धति को जानना गया, और दूसरी ओर पुनर्जागरण की प्रवृत्तियों का पन पित्त और पुनरा के गौरव का जगिमान पुष्प हुआ। पत्तन राष्ट्रीय चेतना का जगिमान अण्डेज के अदमृत निबते निबते स्वामी उत्तराजी तथा लोच-

तान्त्रिक राज्य रूप में स्वतन्त्रता प्राप्ति की कामना बलवती हुई। लेकिन इस जाग्रति के साथ ही दुर्भाग्यपूर्ण साम्प्रदायिक जावण आरवण भेद ने भी सिर उठाया। भारत वैदेशिक अधिपत्य से तो अतीत में भी लम्बी-लम्बी अवधिया तक मुक्त रहा था, पर स्वतन्त्रता एक नई धारणा थी। शायद एकदम नई धारणा भी यह नहीं थी, क्योंकि भारतीय दर्शन—हिन्दू, बौद्ध और मुस्लिम—आत्मा की आन्तरिक स्वतन्त्रता के विचार से परिचित था। बन्नुत स्वतन्त्रता इसका केन्द्रस्थ भाग था। फिर भी, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में स्वतन्त्रता का सन्देश नया था।

इन परिवर्तनों की प्रक्रिया ही इस पुस्तक का विषय है। भारत का रूपान्तरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास पश्चिम के प्रभाव का ही परिणाम था। लेकिन स्वयं पश्चिम में राष्ट्रवाद एक काफी हान की चीज थी। अठारहवीं सदी तक यह भावना यूरोप के सुदूर पश्चिम के देशों तक सीमित थी। वहाँ से यह उत्तरीसवी सदी में केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप तक फैली और बाद में सन् 1914 में इसका प्रसार ही गया।

यूरोप में राष्ट्रवादी समानता की उत्पत्ति सामाजिक विकास क्रम में सबसे हाल की घटना है। यूरोप में सामन्तवाद से आरम्भ किया, सोलहवीं शताब्दी में उत्तरे वाणिज्यवादी व्यवस्था का अपनाया और अठारहवीं शताब्दी के मध्य के बाद वह औद्योगिक पूँजीवाद तथा राष्ट्रवाद की आरंभ दत्ता। दूसरी ओर, भारत अठारहवीं शताब्दी के जन्म तक उक्त प्राचीन प्रणाली पर कायम रहा, जिसकी तुलना यूरोपीय सामन्तवाद से की जा सकती है। तब पारचाय प्रभाव के बाधात ने पुराने ढाँचे का चरमग दिया और एक परिवर्तन क्रम की आरंभ उसे ढकेला जिसकी परिणति स्वतन्त्रता में हुई।

ऐसी विशद व्याप्ता हलचल इन तथ्य को प्रदर्शित करती है कि इतिहास का सही ढंग बनाना नहीं सम्भवा जा सकता। विभिन्न प्रदेशों में रहनेवाले लोग विभिन्न ही अलग-अलग कान की धीरे, एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक पहुँचनेवाले प्रभावा के प्रति खुले रहते हैं। फलतः एक देश में हुई घटनाओं पर दूसरे हिस्सों में घटित घटनाओं से उन्हें पूरी तरह काट कर, विचार नहीं किया जा सकता। इतिहास अनिवाचन एक विश्व-इतिहास है और जिस समय मानव धरती पर प्रकट हुआ तभी से यह केवल अपने भौतिक वातावरण से ही नहीं, बल्कि मानवीय वातावरण से भी प्रभावित होना आ रहा है।

इन्हीं कारणों से भारतीय राष्ट्रवादी के उद्भव और स्वतन्त्रता की प्राप्ति को जात्मगत करने के लिए पारचाय नमार्थों के इतिहास का अध्ययन करना और राष्ट्रवाद के विकास का आरम्भ से अन्त तक समय लेना बहुत जरूरी है।

## 2 यूरोप में राष्ट्रवाद का विकास

प्राचीन यूरोप का विषय

यूरोप में राष्ट्रवाद बहुत बाद में प्रकट हुआ, लेकिन उसकी जड़े बहुत पहले के इतिहास में भी काफी गहरी हैं। यूरोपीय राष्ट्रवाद के निर्माण में बहुत-से कारणों ने योग दिया परन्तु अलग-अलग युगों में सक्रिय रहे। इनमें से दो का—जाति और संस्कृति का—मूल ठो मुद्दे अतीत में हैं। यद्यपि यूरोपीय राष्ट्रों का आतीत भगटन विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है तथापि उनका प्रमुख तत्व आय रक्ता ही है। इन देशों में

आर्यों ने इसा-पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में वतना आरम्भ कर दिया था। इनके अनगिनत बन्धुओं में से यूनानिया और रामना ने सीमातीत सफरना और गौरव प्राप्त किया। जिन मसृनिया को उन्होंने पाता-पाना उन्हीं के आधार पर आधुनिक यूरोपीय जीवन का ढांचा घडा किया गया है।

सबसे पहले यूनाना और रोमन आय आरंभ बस थे। यूनानी आधार प्रतिष्ठाता थे। रोमना न अभिजात हेलेनिक मभ्यता को सार यूरोप में फताया जा स्वाटलैण्ड न ईरान तक फनी और कितनी ही शताब्दियों तक जाविन रही। अन्त में इन साम्राज्य को उन बबरों ने कुचल डाला जो थे तो आय रक्त के ही, पर जो राइन और डेन्वुव-पार के दशों में रहने थे। आर्यों के म दूसरे स्थान-परिवर्तन के बहुत गम्भीर और महत्वपूर्ण परिणाम निवृत्त।

प्रान्तों में बबर ट्युटानिक जातियों की घुस-पैठ बहुत पहले ही आरम्भ हो गई थी। कई शताब्दिया तक सीमाएँ सुरक्षित रही, क्योंकि रोम के सम्राटों ने सुरक्षा की एक योजना कार्यान्वित की थी जिनन बबरों का पीछे ढकेल रखा था। लेकिन जन्त आन्तरिक बन्धु और विग्रह न साम्राज्य के शक्ति-स्रोत को सुधा डाला और सन् 378 ईसवी में समकी सेनाया को एड्रियनपाल में बुरा तरह मुह की घानी पडी। सम्राट वेलन्स मारा गया। सौ वर्षों के भीतर गाय, वण्डाल, फ्रैंक और दूसरी ट्युटानिक जातिया उभर पडी और उहोने इन प्रान्ता पर अधिकार कर लिया।

जब ट्युटानिक दल रोम की सुरक्षा-मकतिया का विध्वंस कर रहे थे, तभी एक दूसरा गम्भीर छतरा पदा हो गया। हूणा ने एशिया के मन्तों को पार किया और वे ग्रीस में घुस आए। उहानि पूर्वी और पश्चिमी गायों को अपने अधिन किया और अपना प्रमुख राइन तक फलाया। तब उनके महान नेता अतिला के अधीन एक शक्तिशाली सेना ने राइन को पार कर गात (आधुनिक फ्रांस) में प्रवेश किया। पर मारियेका के युद्ध (सन 451 ईसवी) में रोम की इज्जत बच गई और हूणा की वाड उतर गई। रोम की सेनाया की यह अंतिम विजय थी क्योंकि मोघ हा सन् 476 ईसवी में रोम गाया के बच्चे में खला गया और इस देवपुरी का गानदार ढांचा धूल में मिन गया।

रामना ने जिा जीवन पद्धति का निमाण किया था, वह अब मे उखड गई। नए बमबसान नए गाय अपन राति रिवाज और मस्वाण भी राण थे। और यद्यपि इन नए योगों ने अभिजात मसृति के अवशिष्ट तत्वा का ग्रहण किया, तनावि मुरार में एक पूण नई मसृति पनप उगी।

राम के पान के यान के युग में आक्रामक जातिया स्थिर रूप से बस गईं और उहानि एक नई व्यवस्था विरहित करने का प्रयत्न किया। फ्रव जाति के बाबर शासन न तो आठवी शताब्दी में रामन साम्राज्य को पुनरज्जीविन भी किया। विन्नु नौवी शताब्दी में करालिजियन व्यवस्था भी विघ्नर गई और विप्लव का तासरी चर आरम्भ हुई। उत्तर की जातिया अथवा स्विन्नेवियन दसा के कार्किम लोग बर्लिन तक की स्नाज जातिया पूरव के मयिमारा और दक्षिण के मरामना न यूरोप की ट्युटानिक जातियों पर दमन डालना आरम्भ कर दिया। कार्किम लोग ब्रिटेन फ्रांस और फनना में गयाही मचाने लगे और साम्राज्य के प्रदेशों में बहुत पहले मे घातकदोष \* रा में विपरनवकी स्नाज जातिया पूर्वी मुरार में बस गई।

इन बीच अरब उत्तर-अफ्रीका का जीत चुक ये और स्पेन में घुम आए थे । उन्होंने गाय गज्यों को उन्ट्रिया और पादरिनीज का पार करके वे फ्राम तक घस आए । पर फ्रेंक लोगों ने उन्हें सीमा पर हा राक दिया ।

इस प्रकार भयानक हत्याकाण्डों, विप्लवों और हिंसाओं के बीच यूरोपीय राष्ट्रों की नीवें रखी गईं । विनाशदाक के शब्दों में "मोट्रे रूप में मन् 476 से सन् 1000 तक का यूरोपीय इतिहास का पूरा समय, प्रथम दृष्टि में लगता है कि एक विप्लवपूर्ण उफान का युग था, जिसमें कि ही भी प्रेरक निदानता और सुस्थापित मन्थाओं की खोज पाना लगभग असम्भव है । कदाचरी जातियों के देश-परिवर्तन ने रामन साम्राज्य को उलट दिया था । मगियारा और मूरा क आक्रमण और उत्तर की जातियों-द्वारा किए गए विध्वंसों ने उन कदाचली समाज को अन्त-व्यस्त कर दिया था, जो रोमन साम्राज्य के बाद अस्तित्व में आया था । उस समय वहा जीवन और सम्पत्ति की अत्यधिक अरक्षा की स्थिति बत-मान थी और इन स्थिति ने उस आकार को रूप दिया, जिसमें आगे मध्य-युग में यूरोपीय समाज बना । हर कही केन्द्रीय सत्ता लुप्त हो चुकी थी और उसी के साथ राजकीय बरा-धान की प्रगती भी नष्ट हो गई थी । विज्ञान सामाजिक संगठन इस आर्थिक व्यवस्था के कारण टिक नहीं सकने थे । उत्पादन घट गया था, व्यापार नष्ट हो गया था और यूरोप को एक नैसर्गिक अय-व्यवस्था के स्तर से पुनरारम्भ करना पडा था । उस समय मानव को दो ही बड़ी समन्धान थी हिंसा से मुरणा और जीवन की मूनभूत आवश्यकताओं का प्रबध । इनका हल तलाश करने में एक नए सामाजिक संगठन का विकास हुआ । इसके विकास में रामन और द्युटानिक परम्पराओं एवं सस्याओं ने अपना योगदान दिया । फलतः सामन्तवानी समाज-पद्धति का जन्म हुआ ।

### सामन्तवाद का उद्भव

इन सामन्तवादा समाज का अर्थ है तीसरा यूरोप । पहला यूरोप, अर्थात् गण-राज्यों का ग्रीक-रोमन यूरोप आठवीं शताब्दी ईसा-पूर्व से ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त तक बाराह सौ वर्ष में भी अधिक समय तक जीवित रहा । दूसरा यूरोप अथवा कदाचली समाज-संगठनवादा द्युटानिक यूरोप पाचवीं शताब्दी में पहले यूरोप की विता पर बना, लेकिन नौवीं शदी के अन्त तक नष्ट-भ्रष्ट हो गया । इस प्रकार यूरोपीय सभ्यता की क्रमबद्धता दो बार भंग हुई । तीसरे अथवा सामन्तवादी यूरोप ने अपना जीवन नौवीं शताब्दी में आरम्भ किया । इनके क्रमशः एक विशेष प्रकार की सभ्यता का विकास किया जा तेरहवीं शताब्दी में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा ।

तेरहवीं शताब्दी में पश्चिम-यूरोप का जातिया सामन्तवाद का त्याग कर राष्ट्र-वादी राज्यों के रूप में विकसित होने लगा । मध्य-युगीन युरोप जिम साचे में बना हुआ था उसे ताड डाननवादी बहुमध्यक कान्तियों ने इस रूपान्तर को जन्म दिया, जिमका क्रम अठारहवीं शताब्दी के मध्य में पूरा हो पाया ।

सामन्ता संगठन मानव की इन तीन प्रारम्भिक आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य में अस्तित्व में आया—(1) जीवन की सुरक्षा (2) शारीरिक आवश्यकताओं का पूरा करनेवाली वस्तुओं का उत्पादन और (3) नतिक तथा धार्मिक-पद्धतियों के माध्यम से आन्तरिक गुणिया का मुलभाव ।

रोटा मानव अस्तित्व के लिए बहुत जरूरी है, नौबत वह सिर्फ रोटी के सहारे



शक्ति नहीं जाना। आत्मा की भाग्य भी उन नहीं जानती, है और यह भाग्य शरीर का भाग्य नहीं अधिक नहीं और जल्दी भी बन सकती है। मानव आशा तथा भय से विह्वल हो रहता है और उन पूरा करने अपना उम्मीद निराकरण करने का प्रयत्न करता है। मध्य-युगान यूरोप का मानव उन तम अनिष्टा में घबरेने को आतुर था जिनसे उस भयानक युग में उसका जीवन घिरा था। उसकी आत्मा अधिक उदार और अधिक नतिक भावना-मदति का लिए तड़पता थी। सामाजिक बराबरी के प्रति एक ऊन, और भ्रष्टाचार, गुना तथा हिंसा के प्रति एक विराग वह अनुभव करता था। उत्तम मन की उच्चतर आकांक्षा को पूरा करने की एक भाग थी, अपनी प्रतिष्ठा को पुष्ट करने का एक इच्छा था और उन सामाजिक तथा राजनीतिक बंधना को ढीला करने की कामना थी, जो उसकी अन्तस्व स्वतन्त्रता का दम घाटे देती थी।

इस प्रकार मध्य-युग में नतिक आर्थिक और धार्मिक—इन तीनों नवानुभव यूरोप का सामाजिक-आर्थिक नयन का आधार देने में सहायक किया।

इन प्रणाली को विकसित होने में तीन सौ वर्ष लगे। तरहवी शताब्दी में यह अपना परिणति तक पहुँचा। तब एक क्रमिक पतन आरम्भ हुआ और अन्त में सामन्तवादी अर्थ-व्यवस्था का स्थान व्यापारिक पूँजीवाद ने ले लिया। हुआ यह उत्पादन के सामन्ती तरीके विद्वानशील समाज की जड़रूतों का पूरा करने के अयोग्य सिद्ध हो गए और और इस प्रकार कामगार लोगों को उत्पादन साधनों के स्वामि बन सम्बद्ध करनेवाले सम्बन्ध-भूत टूट गए। अन्तिम विच्छेद यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न समय पर हुआ। अंग्लैंड में सामन्तवाद का अन्त सत्रहवीं शताब्दी में हुआ प्रायः अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और रूस तथा जर्मनी में उसने भी बाद।

सामन्तवाद समाज का मार-तल्ल था नतिक सेवा के साथ जमीन की पट्टेदारी का मयोजन। ऐसा आदमी और आदमी के बीच एक खास विरम के परस्पर निर्भरता का सम्बन्धक द्वारा किया जाता था। वह लोग आश्रितों का रक्षा करे और उन्हें जीवित जुटाए का भार ग्रहण करते थे और आश्रित अपनी सेवाएँ अपने श्रम का फल का एक अलग अलग सहायताएँ दायित्व और स्वामिभक्ति उन्हें अर्पित करते थे। पूँजी आश्रित की गरज बड़ी थी इसलिए तराजू का पत्र उससे विच्छेद रहता था। दोना को बाधनेवाला मूल व्यक्तित्व था। यह पारस्परिक दायित्वों को धारोपित करता उन्हें मान्यता दना एक शोषणित समाज की सृष्टि करता था।

इस सामाजिक तन्त्र में दो वर्ग थे—युजीन-वर्ग जहाँ वह थोड़े अल्पसंख्यक का जो जमीन का स्वामी था, जो आश्रितजन बन्—मुक्त श्रमिकों और कामिया-वर्ग—जो श्रम करता था और जमीन को जेतता था। यह भूस्वामि श्रमिक-वर्ग भी दो भागों में बँटा था—यादों और बुरोहित। इस प्रकार तीन वर्गों—जहाँ श्रम करनेवाला मुक्त करनेवाला और उपासना करनेवाला के रूप में सामन्ती संरचना की तीन भुजाएँ प्रत्यक्ष थीं।

### सामन्तवादी धार

सामन्तवादी समाज का इतिहास था गाय। विभिन्न देशों में इनके विभिन्न नाम थे। अंग्लैंड में इसे 'मार' और फ्रांस में 'सिन्डिकरी' और जर्मनी में 'साम्बुह' कहा गया।

मकान, खेती के लिए खूबे खत चरागाह तथा दूधन और चारा के लिए जगह— ये सब गाव और उत्तक क्षेत्र में सम्मिलित थे। मून गाव अमाभिया की खोपडिया जा घरों का एक गुच्छ था। यदि ता गाव में ही रहता या ता मन्सा भवन और भवन के साथ लगे जन्व हिस्से— जैसे कि वा और वहीं-वहीं निरजाव— भी वहीं हाते थे। गाव के बाहर खुले मदान रहते थे। ये दा जसमान भागा में बटे होते थे। छोटा भाग गाव के नाड अथवा निनिपू के लिए सुरक्षा था और बड़े भाग में विमान के परिदार हिस्सा काट कर वान चलाते थे। जसामी का जान को बगैट' अथवा याडलण्ड' नाम दिया जाता था और यह माघारणतया 30 एकड़ वाली थी। हिस्से दारों के हर परिवार को एक निश्चित आर म्यापी हिस्सा मिल जाता था जो चार बॉट (एक हाइड) ले सकर आधा बॉट (हाइड का आठवा भाग) तक होता था। लेकिन यह हिस्सा एक टुकड़े टुकड़े के रूप में नती हाना था और एक गाव तक सीमित नहीं रहता था। यह कुछ लम्बी आर मकरी पहिया स जिनमें प्रत्येक माघारणतया एक एकड़ (220 गज लम्बी और 22 गज चौड़ी) की होती थीं आर जिसे एक दिन में जोता जा सकता था मिल कर बनता था। ये पहिया पूरे मदान में बिखरी होती थीं। मंड या अनजुनी धान उन्हें एक-दूसरे में अना करती थीं। ऐसा घटवारा सहयोग कृषि की आवश्यकता पैदा कर देता था। इसलिए आठ बला म सींचे जानेवाले घट-बटे पहियावाले इन जुताई के लिए एक मान जोड़ लिए जाते थे। अकेले एक किसान द्वारा काम में लागे जानेवाले बिना पहिया के इन भी इन्तमान में जाते थे।

जीवन निगाह के लिए तिन पम्ना की आवश्यकता थी वे सब गाव में उगाई जाती थीं—अन्न की पम्नें जिन मृत्तया गई, जो तथा अगूर, जिनसे शराव बनती थी, जड़, नम और मटर का पनुआ व चारे के काम आती थीं और मपटा बुनने के काम आनेवाली पटमन। फल उगाने की पद्धति एक दो या तीन खेतों पर निभर रहती थी। खेती की प्रणाली बहुत आदिम कालीन थी, इसलिए उनका बहुत कम हानी थी आर व्यक्तिगत रूप से विज्ञान के लिए ऐसा कोई आकषण नहीं था जिसके चलते वह बढ़िया तरीके इन्तमान करता। इस प्रकार एक दुसरा बीज बोने पर सिर्फ आ या पाच बुल ही अन्य पैदा हो पाता था।

गाव के निवासी थे—(1) विमान और मजदूर जो खेत पर काम करते थे और जो मुक्त असाामी और कमिये अथवा रयत कहलाते थे, (2) दम्नकार जैसे बहई चमार सुहार, मुतार जुताहे कतिपे बेकर आदि (3) गाव के लाग के वनचारी, जिन दीवान, भण्डारी बेलिफ अथवा कानूनगा और चाई के स्तर के अनुमार अन्य कारिन्दे (4) साड के परिवार के सदस्य और उमक म्वापर तथा (5) पादरी। पहल तीन अनुलोम-वग के लोग हाते थे और बाद के दो कुलीन-वग के।

इन दाना बॉट के परस्पर-सम्बन्ध में ही सामन्ती समाज का एक विशेष स्वरूप प्राप्त था। ये सम्बन्ध उनके जीवन के आविर्त सामाजिक आर राजनीतिक सभी पक्षों का प्रभावित करते थे। ये सम्बन्ध के उन विनिष्ट तरीका-द्वारा निर्धारित होते थे, जो तब तक चलते रहे जब तक पूनीवाद में उन्हें उछाट नहीं पेंका। दम्नकार और ग्यारहवीं शताब्दिया में प्राचीन जना में प्रमुख रूप से कमिया अथवा रयत की ही सभ्या अधिक था। बाद में मुक्त असाामी मन्सा में बगैट और दम्नकार कमिया प्रया नमाना कर दी गई। कमियार के हर परिवार का काम के लाग की ओर न

एक घर और छुने का मैं पत्निया के रूप में विधवा हुआ जमीन का हिस्सा मिलना था। इसके अतिरिक्त, बाग़र सागे व चरागाह जंगल और मछलियों के लिए नदी का प्रयाग भी दे कर सवत थे। जान, जामनत जीवन भर के ठेक पर दी जाती थी शोध ही बसानुगत बन गई। लेकिन जिन गतों पर यह जोत रखी जाती थी, वे बड़ी ही कष्टदायक थी। प्रथमतः कमियो वास्तर गुलामा से बहुत मामूली-नाही बेहतर था। गुलामा की तरह उन्हें शरीर या बेचा तो नहीं जा सकता था लेकिन वे अपने स्वामी का छोर नहीं सक्ते थे। कमिया जमीन से बधा था। यदि कभी वह भागने का प्रयत्न करता, तो सामन्ता प्रयाग अनुसार साड को उसका पाछा करने, उसे पकड़ने और और उस पर जुर्माना करन का अधिकार था। बिना अनुमति के वह अपनी भूमि न ता बेच सकता था और न किसी अन्य के नाम पर कर सकता था। उत्पादक और भूस्वामी के बीच का सम्बन्ध उस जोर-बज्र पर आधारित थे, जिसका अधिकार कानून और प्रयाग से प्राप्त था।

कमिया के दायित्व तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं खेता का काम, अतिरिक्त मत्तण और भूमि का उपयोग का बन्ने म पस, अथवा जिन्म के रूप में अदायगी। पहले वग में सबसे प्रमुख था माप्ताहिक श्रम। कमिया का यह कर्तव्य था कि वह ला का निजा भूमि पर काम करने के लिए मप्ताह में सामान्यतः तीन दिन एक अदमी भव। उसे अपने हत-बल जुताई के लिए और घोडा-गाड़ी मामान ढोने के लिए नदी पकती थी।

उसकी अतिरिक्त सवाजा म जिन्हें 'उपहार-श्रम' कहा जाता था, फमल काटाया अनाज भरना खलिहान के समय फमल को लाड के गाव ले जाना आदि सम्मिलित थे। उम मडा, पुलियाआ नहरा छाया मडका पुर्ना, भवाा और ताताओ पर भी काम करना पडता था। उम भेरे पावनी पकती थी और उनके बाल रतरने पहन थे।

जिसके रूप म अदायगी में खेता का उपज सम्मिलित होती था। किसान को र वष मन्त, र्फ घाग मुग्गिया, अणा, मछलियों शराय, शहद और मोम आदि का हिस्सा देना पन्ता था। उम, भेड साअर और बररों पर भी वह पस या जिन्म के रूप म कर देता था।

अनगिता दायित्व और देनारिया ऐमा भी थी जिन्हें नग चुवाना पडता था। प्रथम वग में उसरी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का वाघनेवाल कर थे, जैसे प्रति वष दिया जायाना प्रति यकिन-कर अथवा रुगा। सन्धा के विवाह का अनुमति के लिए विवाह-कर और उर का पडने अथवा की अनुमति के लिए शिखा-कर। यदि कोई कमिया निम्नाना मर जाता ता स्वामी का उसरी जमीन पर अधिकार कर लेने का ह्व था। एउ उतराधिकार-कर भा था, जिसे हरियट रूडा जाता था, ओर जिसका अथ था अपने हाम का शरय बडिया पशु देा। अनामी के परिवार पर भी एक कर लगता था, जिसे टानड अथवा टेल कहते थे।

दुगरे वग में जोत न सम्बन्धित दनारिया सम्मिलित थीं। इनमें से एव भी रन्म जिसे प्रयाग-नारा निरिक्त एव नग निराया सम्मिलित था। इसे अण र करने पर र उम ना जाती था। दूसरा कर था सहायता-कर। अनामी की मत्यु पर उसका रनारिणी भूमि का फिर से प्राप्त करन का निरा वष भर का निराया देा था। 'दिये'

तासरा कर था। खेत की उपज का दसवा भाग गिरजावर का देना पड़ता था। इन तीन व अतिरिक्त और भी कितनी ही देनदारिया थीं, जैसे सम्पत्ति बेचन की अनुमति का मुल्क; सब्जी, पुला, बन्दरगाहा और दरों के प्रयोग पर कर, गल्ले, नमक, रसद और अन्य मान कं, गिरा पर चुगी, दुकानों, बाजारों और मेलों के लिए लाइसेंस की फीस।

नगद धयवा जिन्म के रूप में इन देनदारिया के अतिरिक्त कमिया का लाड के और भी बहुत-से काम करन पड़ने थे जैसे—चक्की में उमका आटा पीसना अपनी भट्टी पर उसकी रोटिया पकाना अपनी मशॉन में उसके अगूरा अथवा अजीर्ण का निचोडना, उसवे चमडे को कमाना आदि। इनके अतिरिक्त ईंधन अथवा मकान क लिए जगल स लकड़ी काटने पर, मैदाना में पशु चराने पर और नदियों से मछलिया पकडने पर भी कर था।

इस सारे वाच क बावजूद कमिये की पट्टेदारी को सबसे बने विशेषता थी उसकी अरखा क्याकि लाड की इच्छा के विरुद्ध उमके पास कोई उपाय नहा था। अपने पडोसी के खिलाफ तो वह ग्राम-न्यायालय में, जिसका जज उसका लाड ही होता था, निवेदन कर सकता था, पर अपने लाड के विरुद्ध राज्य के न्यायालय का आश्रय उसे प्राप्त नहीं था। उमकी सुरक्षा का एकमात्र माधन थी सामन्ती प्रथा, जिसने कानन का म्द्र ग्रहण कर लिया था और लाड की व्यावहारिक आवश्यकताएँ, क्योंकि लाड अपने कृषि-लाभा और जागीर के धंधों के लिए कमिया की सर्वोच्छ्व सेवा पर निर्भर करता था।

लेकिन कमिया के कष्ट की गाथा यही समाप्त नहीं हो जाती। साधारणतया लाई गाव में नहीं रहता था लेकिन जब-तब वहा आता था। जब वह आता था, तब उन्हें उसकी खातिरदारी करनी पडती थी। उन्हें लाड को उसके रसका, सेवका, घोडा कुत्ता और पक्षिया क दन के साथ दावत देना पन्ता थी। विशेष अवसरा पर—उदाहरण-स्वरूप जब घर बनाया जाता था तब—उम पत्थर देन पडते थे और चोशा ढोने क लिए पशु और गाडिया देनी पडती थी। युद्ध के समय किसानो को लाड के भवन पर पहरा देना पडता था किलेबन्दी करनी पडती और खान्सा खोदनी पडती थी तथा लाड के अभियानों में उसके साथ जाना पडता था।

गाव का श्रमिक और उत्पादक-वग इन कमिया और मुक्त असाभिया मे ही निर्मित था। मुक्त असाभिया की स्थिति कमिया म बेहतर थी। वे अधिक अच्छे घरा में, गिनमें कई कमरे, आगन और बगीचा होता था रहने थे। गाव में उनका भूमि भाग भी कमिया की तरह ही पट्टिया क रूप में विद्यग हाता था और उन्हें भी परम्परागत ढग मे खेती करनी पडती थी। किन्तु उनकी पट्टेदारी का शर्तें भिन्न थीं। मुक्त असाभी निमाना अथवा बटाईवाला की ही तरह एक निश्चित लगान देकर भूमि का म्यायी रूप से रखन थे और यह लगान बढ़ाया नहीं जा सकता था। उन्हें बेदखल भा नहीं किया जा सकता था। वे अपनी सम्पत्ति का स्वतन्त्र रूप से बेच सकते थे इच्छानुसार उमकी वनीयत कर सकते थे, कभी का दे सकते थे जयवा विभाजित कर सकते थे शत किफ यह थी कि लाड का देय अर्थात् निश्चित लगान और वचनबद्ध मवाए अपिन की जाती रहे।

स्वतन्त्र अनाभिया को कमियावान जनक दायित्वा का भी बोध नहीं डोना पडता था। वे चाहने पर गाव छोड सकते थे। अपने बच्चा के विवाह क लिए उन्हें स्वामी की अनुमति की आवश्यकता नहीं हाता थी। उन्हें म्यू-कर अथवा गाव मे बाहर घर बनाने

वा करानी चुगी भी नहा देनी पड़ती थी। यद्यपि स्वतन्त्र आसामा सम्मत शता पर धर्वात क्या लगान देना है और बितनी सवाप करनी है, यह निश्चित हो जाने पर पट्टेगर बन जाते थे और यद्यपि ये कमिया के मुकाबले स्वामा के निषया म असन्तुष्ट हाने पर राजा के यादालय म निवेदन कर सभन व नवापि सभी वृषि-नामों में वे कमिया के समन्तर थे। व ग्राम-समाज व नदस्य के और उनके निषया स वधे थे। अपनी जमीना की व्यवस्था म व स्वतन्त्र नहीं थे, क्योंकि उह पगना का बदला-बदला के बाग में सम्मिलित बाजा क प्रयोग और भंडा व निमाण व बारे म जातीय प्रया का अनुसरण करना पड़ता था। उह खलिहाना में भी छोटे छोटे काम करने पड़ते थे।

गाव के स्वामा की निजा जमीनों, जिन्हें 'मार' कहा जाता था एकमात्र मालिक के साथ व निष्प ही जोनी जाता था। व भी अनामिया और रयत्रा का जमीना भी तरह ही बटा जाता था। एक स्थान पर डाटडा सम्पत्ति के रूप म नहा यच्च खुले खेतों म पट्टिया के रूप में हाय ना बिखरा होता था। उह जातन का काम अगत ता जिस के रूप में चुवाप जानवाने श्रमिक करता थे और अगत के कमिये करते थे जा काना और प्रया व अगत नियमित गाप्ताहिव श्रम और मौसम व विशेष अवसर पर उपहार श्रम करो का मजबूर थे। इस प्रकार जुता चुवाइ हगाई, बटाद और भारी का काम पूरा करा जाता था। स्वामा की निजी उपज बाजार ले जाई जाता था उसकी जमीनों तथा भवन व्यवस्थित रख जाते थे और उनमें हिता का पूरा ध्यान रखा जाता था।

सभी गाव अपने गावा में नहीं रहने थे। जो रहता था वह गाव की हलचल में बहुत कम भाग लेता था। गाव अपने अधिरा अहतरा का एक मन्त्री को सौंप जाता था जो बाव व जनता का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाता था। य व दीवान, बेलिफ अमान और जय पारिण। दीवान गाव गावा का प्रबन्ध करता था सारे काम-बाज की जान देखभाल करता था। वहा प्रयात्रा और नियमा का सरक्षण भी करता था। वह अना स्वामा व अधिरा का देखभाल करता था ग्रामा म घमना था और ताडों का गौर जमीनों का देखरेख करता था। वह लगान और किराए व हिमात्र पर भी नजर रखता था—कमिया म काम लेता था और ताड व सामाय हितों का देखभाल करता था। बेनिषा आर दूसरे नीररा तथा कारिण पर उनका नियंत्रण रहता था।

गाव के साथ प्रयात्र के लिए बेलिफ जिम्मेदार था। वह खेता और चरनाहो में प्रतिदिन जाता-जाता था और देखता था कि खेता में कहीं बीज ता नहीं हा रही है और गाव अपने काम को ठीक तरह पूरा कर रही है या नहीं। नार की पालू उपज की भी बड़ी बाजार ले जाता था।

अमान का गाव के साथ चुनते थे और वह गाव तथा अनामिया के बीच विधिलिये का काम करता था। वह स्वयं एक कमिया होता था और उसका अनामिया से ही विशय गन्त रहता था। एक और बाव की दृष्टि स वह बेलिफ स नाचे जाता था। वह लगान द्यूत करता और रीदा आर खर्चों का हिमात्र रखने का जिम्मेदार होता था। अमोन का कुछ उपाय मिली जाता थी जिनका नाम आशिण अयना पूण रूप म माप रहता था।

उह अधिरा निजा हा सभन और हाथ थे, जो भिन्न भिन्न काम करते थे। उह गावका में स हा चुन लिया जाता था जोर विभिन्न रूपों में अपनी सेवामा का प्रयोग के लिये करता था।

जमें थे—नागर वार बपरमा न तदेव जा बुनाव न जाने थे, लेखा-पराशक वा त्तिनात्र द्रव्यन ये वार शिन्धयन जुतने थे, जाना न रज्जवाले हनवाह गार्हापान, बाले पुंशर पातनेवाल घुडमाना कपडा तथा अय सानप्रिया व सग्नव कचुवी, रज्जोप्ये, गिकारा बनाप्रिकारा आदि । साठ की गहस्या के लिए दर्जी, कवच निमात्रा, बेक आदि कारीगरा वी भी जावदन्ता हती थी । हर उत्रे का देवमान एक कारिदा करता था ।

ये कारिन् असाहिना वार कर्मिना के बाव के दग के हान थे । कर्मिना की तरफ कुछ विवदताएं उनका भी थी पर इन्हें जमीन दस्ती में मित्री हना था और स्वयं साठ में इनका सीजा मन्वद्य रहती था ।

जमींदारी अथ-अवस्था के दा उद्देश्य के आर्माणा के लिए शक्ति का प्रवृत्त और नाई के लिए नाम का सरला । इन उद्देश्य की पूर्ति गाव के दुहर प्रवृत्त-यन्त्र न अर्थात् ग्राम-समाज वार नाड के अह्वाना-द्वारा की जाता थी । ग्राम-समाज में मुक्त और अनुक्त असाहिना के दल शामिल थे जिनके भूमि में हिस्सा हान थे और जो गाव के मामलों में नागरा जावात्र उर्च करते थे ।

हर बत्तामा न पाम भूमि का एक निरिचन जा रहता था जो कई पहिया से मिल कर चलता था । भूमि पित्त न पुत्र का मिलती जाती थी । लेकिन जुताई का अप्रिकार व्यक्ति को तनी मिलता था, जो हन उठने का समय जा जाता था । जैसे ही फसल निमट चुकती था ये अप्रिकार समाप्त हो जात थे । बीच की अवधि में जमीन पूरी बिरा-रती के काम जाता थी । जुताई के तरीका वार कृषि-सद्वृत्तिया का पूरा गाव मित कर तर करता था । जिनन दब्र भूमि चगाह और वागर नाड का सन्धि होते थे । लेकिन असल में ग्राम-समाज ही उनकी व्यवस्था करता था और असाहिनी की जमीन के अकार के हिसाब से ग्रामीण-द्वारा उनके उपयोग के नियम बनाता था । इमारती लकडा के लिए जगलों ईंधन के लिए पडा और घास के मदाना का उपयोग भी नियम-द्वारा नियन्त्रित था ।

साठ का माग का गाव से बनिष्ठ मन्वद्य रहता था । इस पर लाभ इन तरीका में बमाया जाता था (1) कुछ भाग असाहिना का उठा कर जा (2) कर्मिना में बनपूर्वक लिए गए अथ-द्वारा बाकी जमीन की जुताई कर कर । नेवका की बति आन असाहिना-द्वारा लिए गए जमान में से दी जाती थी ।

गान का उद्देश्य अथ-अवस्था सम्पत्ति के स्वामित्व की धारणा में प्रतिबिम्बित थी । रामवन्त की धारणा के अनुसार सम्पत्ति के स्वत्व की विशेषता में विशिष्ट है । इनके स्वामित्व में तनी अथ का कोई अधिकार नहा । लेकिन मध्य-युगीन युरोप के सामन्ती समाज में गान का इन धारणा का ददन लिया गया । स्वामित्व अथवा स्वत्व बट गया । गाव भूमि के टुकटे पर गाव का स्वामित्व-अधिकार मान लिया गया । उपग्रयम का स्वामित्व का सीजा तीर श्रेष्ठ अप्रिकार या जिन प्रधान त्रेत्र कहा जाता था । दूसरे जजा और उरय के स्तमान का हीनतर अप्रिकार या जिने उपयोग होवे कहा जाता था । इन प्रकार भूमि पर नाड कथवा जमाने किती पर भा करम स्वामित्व नहा था । सामन्ती सिद्धान्त के अनुसार भूमि राना की थी जो उनके जवन प्रमुखों में बट गया था । ये प्रमुख उन बरनों वार नाडों में बाटते थे जिनन असाहिनी और रयत नाड में जिन प्रान करते थे ।

लेकिन सम्पत्ति के अधिकार की जमाना प्रकृति कुछ भी क्या न हा, जो व आधिक

जावन म गाँ पगारवाकी हा हाता था । वह पार्द आधिक काय नग करता था । फिर भी रमा काम उम ती प्राप्त हात थे । विमान जीविका प्राप्ति क लिए अपने घेता प-थम करते थे पर उनर समय आर शक्ति का अग्रिवास लाट का माग पर काम करने क लिए अनिवापन नियुक्त रहता था ।

### सामन्त-व्यग और सनिक सगठन

अपन आधिक पक्ष में सामन्ती प्रथा उपादन का एक समस्या था, जिसमें वह श्रमिक व्यग सम्मिलित था । ना न्यून जातता, लगान दता और भूमि क स्वामा और नियन्त्रक लाटों का अपना दृष्टि गवाण जपित करता था । साथ हा यह एक सैनिक सगठन भी था । सामन्ती लाटों न भूमि प्राप्त करने सनिक भवा जपित करनवाले अनुचरा का एक सोपा निर यवस्था पक्ष भी पक्षमें तिहित था ।

छेतो पर काम करनेवाले काश्तकार और गाव का रक्षा करनवाल सनिक अनुचर दोनों का जागीर में सम्मिलन होता था । दोना को एक हा ढग के समथोले-द्वारा एक ही प्रणाली स जपन पट्टा और बतव्या में तियाजित बिया जाता था । दानो का ही वफादारा की औपचारिक गीथा (सवा की स्वीकृति) तेनी पडती थी तथा स्वामिमक्ति और जाज्ञानानन का वमम श्रानी पडती थी । दोना को ही भूमि विधिपन् प्रदान की जाता था और इम्नातरण एक स्वज दण्ड अथवा पत्रक देकर सूचित बिया जाता था । सिफ काश्तकारों क मामने में इन सौ-के श्रेष्ठतर पक्ष, यानी ला- का प्रतिनिधित्व दीवान करता था और उमकी सेवावधि का पट्टेदारी अथवा रयता कहा जाता था । सनिक योद्धा अपना जमान का पट्टा तिम पीप' अथवा पयडम' कहते थे, सीधे लाट में प्राप्त करता था । हीन असामी स सम्प्रजिन ममारोह माग और श्रेष्ठ असामी का समा ग-विश- हाता था ।

काश्तकार की पट्टेदारी की तरफ हा सनिक अनुचर को भा जागीर प्राप्त करने पर बितने हा बतव्या एक दमा का निर्वाह करना पडता था । दोना ही निष्ठा और वफा दारा की पक्ष म आरम्भ करते थे और दाना का ही उत्तराधिकारी के नाम जोत अथवा तायार पदन समय अनुताप घन दना पन्ता था । तेना का सम्मिलित यहा समाप्त हा जाता थी ब्यक्ति सनिक अनुचर क तदारारतमक और सकारारतमक बतव्य काश्तकार न सिद्ध थ । स्वामिमक्ति की शपथ तेने समय अनुचर को मालिक को हानि न पट्टेदान—ए पर उमका सम्पत्ति, प्रतिष्ठा अथवा परिवार पर आक्रमण न करने—का बचन पना पन्ता था । सनिक ये बचन पारस्परिक थे । लाट और उच्च अकार नाइट आर स्ववादर उमने माय रन्ने माय घाने और माय ही अभियाना पर जाते थ । सन् और आदर के सूना स दाना उधे होते थे ।

सैनिक अनार के सामन्तवादा बतव्या की सहायता आर परामश ये दो ताम लिए जाते थे । सहायता में सनिक सजा सम्मिलित था । सनिक अनुचर का बध में वम-से वम पानी-दिन स्वामा क माय पाग-पट्टेम के प्रयोग में युद्धा और अभियाना पर जाता पन्ता था । यह युद्ध में उमकी अग्ररणा करता और किनेबलिया की रणा करता था । उन स्वामा के माय रहता पडता था आर उमकी ब्यक्तिगा सवाण करनी पडता थी । कुछ गतावाण नग और निग क रूप में भा होती थी जसे अभिषेक के समय उपहार माग के बचने पर अनुतोप घन और जागीर बचने का अनुमति का सुत्त । अगामान्य

ध्वजगण पतिरिक्त महान्ग देनी पत्नी की जन्म घम-युद्ध का उच्च उदान के लिए, ताड का मृत्तिका का मूल्य चुकाने के लिए जो उमरा उडका के विनाश और बेटे के नाश करने के समय होनेवाले उमरा के लिए ।

कन्या का दूतता का था, परामर्श । ताड का जहालता में तम युद्ध जो शक्ति का एव परम्परागत नियमों का उल्लंघन की समझौतों पर विचार करने के लिए बुलाई गई समझौतों में सैनिक जासूसों का उदस्तियन जाना इसमें सम्मिलित था । सैनिक अनुचरों के पारम्परिक शत्रुता को निवटारने के लिए उन्हें सामाधिकरण में भी शामिल करना पड़ा था ।

मानवगत मरणागों का यह सामाधिकरण तन्त्र कई वर्गों में बग था । सर्वोच्च स्तर पर वे सामन्त थे जिन्हें प्रतिष्ठित पद प्राप्त थे—राजा टपूक या अल, गारविषम आर काउष्ट । ये बटून-या जागा के स्वामी होते थे और युद्ध के समय बहुत बड़ी संख्या में घुड़सवार होते थे । दूसरे स्तर पर वे सामन्त थे, जिन्हें सरकारी पद प्राप्त नहीं थे । ये कितने ही गावों के स्वामी हुए थे और उनमें से प्रत्येक घुड़मवाग के एक दल का दल पति होता था । इन्हें साधारणतया बैरन मिन्यूग (उमीगर) कथवा ताड कहा जाता था । इनके बाद नाट्ट होते थे । एक नाट्ट एक अकेले क्षेत्र एक गाव कपवा गाव के एक वर्ग का स्वामी होता था । यह ताड की मेना में रहता था और उसी से अपना क्षेत्र प्राप्त करता था । तम में निम्नतम हाने थे स्वदावर । ये नाट्टों के पावचर के रूप में आरम्भ करते थे आर बाद में स्वामी जाग नामन्त-का के सम्म्य बन जाते थे । इन नामन्तन्त्र में तागा के धाकार न आर उमीनम्ब यादाशा के मन्त्रों में बहपन का नियम होता था ।

### पादरी और चर्च

योद्धाता आ धमिकों के अतिरिक्त नामन्तगदी समान का एक तासरा का भी था, पादरी—मठजीवी पादरा और दूम्य पादरी ।

मध्य-युगा में जीवन-साधन की परिस्थितिया बड़ी कठोर थी और सामान्य जीवन स्तर बहुत ही गिरा हुआ था । मन्त्रि का उत्पादन न्यूनतम था क्वाकि कृषि-प्रणालिया का स्तर आदिम कालान था । किमान जन उमीन पर चरना था तब ताड पटे हुए जूतों में से उमकी उदस्तिया झाकती थी और उमके मोत्रे उमके घुटनों पर चारा का सटके रहते थे । उनकी पत्नी "नगे पैर दफ पर चलती थी और उमके पैरों में छून रहता था ।<sup>1</sup> उन्हें निष्पुरुतापूर्वक चुना जाता था और दामा का पटुया की तरह खरीग और बेचा जाता था । उन्हें उम्डा में पीटा जाता था और पापद ही कनी आराम करन कथवा मास लेन का समय दिया जाता था ।<sup>2</sup> ताड के वैदिक दृष्टा गवारों की चमडी उघेदनेवाले का स्पृहीम उपाधि प्राप्त कर लिया करते थे ।

1 एच० एम० बेनेट की 'साइफ घान द इग्लिस मेनर' (1150-1400) पृष्ठ 164, 185-86 से मारिस डाब द्वारा 'स्टडीज इन द डेवलेपमेंट ऑफ क्विप्टिलिज्म' में पृष्ठ 44 पर उद्धृत

2 सी० सी० शाल्टन की 'सोसाय साइफ इन ब्रिटेन फ्राम द काउन्टेस टु द रिफार्मेशन', पृष्ठ 340, 341-42 से मारिस डाब द्वारा पूर्वोक्त पुस्तक में पृष्ठ 44 पर उद्धृत



जाता मुझ और तिसा रक्षापान और लूट छमाट उस युग का सामाजिक नियम था।  
तामन्ता का प्रघात जरा था—युद्ध विचार और पतियोगिताए।

समाज के ताता म्तरा में म विमान के पास जीवन के सांस्कृतिक जाचारा थार  
अनुग्रहा को माधने ता माधन नही था और थोड़ा के पास उसका इच्छा नही था।  
इसलिए लोग की धार्मिक और नित्य आवश्यकताओं का पूरा करने का कतव्य  
पादरी के कंधा पर था। पादरी धार्मिक और धौष्टिक आवश्यकताओं को पूरा करते थे।  
अपन तात और त्तरता के कारण वे भारा सम्मान का उपभोग करते थे।

पादरिया का सम्बन्ध अथवा चर्च का मगठन एक पुरोहितता के रूप में था,  
जिसके पीछे पर पाप हाता था। उच्चतर पादरिया में निर्मित इस मगठन में विशेष  
प्रवींटर अथवा प्रीम्प और डेवन सम्मिलित थे। विशेष एक विशेष प्रदश का स्वामी  
गता था जो आरम्भिक युग में प्रान्ताय गवार के खाने पितना बडा हाता  
था। विशेष अपन प्रश्न की शिक्षा उमर जनशामन और प्रशासन के लिए त्रिम्पेण  
हाता था। उम धमन्ता के रूप में धमम्ब मितना था जिसका वह उपयोग करता था।  
वह पादरिया के प्रतिष्ठा का और उनकी पाबिता का प्रबन्ध करता था।

आरम्भ में विशेष का राजकीय ज्ञान मिलने थे और उन्हें धमसचिवा के रूप  
में माना जाता था। जम जस सामन्तशाह का दिवान हाता गया, वे शाही अफगरा  
का रूप ग्रहण करने गए। उन्हें जागीर मिलन गता जिनमें प्रशासनिक कतव्य भा  
निहित रहने थे। ये जागीर आंशिक रूप में चर्च के कार्यों के लिए और अशन  
राजा को मन्त्रि मवाण प्रदान करने के लिए भी जाती थी। इनके धमम्ब की शर्तों  
सामन्ता के राजस्व की गती के समान हा जाती था। फलत यद्यपि मिद्वान्तरूप में  
उनका निर्वाचन हाता था पर व्यवहार में वे दरबार के सामन्त-वर्ग से ही लिए जाते थे।

प्रेस्वीटर और चर्च विशेष का सहायक हाता थे। इनमें प्रथम धम-श्रुत्यो की पूर्ति  
में और दूसरे प्रशासन में सहायता देते थे।

छाटे पादरी कम्बो गावा भी बन्धिया र न्यानीय गिरजाघरा के अधिकारी  
गते थे। बहुता इन गिरजाघरा के सस्थानक ता ही उनका नियुक्त करते थे और उन्हें  
जमीनें दे देते थे। स्वभावा ही ग्राम-शासक तथा यजमाना पर निर्भर थे और बिषया  
का उन पर कोई नियन्त्रण नही गता था। इस प्रकार गिरजे से लगा भूमि के कारण  
गिरजों के प्रबन्धक स्थानीय गार्डों में सामन्तवादी सन्नो-द्वारा सम्बद्ध रहते थे।

इसके अतिरिक्त जन-माधारण का मन्त्रिता और उनका उपहारों के फलस्वरूप  
कुछ धम-गोठ और मठ भी बने गए थे। यह अपन भासासिक परिवेश से विरक्त  
लोग आश्रय लेते थे और सामाना ता तावन विनात हुए धार्मिक क्रियाओं में अपना  
समय गताने थे। मठ समाज को भारा त्तरा करते थे। वे ग्रामों में आस्था का  
प्रकाश फैलाते थे। गंगा का पूजन विधिया उपाराना और पवित्र जीवन-यापन के  
परीर सिखाते थे। वे मुगम्यद्ध धार्मिक आत्मीयों और ग्रामों की आवश्यकताओं  
का अभिनिर्दिष्ट देने थे। मठ-स्यवस्था के मन्त्र उच्च वर्ग के गता लाग होने थे।

यद्यपि आरम्भ में ये गीता पत्र कमाबध मन्त्रन्त्र थे, पर धीमे धाम  
ये एक मार्गदर्शक तब श्या तस्या में गगन्ति हाता गए और राम उताता कर  
कर गता। यह गगन्त सामन्त व्यवस्था का अंग नही था पर उमम अतार्थद्ध  
धरत था।

मध्य-युगोंन जावन में चच एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था । जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, चच उसका लिए नैतिक मान म्यिर करता था और उसके उन विश्वासों का निर्देश देता था, जो उसके जीवन को धार्मिक वातावरण में आवृत करत थे । इन से मृत्यु तक मानव-जीवन में जानेवाले प्रमुख अवसरों पर पादरी धार्मिक मस्कार आयोजित करते थे । लोगो का दैनिक जीवन उन आत्म-स्वीकृति और प्रायश्चित्त की प्रथा के माध्यम में पादरियो की सतक आखा के नीचे बीतता था ।

चच को पवित्र आदेश प्रदान करने का अधिकार था और यही पादरी और नानाय जन के रूप में जनता का वाकिरता करता था । चच सबको समय में वाप्रता था जो शान्तिरूप देने जपनाम के अवसर प्रदान करता था । उसन रविवारो त्याहारो जो मन्ताह के अन्तिम दिन को ईश्वरराय कृपा अथवा ईश्वरीय विश्राम के दिन घोषित किया और इस प्रकार जविराम धर्म का रक्षणे का प्रयत्न किया । पादरी ता उन अकस्त्रट योद्धारों में आत्मभाव भरते थे जो ईश्वरीय क्रोध और अन्तिम नियम के सिवा आ-विषी से नहीं डरते थे । श्रेष्ठतर जीवन विज्ञान के उपदेश देकर और जादस न मानन-वाला के लिए पावन सामाग्य क द्वारा बन्द करा देने की धमकी देकर पादरा कानून और व्यवस्था के प्रयाजन का ठान बल प्रदान करते थे । इस प्रकार, राजनीतिक और आर्थिक मामलों में चच का प्रभाव बढ गया था । प्रधान पादरी उच्चतम सामन्तो के सम्मन्ध गिने जाते थे । गिरापो और ऐबटा क अनुचर आर सनिका के अपन दन होते थे जो उनके साथ सामन्तो मुखों से बचते रहते थे । व राज-बाग्यों में हस्तनेप करते थे । उनमें से कुछ युद्धों में भाग लेते थे और कितने ही परमादाताओ तथा प्रशानका क भी रूप में काम करते थे । चच आर्थिक विषया का नियमित करने का भी प्रयास करते थे । वह चीता के उचित मूल्य निर्धारित करने के माय-माय मूदखाने की मनाही करते थे ।

इनन मूल जोर प्रकृति से ही सामन्तो प्रथा का अर्थ था—मत्ता का विकन्द्रीकरण और प्रनुमता का खण्डीकरण । मध्य-कालीन विप्रिवेता और सामन्तो कानूनों और प्रथाओ के अधिकार विज्ञान था व्युमेताय का मत है कि प्रत्येक वरन अपने इलाक में सवसत्ता-सम्पन्न है । प्रत्येक सनिक अनुचर का व्यक्तिगत मुद्ध करन का हक था । राजा का बैरन का अनुमति के बिना उसके प्रश में आदेश घोषित करन का अधिकार नहीं था । सभी कानून न्तिमें कर नगाना भी सम्मिलित था, एक विधि-सभा अथवा सण्डन के माध्यम से बनाए जान आवश्यक थे जार सैनिक अनुचरों की सम्मति से बडे राजों को बगलत में उन पर विचार किया जाता था ।

न्याय-व्यवस्था भी विकेन्द्रित थी । केवल वही फौजदारी मुकदमे राजकीय 'साया-नयों में सुने जाते थे जिनके लिए मृत्यु अथवा अंग भंग का दण्ड निर्दिष्ट था । छोटे-भाटे मुकदमे स्थानीय न्याय का अंगानत में तय होते थे । जागीरो अथवा शामा की पचायनें न्याय की स्थानीय मन्थाओ क रूप में काम करती थी । जागीरो अंगानता का सण्डन मुक्त और कमिसे मन्था असासिया का सम्मिलित करते किया जाता था । छोट फौजदारी मामले ही नहीं, बल्कि भूमि क पट्टा आर मुक्त अथवा जमुक्त सभी अनुचरों की व्यक्तिगत वाता के सम्बन्धित बनती अभियोग भी उन्हें के क्षेत्राधिकार में थे । रीयता के मामला में जागीरो अंगानता का नियम अन्तिम होता था । लेकिन जहाँ तक मुक्त असासिया का सम्बन्ध था, फौजदारी में सम्बद्ध मामला में ताउ उनके नियम का पलट मन्ता था आर फौजदारी नुबन्धा क पन्था पर राजकीय 'सायाय पुनर्विचार कर मन्ता था ।

सामन्ती अथ-व्यवस्था एक हृदय व्यवस्था थी। आदिम दग का ऋषि इसका आधार था। जेना थी उपाय बहुत साधारण थी और इसलिए अतिरिक्त अन्न बहुत कम बचता था। अन्त में मात्र नियाहू थी ही आवश्यकता पूर्ण ही पाती थीं। गाव के लोग ही उसका जानत थे। गाव बच रहता था, वह जागीरदार और उसके परिवार का दे दिया जाता था। अन्न के अतिरिक्त पटसन ऊन और चमड़ा भी गाव पदा करता था। नमक, लोहा मनात, कपड़े और धानु के बनना का उन्हें अपना अन्न, पटसन और चमड़ा देकर आयात करना पड़ता था। बाजार में माल बहुत कम था और उसका विस्तार बहुत सीमित था।

गाव की प्राकृतिक अथ-व्यवस्था में पशु अथवा पूजा का बहुत कम उपयोग था। श्रम विभाजन अथवा विशेषीकरण के लिए क्या बहुत थोड़ा व्यवहार था। इस सामन्ती पद्धति में पशु अथवा पशु दोनों ही दिशाओं में गति अवरोध थी। सामन्त और किसान, दोनों ही वर्गों के बीच एक ऐसी खाई थी जिसे पाटा नहीं जा सकता था। सामाजिक स्तर अधिकांशतः जन्म और सम्पत्ति पर निर्भर था। श्रम और उत्पादन करनेवाले आर्थिक व्यक्ति तथा युद्ध और प्रशासन करनेवाले राजनीतिक पुरुष के बीच तीव्र और मालिक का रिश्ता था और इसलिए पारस्परिक शत्रुता तथा समन्वय की गुंजायश बहुत ही कम थी।

राजनीतिक दृष्टि से सामन्ततन्त्र की इबाइया एक-दूसरे से बहुत ढील रूप में जुड़ी थी। हर इकाई आर्थिक रूप में आत्मनिर्भर और प्रशासन अर्थगत पुलिस और न्याय पालिका की दृष्टि में स्वतन्त्र थी। राजा और केंद्रीय सरकार का सैनिक अनुचर और ग्रामों पर बहुत मामूली नियन्त्रण था, क्योंकि बीच के सामन्तों वरता ने राज्य के भीतर राज्य स्थापित कर रखा था। हा इतना ही नहीं अपवाद था। यहाँ नामान्तर शासकों ने सामन्ती उच्च वर्ग के असामियों पर अपना सीधा नियन्त्रण स्थापित कर लिया था। गाव यूरों के गानत गाँवों का जागीरों में रहनेवाली प्रजा को सीधे आदेश नहीं दे सकते थे।

ऐसा बहुत कम था कि मध्य-युगीन यूरोपीय देश स्वतन्त्र ग्रामीण राजतन्त्रों के समुच्चय थे और ग्रामों की सारा सक्रियता उनके गाँवों के सैनिक प्रजाजनों और राजनितिक सभाओं की पूर्ति में सहायक थी। लेकिन हर एक ग्रामीण राजतन्त्र गुणात्मक था और जब तक अस्तित्व रखता था तब तक सुचारुत यज्ञ की तरह काम करता था। इसका नीति-नीतियाँ और नियम बहुत सूक्ष्म और व्यापक थे तथा इनका पालन बिना बिना अनुत्पन्न के किया जाता था। इनका उल्लंघन करनेवालों को निषिद्ध न्याय नये द्वारा दण्ड दिया जाता था। ग्राम की विधि-सभ्यता—जैसे ग्रामीणों की सभा अथवा गाँव की सभा—जिनमें मुक्त और बमुक्त अनुचर शामिल होते थे बिना अधिक याघाथों के हा काम करती थी। उनके वायव्यार दीवान, बैलिक और अन्य अपना काम समाप्त करी से करते थे। सामाजिक व्यक्तिगत पंगुत से अनुचित रूप में प्रभावित हुए बिना मात्र रीति रिवाज और नियमों के अनुसार, पीजारी (छोटे मामलों) और दीवानी मुत्तमा का पंगुत करती थी।

घम के क्षत्र में व्यक्ति और सनातन, दोनों ही चरक के गहरे प्रभाव में थे। लेकिन यह नियम सीमाओं में ही सक्रिय था। सैदाई घमनघ, जिनके माध्यम पर चरक के नियम और शिक्षान्त निर्मित थे अधिकतर आमोत्य के शय थे। उनका मानव के बाह्यकरण में कम और उनके अन्तर्गत से अधिक सम्बन्ध था। वे आचरण सम्बन्धी विवरणों से घम और माणिक प्रसन्नता तथा आत्मिक शक्तियों से अधिक सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने

विवाह और उत्तराधिकार के तथा सम्पत्ति और समाज-मूल्यों के बर्णिकरण के लिए कोई नियम नहीं बनाए थे। धार्मिक विधान-द्वारा निर्धारित नियम और कानून चर्च की सत्ता से उद्भूत थे और धर्मशास्त्रों में निहित नियमशास्त्रों का हवाला देकर उनका विम्वद अपील की जा सकती थी।

सामन्तवादी प्रणाली की प्रगति विशेषता थी उनका एकानता हाना, लेकिन उत्तमों विश्ववादी तत्व भी बनमान थे जो उस लक्ष्योत्तरी बनाने थे। इस विश्ववाद की जड़ें मध्य-युगीन सभ्यता में ही निहित थीं। सावदेशिक राम साम्राज्य का विचार अभी तक जीवन या जीव महत्वाकांक्षी राजाओं का प्राचीन परम्पराएँ पुनरुज्जीवित करने के लिए प्रेरित करता था। महा युरोपियन का धर्म एक था। यह ईसाई-मान्य के सामाजिक-राजनीतिक संगठन की धारणा को प्रोत्साहन देता था। राम के चर्च के अर्थात् पश्चिमी ईसाई राज्य-सभ्यता का प्रमाण है। एक-सा विचार और सिद्धान्त एक-सा मस्कार और अनुष्ठान, एक-सा अनुशासन और संगठन—ये सब तत्व एकरा के सशक्त प्रेरक थे। एक भाषा, लैटिन के माध्यम से सभी युरोपीय जातियों की समान शिक्षा पद्धति अध्ययन का समान पाठ्यक्रम और अन्तरराष्ट्रीय विद्यालय तथा विश्वविद्यालय आदि इन तत्वों को और भी बल देते थे। फिर, आर्थिक व्यवस्थाएँ एक समान थीं और राष्ट्रवादी एकान्तिकता अनुपस्थित थी।

सामन्तवाद का सामाजिक व्यवस्था जो विभिन्न स्तर पर इकाइयाँ को स्वायत्तता प्रदान करती थी, विश्ववाद के विचार को प्रगतिशील रूप से प्रोत्साहन देती थी। लौकिक पक्ष में सर्वमन्ता-सम्पन्न जागीरदार जो सामन्तुत्वेत्त उन बड़े साहस—काष्ठ, लाल और इयका—के प्रति समर्पित थे उनसे वे जागीर प्राप्त करते थे। स्वयं बड़े साहस राजा का प्रधान असाही और रक्षक थे। सभी राजतन्त्र पालमेन-द्वारा सन् 800 में पुनरुज्जीवित पवित्र रोम साम्राज्य के, बिना जर्मन राजा ने पुनर्निर्मित किया था, करद सामन्त समझे जाते थे। यह साम्राज्य सावदेशिक प्रभुसत्ता-सम्पन्न कहलाता था पर इनके आदेश अभी भी जर्मनी और इटली की सीमाओं में बाहर नहीं गए।

धार्मिक क्षेत्र में, पुराहिततन्त्र पोप को अपना अध्यक्ष मानता था। उनके बाद कार्डिनल विचारों और लाट-पार्लिय का क्रम था और उनके बाद छोटे पादरी आते थे। इनके पारम्परिक सम्पन्न सामान्य भौतिक तन्त्र का अनुसरण करते थे।

सामन्तवादी पद्धति में दो सर्वोच्च प्रधान मान जाते थे—एक, सामान्य प्रशासन का, और दूसरा धार्मिक व्यवस्था का। इन दोनों में बिसे प्राथमिकता मिले, यह लम्बे विवाद का विषय रहा है। तेरहवीं शताब्दी में पोप को सर्वोच्च सत्ताधारी माना जाता था। लेकिन शीघ्र ही स्थिति बदल गई और राजा न उभरी प्रभुसत्ता को मानने से इनकार कर दिया।

### नगरों का जीवन

सामन्तों समाज मुख्यतः ग्रामीण था। लेकिन इस समाज में उनका अविच्छन्न अंग के रूप में एक रोचक तत्व विद्यमान हो रहा था, वह था नगरीकरण का विकास। चूंकि यही विभाग अन्ततः सामन्त पद्धति के विनाश, सामन्तों समाज का अन्त्य और राष्ट्रीय समाज की उत्पत्ति के लिए रास्ता तयार करने का उत्तरदायी है और चूंकि ऐसी स्थिति का भारत में उत्पत्ति के लिए रास्ता तयार करने का अस्तित्व में नहीं था इसलिए इस विकास

के कारण का और यूरोपीय समाज में मनुष्य परिवर्तन नानवाली इसकी प्रक्रियाओं का अध्ययन बहुत रोचक सिद्ध होगा।

राम-नाश्राय का समाप्त कर देनेवाला वनरा व जात्रमण ही राम व नगरा के विनाश और यूरोप के आदिम कबायली ग्रामवासी की जार लौट जाने के लिए उत्तर-गामी थे। लेकिन जब दश-परिवर्तन और लटपाट की बाढ़ दब गई और प्रवासी एक जगह स्थिर हो गए तब नई शक्तियां न नए आचारा पर नागरिक जीवन का निर्माण आरम्भ किया। आरम्भ में गांव और नगर में शायद ही थोड़े-उत्तर था, क्योंकि व्यापार और उद्योग दोनों ही वृत्ति के मुखापेक्षी थे और ग्राम आत्मनिर्भर थे क्योंकि गांव का कारीगर ही उनकी जरूरत की कुछ मामली चीज बना दिया करता था।

परिणत नई आवश्यकताएं प्रकट हुए जिन्होंने इस आत्मनिर्भरता का प्रभावित किया। इंग्लैंड में डेना के आक्रमण और यूरोप के उत्तरी दश में उत्तरी जातियों की घुस-पठन कागजातों मजबूर किया कि वे ऐसी विलेवदिया और दुर्गों के भीतर आश्रय लें जो ऊंची दीवारों और पानी भरी खांया से घिरे हुए। इस प्रकार बाद में नगरों को जन्म देनेवाला लागता व इस जमाव का एक कारण रहा—युद्ध और हिंसा। दूसरा कारण घना ईसाई मठों की स्थापना। ये मठ कलाओं और कारीगरियों के केंद्र बन गए। कलाओं में शान्ति और स्थिरता का वातावरण प्रदान करते थे। फिर कुछ स्थानों का शान्ति महत्व प्राप्त हो गया और लोग उनकी जार जावपित होने लगे कि वे शौच और धार्मिक, दोनों ही स्तरों व बड़े जमीनदारों के गढ़ थे। भौगोलिक स्थिति—जिसी घाट चौराहे नदी-तट अथवा समुद्र-तट पर बसे जाने—न भी व्यापार और धंधों व विकास के लिए अनुकूल सुविधाएं उपलब्ध कर दा।

नगरों का जीवन उनके उद्योग और व्यापार में निहित था। उनका पुनरुद्धार और विनाश मध्य-युगीन समाज के इतिहास में सर्वाधिक विस्फोटक तत्व सिद्ध हुआ। मध्य-युगीन सभ्यता में व्यापार व साव-साव जागरण का श्रीगणेश हुआ। इंग्लैंड और सिसिली पर नामन विजय ने, पुनर्जात में ईसाई शक्ति के उद्भव न तथा स्पेन में मूरा पर ईसाइयों की विजय न खांया और साहसिकता की तमन को उमकन कर दिया जिसका वाणिज्य पर बहुत जगजागी प्रभाव पड़ा। इंग्लैंड प्रायः स्पेन और भूमध्य-सागर परस्पर जुड़े थे और वपन सिल्क उन धातु के बतन हथियार बंदरी घोंठे सन्तरे, चकातरे शराब आदि चीजों के लिए व्यापारियों न इन दशों में चारा और धूमना आरम्भ कर दिया।

इसके बाद धम-मुद्धा का युग आया। इनके कारण यूरोप व अक्छट और पिछड़े हुए निवासी पूरव की उच्चतर सभ्यताओं व सम्पत्तियों में लागे। इन धम-मुद्धा ने भी व्यापार को प्रातजित किया। वेनिस अनेवा पीसा बसिलोना और मासिलीज के व्यापारी स्वयं व बन्दरगाह पर पूरव की उन विनाश-सामयियों का खरीदते थे जिन्हें दमिश्क बगदाद मिस्र ईरान, भाग्य और चीन से आनवाने करवा लाते थे। वे उन्हें यूरोप के सभी तमन में पिनारित कर ता थे। मने लगन थे और व्यापार-मार्गों व साम अथवा उद्धा भा विभी प्रमुद्ध सामन्ती लाड की शक्ति के कारण अथवा किसी धमपीट की पवित्रता के कारण शान्ति और सुरक्षा सम्भव थी वही बाजार बन गए थे।

व्यापार में वृद्धि के पदस्वल्प ग्राम और नगर व बीच आवागमन बढ़ गया था। प्रारम्भिक युग में तो ग्रामीणों के शान्ति वृत्ति के मलमल-मात्र थे। ग्रामीण जागीर में अपना घर बना नेता था वहीं दह मून बाजार था, बगड़े बुनता था जुते बनाता था,

और जागृत नया जय सामान नया करता था। राजाजो प्रमुख नामन्ता और  
 पर्वों व विविध पुराणा का विनाशक जाति में त्यागन अधिक विन्तन था। यम-  
 विभाजन और विविधता बहा अतिन मात्रा म उपनय थी। तकिन ग्यारहना शताब्दी  
 व बाद परिन्धितिया वदन गये। विज्ञाना के साथ अतिरिक्त मात्रा म उपनय रहने सभी।  
 व्यापार व पुनरुद्धार से नगरा में धन का गमा और गाव की अतिरिक्त कृषि-पत्र और  
 वागीगरा की चीजा के बीच अन्ता-वन्ता वद गइ।

जम-बैसे व्यापार-चा विकसित हुए नागरिक क्षेत्रा में मुदुरगामी परिवतन  
 हुए। कारम्मिन मध्य-युगा में उदृत-न नगर किलाबन्द गिगिन अथवा दुग-भाव से।  
 इम्लैण्ट व बन्दा (बग) जार महाद्वीपय गदिया का निमाण वाईरिंग जानिया का स्रुट  
 पाट म श्रेतिहर प्रग व बचाने और ननकी सुरक्षा के लिए किया गया था। कुछ समय बाद  
 व्यापार और कारीगर ननकी जार जारपित हुए। वे दीवारा व बाहर बस गए और  
 बहा उद्वाने अपन घर और व्यापार-बन्द बना लिए। व्यापारी यहा आकर इफट्ठे हान  
 लगे। उनका सख्या बढी और व सम्पन्न बन गए। बचाव क लिए उद्वाने दीवारें बीच  
 लीं, उपासना के लिए गिगजे बना लिए और अय आवग्यन सत्याए मगठित का।

ग्यारहवीं शताब्दा में जय व्यापार-पनगजीविन हुआ नव यूरोप के आर-पार दो  
 धागा बहन लगी। एक ता उत्तर के स्वणितनविपन दगा म कुस्तुन्तुनिया की आर, और  
 दूसरी, भूमध्य-सागरीय नगा और परिचय-मूराप के बीच। इम व्यापारिक पुनगजीवन  
 से इटली व नगरा न सवन पहने लाभ उठाया। व आर्थिक जीवन के सम्पन्न और पनपत  
 हुए बन्द बन गए। कुस्तुन्तुनिया म टक्कर ननेवान एक लाख की आवादी व नगर बहा  
 सृष्टे हा गए। नन पजा मविन हा गइ। बन्ता और कारीगरिया बहुगुणित हुई और  
 विगेषज्ञ न बटा तज्ञ प्रगति की। इन नगरा न व्यवसाय-मगठन के तरीके और वाणिज्य  
 की तकनीका में भी प्रगति की। इटली के व्यापारी भला में जाते थे और इटली के बैंक  
 मूराप व राजाजो की आर्थिक महापता गते थ।

इस प्रकार इटली की नागरिक अर्थ-व्यवस्था का प्रभाव उत्तर तक पता। इटली  
 व पूजाति—आर्ती के मामूली महाजना में नेतर उम्यानी व बडे-बडे बकरा तक  
 सभी—यूे मूराप में कागवार करने थे। इटली की पूजा उत्तर में नगरा नरय के  
 आन्दानन वा बडाया देती थी। इमण्ड म, जिनकी आवादी सन् 1370 में मुद्रिकत  
 म 15,00,000 थी, 100 म ऊपर पट्टा प्राप्त नगर थ। विशयनता भी इतनी प्रगति  
 कर गई थी कि अकेल पौरय में डेढ मो म अधिक विमिन्न शिल्प-उद्योग थे।

यह सब है कि उत्तर के नगर आरम्भ में दगिणी नारा की अपेक्षा गरिव और कम  
 आवागवान थे। उदाहरण के लिए, तरहवीं शताब्दा में लन्दन में पक्कीन हजार स भा  
 कम भाग रहते थ। आन और नार में बहुत स्पष्ट अन्तर नहा था। दोना ही नामन्ती  
 साटन व जग से और एक-अने भारा और अवराधा से पीणित थे। सम्पन्नता और  
 पूजी क बढते हुए सचरण न दाना की थी नामन्ती जर्जारा से छुटकारा लिाया।  
शाम एत मुका विनाता व निवातन्धान बन गए, जो विउप पट्टा के अधीन भूमि अंतत  
थे और बवार करन अथवा भूमि व वध रहने के लिए विना नहा थ। सामाजिक  
स्तर का स्थान निजा न न सिदी।।

नारा में व्यापारिया व पास पूजा जया हा गइ और उनका लाभ वमान का  
 लालना बड गई। व मन्चारा में, बैका तथा अन्य पूजीगत हनचना म, व्यापार,

विशेषकर नियात का बढाने में जमीना में जोर उद्यागा में अपना पना लगाने में।

इस व्यावसायिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम निकला तारा में मुक्ति आन्दोलन का उठ खड़ा होना। इंग्लैण्ड में बरो और महाद्वीप में कम्प्यूना में लीकिय बोर धामिन दाता हो बरों के सामन्ती दादों के जुए को अपने कंधा में उतार फेरा। कभी ता उन्हने सघष और विद्रोह (एसा विशपवर चच की जागीरा में हुआ) के माध्यम में मुक्ति प्राप्त की और कभी अपन शान्ती अथवा सामन्ती स्वामिना की कृपा और सहयोग में कभी-कभी उन्हो उन्की कठिनाइया से लाभ उठा कर भी अपना नाम निरारा।

मूल रूप में वे कस्य भी जिनमें व्यापारी रूढ़ि सगठन की दृष्टि से सामन्ती और उद्देश्य की दृष्टि से सामरिक थे। उाव कानून और रिवाज निरकुश थे। उनका प्रशासन जमींदाराना था। वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सम्पत्ति पर अकुश रखते थे और उन्की सामन्तदादा कर प्रथा व्यापार के लिए कष्टकर तथा विघ्नमय थी। न्याय की भी व्यवस्था व्यापारिक समाज की जरूरतों के अनुकूल नहीं थी। महाद्वीप में तो व्यापारिया ने व्यापार की आवश्यकताओं में प्रेरित होकर सामन्ती दायित्वों से मुक्ति होने के उद्देश्य से व्यापार-मण्डल और सघ बना लिए थे। वे परस्पर एकत्र हा गए थे और कभी आप्रमणा के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता को बनाए रखने की उन्हने गपय ले ला थी। इस प्रकार जीवन में कम्प्यूना का प्रवेश कर दिया गया।

कम्प्यूनी स्वायत्तता का अर्थ था एक सहयोगी सत्ता का निमाण जिसके दश के साम्राज्य नियमा से गिन्न अपने विशेष सुविधाप्राप्त प्रादेशिक कानून थे। इन कानूना का लागू बरो के लिए उसकी अपनी जदालत था। सत्ता और प्रशासन के उसने अपन साधन थे और उमना अपना सविधान था। सार रूप में हर कम्प्यून एक नगरपालिका गणराज्य था।

इंग्लैण्ड की नगरपालिकाओं का इतिहास महाद्वीप के देशों की अपना कम कोराहता है। बरो परिणाम दाता के एक-जस ही है। इंग्लैण्ड के राजाओं ने नामन विजय में ही सामन्तता बरना की सत्ता का सीमा में बाधने के प्रयास किए थे। इन बरों ने अपनी निजी जागीरा में स्थित कस्य की मांगों का स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था और उन्हें स्वतन्त्रता के अधिकारपत्र प्रदान कर लिए थे। बरना की जागीरा के अन्य कस्य को भी एसी सुविधाएँ प्राप्त बरा में अधिका कठिनाइ का सामना नहीं करना पना। नवन विशप और मठा से सम्बन्धित कस्य को ही दृढ़ विरोध से निरटना पदा और सुविधाएँ प्राप्त बरो के लिए एक सभ्य और कठोर सघष में मगुजरना पदा।

इंग्लैण्ड के तारा में कस्य अपना प्रत्यक्ष ताओं और राजा के स्थायी प्रति निधिना अपना शक्ति का सत्ता से मुक्ति प्राप्त करती। अधिकारपत्रों ने उन्हें शक्ति ही सुविधाएँ प्रदान कर दा—उन्हें शक्ति बरना के और राजा के अफसरा के हकगत के बिना नगरों में राजस्व बगूना का अधिकार बरों के एक निश्चित शक्ति प्रदान में जमा कर दी गई है। न्याय के क्षेत्र में बरों की अदालतों के अधिकार क्षेत्र में शक्ति प्रदान मजिस्ट्रेट चुन, अपना प्रशासन चलाने और व्यापारिक तथा दितराता के अपने सघ स्थापित करने का अधिकार।

नारायण के उत्पन्न विचारों का समाज पर गहरा असर पड़ा। दूरगामी आरम्भिक अर्थ-व्यवस्था गांव पर आश्रित थी। परन्तु मध्य-युगा में सामाजिक जीवन पर नागरिक अर्थ-व्यवस्था छा गयी। पहले गांव राजनीतिक व्यवस्था की उभरती एक खुदमुस्तार इकाई थी। अपनी उभक्ति का दवा करना हुआ और अपनी स्वायत्तता को प्रयोग में लाता हुआ नगर अब तरोतार-गरीब एक सर्वोच्च प्रभुसत्ता-सम्पन्न गणराज्य बन गया था। राष्ट्रवादी राजनीतिक मस्यारों से युक्त नगर नगरपालिकाओं के पारस्परिक सम्बन्धों में बड़ा गहन अधिनायक की रक्षा के लिए गतक गन्ने लगा। एक बार यदि धार्मिक क्षेत्ता से सामन्ती अराजकता मिटती जा रही थी तो दूसरी बार नगर सामन्ती जागीरा का स्थान ग्रहण कर रह गया। यूरॉप के कुछ भाग में—दशहरणाय इटली में—ये इतने शक्तिशाली हो गए कि देश की एकता का भंग करने तक की सामर्थ्य इनमें था गई थी। अर्थ देश में कन्द्रीय सत्ता ने अप्रानम्य नगरपालिकाओं पर अनग-अनग मात्रा में अपना नियन्त्रण बनाए रखा।

नगरों का आन्तरिक सामाजिक पद्धति सामन्ती जागीरा समान थी। नगरों की अर्थ-व्यवस्था व्यापार मण्डल बहुराज्यवादी व्यापारियों के सत्ता पर निर्भर थी। नगर के व्यापार का एकाधिकार भांडल में निहित था और उसके अधिगार अधिदारपन्न-द्वारा संरक्षित थे। मण्डल मंडल को नगर सामूहिक मोड़भाव का प्राप्ताहन देता था और एक कल्याण-सत्ता के कर्तव्य पूरे करता था। इसके विशुद्ध आर्थिक व्यर्थों में उद्योग और व्यापार का नियन्त्रण तथा नियमन सम्मिलित था। यह कीमती का स्थिर करने के लिए आदेश जारी करता अथवा मान निष्कारित करता था। बाजारों का नियमन करने के लिए यह संपत्ति बाट और गड़ भी नियत करता था।

मेडिन व्यापार-मण्डल की सक्रियता आर्थिक मामला तक ही सीमित नहीं थी। आरम्भ में में सम्पूर्ण नागरिक सत्ता के सम्पत्ति रूप में राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग में हिस्सा बटान थे। अन्त में ये सम्पत्ति राजनीतिक शक्ति पर एकाधिकार रखने-वाले विशेषाधिकार-सम्पन्न सम्पत्ति बन गए। उन्हे सामान्य सत्ता विधिगत सत्ता एवं कामगारों को प्रशासन में उन्हे अधिकार देने बतित कर लिया। यह विशेषाधिकारी व्यवस्था मध्यमवर्गीय बुद्धिवादी अथवा विमानों और कुर्नीना के बीच के वर्ग में निर्मित थी और मण्डल अथवा बुद्धिवादी की अन्त सभा के माध्यम से अपनी सत्ता का कर्तव्य पर लाता करती थी। इस सभा का प्रमुख काम सांख्यिक समन्वयों अथवा मजिस्ट्रेटों को चुनना था। अन्त में सरकार इन अधिकारों में ही बनती थी। अन्त में नारायण में इन्ड मेयर' या आउटरमन' या बैरिक' कहते थे। प्रायः में 'कोमिटर' अथवा 'जूरर' अथवा 'सिद्धि' कहता था। ये उद्योगों को नियमित करने के लिए आदेश जारी करते थे नगरपालिका की पूजा का नियमन करते थे सत्ता का नवतक अन्त में और सुरक्षा के लिए आवश्यक कारवाय करते थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि दीयानी और फौजदारी दोनों ही क्षेत्रों में ये नागरिकों का आचरण मो करते थे।

नगर प्रशासन की दो प्रधान समस्याएँ थीं—भाजन और सुरक्षा का प्रबन्ध करना। दोनों में ही खर्चा जाता था। इनमें एक ऐसा कित-मदति का विकास जरूरी बना दिया जा इन भारी व्यर्थों का उठा सके। हत यह निश्चय कि नगरपालिका बनना—बाड़े नागरिकों के सम्पत्ति पर सत्ता पर अथवा नगर में आनवान मान पर पराम बुद्धि। बाजारों का नियमन करके अन्त के आधान को और उपमाका के लिए अन्त



त्रिभुज मूल्य का नियन्त्रित किया जाना था। सुरक्षा का प्रबंध दीवारों खींच कर छाड़या छोड़ कर और इन्डियार घराने कर दिया जाना था।

व्यापार की प्रगति न व्यापार-मण्डल के विवास का प्रेरित किया था। उद्योग का उन्नति न गिल्डकार मण्डल बहलानवान कारीगरों और कामगारों के सघ बन। एकी स्थापना निस्सन्देह मध्य-युगीन बुजुर्ग सम्प्रदाय की सबसे रोचक और मौलिक सृष्टि थी। मध्य-युगीन अर्थ-व्यवस्था पर इनका गहरा असर पड़ा।

शिल्पकार मण्डल तीन प्रकार के सदस्यों से मिल कर बनता था—उस्ताद वेतन भोगी और शिष्य। हर शिष्य का अपना अलग मण्डल था और कोई भी व्यक्ति, जो शिष्य नियम में काम करना चाहता था मण्डल का सदस्य होने बिना बसा नहीं कर सकता था। शिष्यवार धनन का अच्छा व्यक्ति एक शिष्य के रूप में मण्डल में शामिल होता था और शिष्य या व्यक्ति के लिए शिष्य के रूप में काम किए बिना उस्ताद बनना असम्भव था। शिष्य का दायित्व एक सावधानी और पवित्र समझौते के रूप में होता था जो शिष्य को पढ़ा कर पारस्परिक जिम्मेदारियां डालता था। उस्तादों की भावी सभ्यता को और एक निदान का ध्यान में रखते हुए कि शिष्य विषय पर उसके साथका वा ही एकाधिकार हो शिष्यता का माली में सीमित रखा जाता था। यह प्रतिबंध शिष्य के रूप में रुढ़ नहीं होता था क्योंकि उस्ताद के लड़का का नाम कर जहा वशानुक्रम स्वीकृत था, और ममा बगैरे के लिए शिष्यता छला था।

शिष्यता की अवधि सामान्यतः लम्बी होती थी—तब से लेकर बारह वर्षों तक। उस्ताद का यह कृतव्य माना जाता था कि वह शिष्य को खास कपड़ा और रत्न का स्थान तकनाका पद्धतियों की शिक्षा और जो-कुछ भी अन्य आवश्यक चीजें हों दे। उस्ताद शिष्य के आम व्यवहार और उसकी अच्छी तथा कुशल कारीगरी के लिए जिम्मेदार होता था। उस्ताद कर्मत आचरण पर उसे दण्ड देने का उसे अधिकार था। शिष्य को उस्ताद के प्रति आभारगारी और कफादार रहना पड़ता था। उसे उससे परत काम करने पड़ते थे और कभी-कभी कुछ फीस भी देनी पड़ती थी।

प्रशिक्षण की अवधि समाप्त होने पर शिष्य धनन भोगी कारागार अथवा जनचर बन जाता था। एक कारीगर को यात्रा करने और दूसरे नगर में अन्य उस्ताद के कारखाने में काम करने की छूट थी। परन्तु की अवधि के बीच जो एक से तीन वर्ष तक ही होती थी अपने काम के लिए उन उस्ताद से वेतन मिलना था। लेकिन दिन में बहुत लम्बे समय तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक उस जुटे रत्न पड़ता था।

शिष्य अथवा कारागार एक परीक्षा के बाद अथवा अपनी कारीगरी और कौशल का गन्तु के रूप में एक बड़िया चीज बना कर उस्ताद के आराधित कर्म में शामिल हो जाता था। परन्तु-अवधि के बीच उमकी आय कतनी हो जाती थी कि वह स्वतन्त्र कारखाना स्थापित करने के लिए पर्याप्त धन जमा कर सके। एक पवित्र समारोह के साथ उस्ताद को उस्ताद का पद दे दिया जाता था। समाज के नियम और कानून उसके सामने पड़ जाते थे और वह उनका पालन करने की परबनेता था।

मण्डल में सम्मिलित कारीगरों के इन तीन वर्गों के बीच भार्ग चारे का सन्ध्या भाग होता था। उस्तादों और कारीगरों को भी शिष्य की तरह ही उगा प्रशिक्षण और अनुशासन में ही रहकर पढ़ना पड़ता था। वे अपने छोट छोट कारखानों में मिल कर काम करते थे। जीवन के गुणवत्ता काट कर भोगन के और अपने अष्ट-द्वारे दिना में मिल कर

नाय सहै हेंने घे। मण्डन अपन मन्थ्या क जादिण हिता की रखा करन था। ५  
 के घट निश्चिन्त करता वरन तय कना और म्मुआ के मूल्य निशानि करता  
 वह धार्मिक हिता की भा देखना करता था। वह उपानना और धार्मिक ममारोह मना  
 न प्रशय करता था और गरीब तथा विपतिग्रस्त मन्थ्या की महायता करता था। मण्डन  
 नभी प्रका क नाटा में बदायन का भा जान कना था तार मन्थ्या का कानूनी  
 उदाहना में जान म रास्ता था।

मण्डन का प्रमानन उन्म मन्थ्या के हाथ में था। मण्डन की मभाए निश्चिन्त  
 अवधि के बाद निश्चित रूप म हानी था और अपना कारवाया के निदमन के लिए  
 कानून बनाती थी। कुछ मन्थ्या न ममिनेया भी माजि की थी जा अपराधा का निन्द  
 करती और कानून बनाती थी। कानपावर अधिकारकािदा में निहित थे जिन्हें साधारण-  
 तथा उभा चुनती थी। ये नाय मन्थ्या क कान का देखर करने ये आ चीता के गुण-  
 म्तरको दनाए रखन थे। ये आदेशों और निम्नो का ना करता थे।

मन्त शिल्पकार-मण्डला का नगरपालिका का मता के स्वामी व्यापारिया के  
 विराध के मुकाबले अपनी स्थिति माजि करती पटी थी। लकिन बाद में उन्हें अन-  
 मन्थ्याआ के रूप में मान्यता दे दी गई। उन्हें सीमित अधिकार भी मिल गए और नगरिक  
 प्रमानन के अधान विभागों के रूप म उन्हें देखा जान गया। जम जम नगरपालिका  
 प्रमानन के नाय उन मण्डनों का मन्त्र प्रवृट हाना तथा मन्त्र्य मन्त्र्य दटना तथा। बाद  
 म तो नगरिक बनन के लिए जी नगरपालिका के दफ्तर में नियुक्ति क लिए शिल्पका-  
 मण्डन की मन्थ्याए प्रधान मापन उन। उन्परपाय मेयर का पण उनके आश्रित  
 हा गया। शिल्पकार-मण्डला न व्यापार-मण्डला का स्थानच्युत कर दिया।

सामन्ती पद्धति न विशिष्ट आर सामान्य के बीच समन्वय का प्रयत्न किया  
 किन्तु उत्तका सामाजिक-आर्थिक जापार अयन्त पयकतावादी था और उनकी अटे  
 न्यानीयता में वरन हरी मना दूट थी। सामाजिक और रा्नीतिक मन्धयो म  
 विरुद्वाद का बहन बन मन्त्र था। उत्तकी इकाया में एक आन्तरिक सामन्थ्य आर  
 स्थिरता थी आ प्रशासन समग्र के नाय उन्हें शानतम और सुवन्तम मन्त्र-प्रसूत्र  
 ही रखने देती थी।

यद्यपि आरम्भिक मध्य-युगा का नामूहिक जावन एक जकल पमाणवत् स्वामी  
 प्राय के चतुर्दिक् कठित था तथापि उत्तरी मह-राजाभा ऊपर उठ कर पूरे ईसाई-जगत्  
 की एकता की सिद्धि तक लडा करती थी। ये मह-बायाभाए सामाजिक जीवों के सभी  
 पक्षा में अभिच्यक्त होती थीं। ये महत्वाकांक्षाए जपज्ञानुगत, जानाय एव भौगविक  
 विवेदों के ऊपर उठे एव विरव-भनाज की राजनानिक व्यवस्था चर के शिराबिन्तु  
 एक विशय राजतन्त्र का स्थि जादेना के अनुमार नागा क आचरण का निर्धारित करन  
 वाले एा विरव-वच को राम क जावनहिता पर प्राप्राग्नि एा विरव-न्याय-विधान  
 की बीरता के विरव-न्यायी नियमा पी एा विरव भाषा जगत सटिन की धारणाका  
 काजम देती थी। कना नाश्चि दान और धम न भी ये अभि-क्त होती थी।

#### सामन्तवाद का पन

एक सही किन्तु अयन्त पयकतावादी आर एक उन्म किन्तु कृत्रिम वि-  
 वादी धारणाका क बीच राष्ट्रवन्ती ममाद और राष्ट्रीय राज्य की मध्यमार्गी धारणा

का कोई गुजाश न था। सामन्ती मना बगाना पना—गधन्ताना और त्रिषव  
वाग—के पूजनया विघर जाने परही उभना उदभव हां सवा।

तरहवी शनागः। म उच्चतम त्रिकाम के ठीक बाद हां सामतवाद के विघराव  
का श्रम आरम्भ हां गया। मध्य-युगीन सामत प्रणाला के रूपांतरण के लिए यौं तो  
कितन ही वारण थे पर उनम अधिक महत्वपूण थ जनमदगा वा उतार-चढाव और पूजा।

भ्यारहवां म तरहवी शनाब्दी तक मुराप की आवादी लगातार चढनी रही।  
मने वन्द उसका चढना न केवल रुका, बल्कि चीन्हवी शनाब्दा मे अत्यधिक युद्धा प्लेग  
और महामारी के कारण जनसंख्या म रमा जाद। इसस श्रमि श्रमिका की सुलभता और  
ग्रामा की कृषि-आवश्यकताप्रा के बीच का मन्तुलन विगड गया। काफी श्रमि-योग्य  
भूमि विगोचर लाडों की सीर अनजुकी रह गइ। वेतन बढ गए कामगारो को बेगार  
अचरने गयो और उनकी कुशनना भी घट गइ। लाडों और अनामिया न सम्पन्न विगद  
गए।

पूज के आगमन ने इन प्रवृत्तिका को और बढावा दिया। लाडों न इस बात में अधिक  
ताम दखा कि वे अपन अनामियो को सामन्ती भवाआ से मुक्त कर दें जमीना को वाशत  
पर उठा दें अपवा उर जातने के लिए पसा देकर श्रमिक रख नें। कामगार लाडों  
का जमानो पर वतार करने मे मुस्त हो गए और उन्हें अपने समय तथा शक्ति का अपने  
घरो में उपयोग करने का अवसर मिन गया। इसस बाजार में बेचन के लिए उनक  
पान अनिरिक्त उपा होने लगी और वे नारा से अपनी जरूरत की चीजें खरीदने के  
वाग्य धन पा गए।

तरहवां शनागः का बाद क्षणिक उतार चढावो और सोन व सिस्वा व फिर मे  
का जाने के फलस्वरूप विमानो की दशा सुधर गई। कीमत बढ गइ और जिन  
ग्रामागरो ने लगान नादा में बदन लिया था उन्हें भारी हानि उठानी पडी। लेकिन  
विज्ञाना को लाभ पन्चा। आय के घट जान और खर्चों के बढ जाने का परिणाम यह  
निता कि सारों पर कज पड गया। उर अपनी जमीनें बेचने पर विवश हाना पडा और  
ताने हां अरउरा पर तगरा न व्यापारिया न उरें खराद लिया।

मने परिणाम बढ प्रान्तिदारी हां। ग्रामा न कामगारो का स्थान मुक्त विज्ञाना  
न न लिया और मुक्त श्रमिकों का गव बग वन गया जो जमीना म बधा नही रहा।  
ग्रामाज वारीगर का अपना मित्य छां देना पना कर्षात गाववाना ने ग्रपना जरूरता  
न त्रि अधिक कुमन थीर गना प्रवीण नागरिक गिल्लरारो पर निभर होना आरम्भ  
कर लिया। पट्टेचारी और रुद्ध समाज-स्तर पर सडा प्रामाण समाज अब एक मुक्त सम  
गोरे व वापार पर निर्मित हाने लगा। जद्धदाग उमका व्यक्ति बन गए। परम्परागत  
श्रमिगारा और वन्श का स्थान गणतन्त्र ने ले लिया। जमीदार-बग ने पसा  
कमान न दून तराते रुदन आरम्भ किया। नारा में वाणिज्य का विरास ऐमा ही एक  
गया था। राज्य व नागरिक और सनिद विभागा में नियुक्तिया का विस्तार दूनतरा  
गरीता बना। वा गण भूमि पर रह गए व अपनी जमीना को सगठित करने लगे और  
उन पर वादारा मने उगान के वाय-माद मने पावने लगे। इन प्रकार सामन्ती गाव  
का मध्य गुान अथ-स्ववन्धा पूरी तरह बल गइ।

मध्य-युगीन कर्षा का भा स्वरूप-परिवर्तन हुआ। नागरिक उद्योग की रुद्ध  
गति हां की वार गरी थी और उनकी वाय प्रणालिया में बहुत कम विभिन्नता थी।

सारभूत में व्यापारिका के अन्दल हा सामान्यतः उद्योगी के नियन्त्रण करत थे। लेकिन मत्ता के दृष्टिकोण पर आयात और निर्यात दोनों का नियंत्रण न उन्हें समझार बना दिया गया नष्ट कर दिया। अब शिल्पकार-संघटना न उनका स्थान न लिया। उन्होंने एकाधिकार और एकाधिक पद्धतियाँ के निर्माण किया और नागरिक प्रशासना पर अधिकार पा लिया।

ऐसे ही मानवता का भी निर्माण हुआ का भाषण हा गया। मदन नन्दूना बन गए हुए कि लम्पल शिल्पकार व्यापारी और वास्तुकार बन गए। नागरिक साम्राज्य न वास्तु इनका बनाया के लिए, जिन पर नडला के मिन गाँव नहीं हात थे। उनसे मानवता निर्माण अनभव कर दिया। सम प्रकार कारखानेदार अथवा व्यापारी उद्योगपति बनना आरंभ करारो के वास जा हा गया। उद्योग पति-वर्ग नकारात्मक पर नियंत्रण रखन के उद्देश्य से विविध वर्गोंवाला 'सिबरी' बन्प लिया जात थी। यह एक ऐसा व्यवस्था था, जिसके अनुसार कारीगर अपने धर्म के बदले वेदनात्मक कामगार बन जात थे और व्यापारी पूँजीपति मानिक। इस प्रणाली को 'घरेलू व्यवस्था' कहा जात था। इन परिस्थितियों के बनने से नागरिक स्वायत्तता भंग हो गई। शिल्पकार-संघटना का एकाधिकार नष्ट हा गया और पदाे सीमित एकाधिकारवादी के बंधना से मुक्त हा गई।

इन अवस्था के कारण सामन्ता गाम जाकर स्वयं शिल्प अन्वय में काम करत थे वह टूट गया। नए और प्रान्त एक व्यवसाय में भागीदार बन गए और एक सामान्य सामाजिक नान्त के रूप में परस्पर-सम्बन्ध हा गए। आत्मनिर्भरता लुप्त हा गया और एक का दूसरे पर प्रभाव पडने लगा। फलतः पारम्परिक निर्भरता बढी।

### राज्य का उदभव

पक्ष सामन्ता व्यवस्था का रूप-परिवर्तन एक नए मनाइ की नाव रख गया था जो उस समय प्रान्त और नए नामक शब्दा का एक विचारपर समान-वन्त के रूप में पुनर्जात हा रही था तब एक नए प्रान्त प्रता के उद्भव न राजा के हाथों में शक्ति के रूप में नए विकसित बन का तब किया औ मजबूत बनाया। कदाचित्त वस ताहूर शासकों में हुआ नविनमानव प्रान्त और मन्त्रि-सभ्यता के क्षेत्रों में उसका विविध जोर रहा।

सामन्तता अनन्त राजनैतिक क्षमता प्रदान करती थी। राजा के अन्तिन शक्ति था। सामन्ता नार्डी और तब के पास मत्ता का बरा भाग था और राजा का शक्ति। अन्तिन प्रजा पर प्रत्येक नियन्त्रण बलुत कम था। किन्तु इन्हीं में नामन शक्तिशाली न पूरा विविध प्रजा पर जाता गया जलन आरम्भित किया था। सम मनाइ में विघ्न करारवादा के लिए बलुत कम गुनाए था क्योंकि प्रत्येक स्वयं चक था। चाय अधिकारन निजा था क्योंकि अधिकतम अदाते नानादि सामन्ता बदावा धर्मिक धर्म और राजा का अदाता का अधिकारभूत अन्तर्माहित था। केन्द्र प्रजाउन का यन्त्र अदिम कालन था। राजा के पास प्रियारी उडला शक्ति के तबानक-नान थ। उता में व सामन्ता शक्ति सम्मिलित हाते थे किन्तु सामन्ता के प्रशासक नाच डकटा किया जाता था और वा सामन्ता प्रजा के अन्तर्गत नानिक स्व करन का बाध्य था। उका सामन्त व्यवस्था में चर्चीत शक्ति

का और राज्य की माया गवाह्न मना करने का उद्देश्य वाध्यता नहीं था।

उन अग्रगण्य युग में जब युद्ध की वृत्ति का प्रहल बुद्ध विनाम हा चुका था, अपन टा म बटा धरन प्रहृत आगानी म राजद्राण कर सपत्ता था, क्याकि धरावदी समय और धन दाना हा स्थितिया म बहूा रहगी पडता थी। इन प्रकार अपनी सत्ता के सिन्हा क इच्छा राजाआ और अपनी शक्ति का सुरक्षित रखने क प्रति मतक महा सामन्ता के बीच एक स्याभात्रिण विरोध बलमान था। धमदिशा स पुष्ट राजभक्ति और अमीनता का आचारागि शपथ भी धार-धार क बलजो और विद्रोहा को रोष नहीं पाता थी।

राज दान सर्वोच्चता का मपय मबडा वषा नर चलता रण। भाग्य क उतार पडाव हुए। राजा कभा सपन हुआ और कभा हार गया। पर अन्तत पद्महर्षी राजाआ क अंत तक परिस्थितिया निश्चित रूप म केन्द्रीय सत्ता क पय में हो गई।

इस सपय में ग्राम और नगर, दोनों ने ही भाग लिया। नगर ने एक बद्राय शक्ति का पक्ष लिया क्योंकि उनके त्ति में यही था कि शान्ति और व्यवस्था कायम हो। बैरवा का औद्योग्य उम धार-धार भग करता था। नगर दा रूपो में शक्ति के सूत्र उपलब्ध कराते थ करा चुगिया तथा ऋणा क माध्यम से। इस प्रकार प्राप्त धन म सामन्ती राजस्व और गवात्रो पर निर्भर करने म राजाआ का मुक्त कर लिया और उन्हें बतनिव सेनाए गयो क योग्य बना लिया। नागरिक अथ-व्यवस्था-द्वारा निर्मित मध्यम वग ने भी राज नन्द का मबदूत बनान म सहयोग दिया। य लाग स्वभावत हा, सामन्ती उच्च वग क विरोधा थ। कि व्यापार क फत्तय क शित सुरक्षित मटका और शान्तिपूण बाजारो का बरूरत था। इहे प्राप्त करने का उद्ये लेकर उहने राजाआ का प त-समयन किया। उहने पूजा का मचय किया और न केवल उच्चतर जीवा-न्तर पा लिया बल्कि सांस्कृति क प्रति एक र्ति भा विकसित कर ती। उन्होने तेगे स्कूल स्थापित किए जो च्च के अनुशासन म मुक्त जन-नामाद क लिए ज्ञान के कद्र बन गए। इन स्कूला से शिक्षा प्राप्त करके निकले नागा न राजकीय प्रशासन विभागा में नौकरिया कर ला और राजगता क पक्ष का बन्ना लिया।

महागीय म मध्यम का क एक अण म रामन कानून का अध्ययन किया। इन लोका न कानून व्यवस्था और सर्वोच्च कर्त्रीय सत्ता म सम्बन्धित रोमन विचारो का मध्य यगीन राजनीति में प्रवेश कराया।

युद्ध प्रणाली में हुए परिवर्तनो ने—उत्तराखण्डस्वरूप बाल क प्रयोग ने राजाआ की शक्ति को बग लिया और उहाई के विशावन्दी क तरीके का ध्यय बना लिया। धव गवात्रो का शक्ति बढ रहा थी तय जागीर-व्यवस्था का प्रभावित करनेवाले आधिक उनट गैर भी सामन्तावग को कमजोर बना रहे थे। इस धम की परिणति य हूई कि राज न जा निरस्तुगता न जोर पकू लिया और सामन्ता खुम्बुलारी मष्ट हो गई।

प्रशासन क क्षय में राज्य क बने-बने विभाग बन गए और उच्चविधायी उनता नियन्त्रण बना सग। भ्रष्टिया अपमरा और कर्तवो की मरफा बढी और म प्रकार इन मरवे धान मध्यम रग का प्रभाव बढा।

इससे म राजा प्रशासन-व्यवस्था का प्रदान था और मीधे अथवा अण प्रतिनिधिया क माध्यम म बधानिक आधिक आधिक और प्रशासकीय कार्यों में भाग लेता था। अधिकार की पुंति म बढ अमरा का रफा उहने बा ही था—मन कानून और बित

का अधिकारी यायाधिपति अथवा मुख्य मन्त्री और जब यह पद समाप्त कर दिया गया तब चान्दनर वापाध्यक्ष कान्स्टेबल और मातन ।

तरहवीं शताब्दी में विधान बनाने और कानून लागू करने का काम संसद के हाथ में आ गया । इसमें मामलत पादरी और मध्यम वर्गों के प्रतिनिधि शामिल होते थे । अपने उच्च सदन (हाउस आफ लॉर्ड्स) का इसने कुछ विशेष विषयों का क्षेत्राधिकार दे दिया । संसद कानून बनाने और राज्या के लिए राजस्व का प्रबंध करनेवाली केन्द्रीय संस्था बन गई । इसकी गतिविधियां ने समाज की एकता को बड़ा बढ़ावा दिया क्योंकि इसके निर्माण से ये बात एक सहयोगी माटन में बंध गए और इसकी सक्रियता राज्य की पूरी प्रजा को सीधे प्रभावित करने लगी । इस प्रकार, राज्य की बढ़ती हुई गतिविधियां ने सामन्ती शक्ति की पृथक्ता और आमनिभरता का समाप्त कर दिया ।

इसी प्रकार 'याय भी सामन्ती अथवा साम्प्रदायिक अदालतों का निम्न मानना न रहा । राज्य का केन्द्रीय अदालत का क्षेत्राधिकार विस्तृत हो गया । यह कि 'सर्वोच्च' सामान्य मुकदमा की अदालत और 'एक्सचेकर' के माध्यम से काम करने लगी । कि 'सर्वोच्च' का क्षेत्राधिकार फौजी मामलों और उन सब मुकदमों पर था जहां शान्ति भंग की गई हो अथवा शक्ति का जबरन प्रयोग किया गया हो । सामान्य मुकदमों की अदालत में राज्य के लोगों के दीवानी मुकदमों का सुना जाता था । 'एक्सचेकर' गार्डियनशिप से और राजस्व के संग्रह और इस्तेमाल से सम्बंध रखनेवाले मुकदमों का सुनावा करता था । राजा की परिषद और संसद भी 'याय-संस्था' के अंग थीं ।

राजा और उसकी अदालतों-द्वारा 'यायिक' अधिकारों का धारण कर लिए जाने से सामन्ती अदालतों की न्यायिक शक्ति का समाप्त होना मिला, क्योंकि वे अब मामले जो व्यवहारतः जागीरी अथवा 'बरा' अदालतों के सामने पट्टा करने थे अब शाही अदालतों की अदालतों में पेश होने लगे ।

यहां एक राबक बात यह है कि एकीकरण की प्रगति सामन्ती राजस्व पर निर्भरता से राजा का मुक्ति का अर्थ अनुमति बनती रही । सामन्ती सेवा महामना-करो, चुगिया आदि के अतिरिक्त आय के नए स्रोत प्रकट हुए जब कि नया प्रकार के भूमि पट्टेदारों पर कर धारण और व्यक्तिगत सम्पत्ति पर कर आपात निरास पर महसूल अदालतों का काम जुमाने तथा विशेषाधिकारों और पना की विक्री । जब कि जलखच महवाकांक्षी और नवाकू राजाओं के लिए ये भी काफी नहीं होते थे तब व मध्यम-वर्गीय महामना और बंधुओं से श्रम लेने का माता अपनाते थे ।

ऐसी ही एक बात ने राजा को भी प्रभावित किया । सामन्ती प्रथा के अनुसार, राजा की सेना में सामन्तों की सेवा करनेवाले अगामी सम्मिलित होते थे । ये वष में चालीस दिन सेवा करने की बाध्य थे और समुद्र-भार जान स दूर भागते थे । इन प्रथा के दोग का महसूस करने हुए बारहवीं शताब्दी में सैनिक सेवा के बदन धन देने का तरीका अपनाया गया और सभी मुक्त जसामिया का उनकी आय के अनुसार सम्मिलित करने के कानून बनाए गए । इस सेना का बृद्धि या शान्ति स्थापित करना जो अपराधों का रोक-थाम करना । राजा-द्वारा नियुक्त जनरल एक सेना छोटी करते थे, जिस स्वयं राजा वेतन देता था और साउ-नमान से लभ करता था । राजा ऐसा सम्मिलित कर पाता था कि उसका राजस्व बढ़ गया था । वेतनमागी गता और बान्धु से दा ऐन स्थिति के जिन्होंने सामन्तवाद के दुग का उन्ना किया ।

चौदहवीं शताब्दी में भारतवर्षीय शताब्दी के बीच सामन्त-युगीन आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों का प्रणाली छिन्न भिन्न हो गई। सामन्ती समाज और चर्च व पौराणिक तन्त्र का आधार था व्यक्तिगत सम्बन्ध जो अज्ञानी और जमींदारों, बामनगार वगैरह और मुक्त किसानों सामन्तों और महामानन्तों महासामन्तों और राजाओं, उस्तादों और कारीगरों के बीच विद्यमान पट्टेदारी और अनिवायतापरक सम्बन्धों का भा प्रभावित करता था। यह व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट कर विच्छन्न गया और इसका स्थान पर एक नई प्रणाली आ गई, जिसमें पट्टेदारी और अनिवायता से सम्बन्धित रिश्ते अखिब पड़बूत बने गए तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध कमजोर पड़ गए। यह प्रणाली अठारहवीं शताब्दी तक चलती रही।

### 3 वाणिज्यवादी प्रणाली

सामन्ती पद्धति व छिन्न भिन्न हुए जाने के बाद सोलहवीं से अठारहवीं तक की दस शताब्दियाँ यूरोपीय इतिहास में मध्य और आधुनिक युग के बीच का संक्रान्ति-काल कहलाती हैं। आर्थिक क्षेत्र में हस्तशिल्प पर आधारित मध्य-युगों के नागरिक व्यापार का स्थान वाणिज्यवादी प्रणाली ने ले लिया और राजनीति में सामन्ती आडों की अदृश्यायत्त जागीरों के डीले-गल सप की जगह केन्द्रीभूत और शक्तिशाली राजकीय एकतन्त्रा ने ले ली। बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी एक विस्तृत और विशाल क्रान्ति हुई, जिसका दिमाग के रचना रचना और वाय-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ा। इसने लोगों के श्रियासा को बहुत गहराई तक शक्यता डाला। इस प्रकार इस तिहरे आन्दोलन ने समाज का रूपांतरण किया और यूरोप के प्रादशिक धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीय, आत्मचेता समाज पर आधारित आधुनिक स्वतन्त्र और स्वागामी राज्यों का युग आ पहुँचा। इन समाजों के सदस्य व्यक्ति और समूह, दोनों ही—राष्ट्रीय भावनाओं और प्राशिक्ष अनुराग व सम्बन्ध-युक्तों से परम्पर बंधे थे।

अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में वाणिज्यवादी प्रणाली ने सामन्ती व्यवस्था का स्थान लिया। वाणिज्यवादी ने नए उद्योगों की स्थापना का प्रोत्साहित किया। आर्थिक सहायता, एक प्रकार और कर से मुक्ति देकर विदेशों का प्रतिस्पर्धिता को सीमित करने युगियों का इन प्रकार दाव कर कि वच्च माल के आयात और तैयार माल के निर्यात का बल मिले, तथा निरन्तर-गारा उत्पादन-स्तर बनाए रख कर इसने उद्योगों का पापन किया। वित्तने नए उद्योगों का नवी शक्ति प्रगति में सहायता किया—उदाहरण के लिए, व्यक्तिवाद का विकास जो मध्य-युगीन प्रणाली के विनाश का एक परिणाम था। प्राचीन सत्त्याओं और मण्डलों के प्रभाव का सोप व्यक्ति की अपन आर्थिक जीवन में बँदना और मासिक कर निरन्तरण से मुक्ति और बुद्धि तथा आत्मा पर सभी जजोरा का टूट कर विच्छन्न जाना।

द्विज कारणों व वाणिज्यवाद का जन्म दिया, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण था पूँजी का संकष। शक्ति रूचि, व्यापार और उद्योगों को प्रभावित किया। इति-युद्ध में धेता की बचतों और भेग पारने के लिए बाडों के निर्माण ने उत्पादन की वृद्धि में सहायता पहुँचाई और उद्योगों के लिए श्रमिक उपलब्ध हुए। व्यापारिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बाडों थीं—निचरी सम्पत्ति का विनाश जिन्होंने इन्तर्निर्णों को व्यापारी उद्योगपतियों के निरन्तरण में आ दिया नए भागों तथा अमरिता एवं भारत जैसे नए देशों की धोर के

फलस्वरूप नए बाजारों का विकास, और यूरोप के आर्थिक क्षेत्र का मध्य-भागरीय देशों में हट कर अन्तर्लान्तिक समुद्र-तटवर्ती देशों में चला जाना ।

भारत और अमेरिका की छोज का बड़ा प्रेरक परिणाम निकला । वाणिज्य और उद्योग आगे बढ़े । सत्रहवीं सदी के अन्त में समुद्रपारीय व्यापार में इंग्लैण्ड का प्राण होनेवाली राष्ट्रीय सम्पत्ति यूरोप से होनेवाली आय की तिगुना थी । वाणिज्य ने नौवहनयन और जहाज-निर्माण का बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया । अमेरिका में यूरोप में सोने और चांदी की एक बाढ़-सी आ गई । उस प्रकार तरल पूंजी अचानक ही बढ़ गई और इससे व्यावसायिक उद्योगों का बड़ा बल मिला । वाणिज्य और उद्योग की नई-नई प्रणालियाँ ने व्यापारियों और उद्योगपतियों का तान पट्टा चलाया ।

वाणिज्यवादी पद्धति के आने से आर्यजन एकना का भी पग पुष्ट हुआ । इतने सिक्कों, बाटा और गजों में विद्यमान विषमताओं को दूर कर लिया । इतने चुंगी की श्वावटों और नगर-बुनियातों को समाप्त करके स्थानीय प्रयागों का जगह एक सामान्य नीति लागू की और एक सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था स्थापित की । इतने राज्य के अधिकारों में वृद्धि की । राज्य के सभी विरोधों—चूच, चखे और सामन्ती जागीरों—इसके बढ़ते हुए नियन्त्रण के आगे धुंफ गए । वाणिज्यवादी नीतियों के द्वारा राज्य ने धन और शक्ति प्राप्त की, जिसका उपयोग उमने उपनिवेश बनाने, सेनाएँ घड़ी करने और विरोधियों के विरुद्ध युद्ध करने में किया ।

वाणिज्यवादी अर्थ-व्यवस्था उत्पादन के उस तरीके पर आधारित थी, जिसे घरेलू पद्धति कहते हैं । इसका अनुसार कारागार अपने परिवार के माथ अपने घर पर ही काम करता था । काम के जोड़ार उसके अपने हाने थे, लेकिन त्रिबुतियाँ अथवा व्यवसायों के बाल उससे देता था और तयार माल बेचने के लिए ले लेता था । इस प्रकार, व्यापारों से सीधा सम्बन्ध रखता था और निमाता की मश्रियता पर नियन्त्रण रखता था । वाणिज्यवाद ने मध्य-वर्ग और बुजुर्गों का पूनावाद को विजय दिलाई ।

वाणिज्यवाद उस राजनीतिक परिवर्तन का ही एक हिस्सा था, जिसके अधीन राज्य पूरा प्रभाव और सत्ता अपने पास सचिन कर रहा था । सत्रहवीं शताब्दी में सामन्ती कुचानन्त्र ने राज्य का मुकाबला करना और उसकी सत्ता का सीमित करना छोड़ दिया । लेकिन लोगों की बुद्धि और उनके विश्वासों पर चर्चों का प्रभाव जमा तक थाकी था । जिन आन्दोलनों ने मानव-मस्तिष्क का मुक्त किया और रामन वैज्ञानिक चर्च के सगटन और अनुमागन का भर किया वे ये नवजागरण और सुधार आन्दारन ।

जवागरण जो इटली में आरम्भ हुआ, एक सश्लिष्ट प्रक्रिया था । अपने आरम्भिक स्तरों में यह प्राचीन यूनान की सांस्कृतिक परम्परा का पुनरुद्धार था । लेकिन यूनानों सस्कृति एक बौद्धिक, तार्किक और वैज्ञानिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति थी । यह सम्भना मानवतावाद से परिपुष थी और नसर्गिक जीवन में रम लेती थी । इसमें अति मानवीय सत्ता को कोई महत्व प्राप्त नहा था ।

दूसरी ओर, सामन्ती यूरोप में धन का प्रभाव सबव्याप्त था और राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन भी उसके निर्देशन तथा नियन्त्रण के पूरी तरह बाहर नहीं था । चूच ने उन सोनाओं को भी निर्धारित कर दिया था जिनमें रह कर बुद्धि अथवा तक अपना काम करें । वह जीवन के सभी पन्ना में इमाइया के आचरण और जीवन को नियमित करता था और उनके लिए धरहरार के स्तर निर्दिष्ट करता था ।



नवजागरण ने इस मध्य-युगीन धर्मतंत्र का धारण चोट पहुंचाई। लग अब अपने सत्ता के समय के लिए बुद्धि का सहारा लेने लगे। धर्म की सत्ता और परम्परा का नाश को उन्होंने छानबीन आरम्भ कर दी। वे प्रकृति और विज्ञान, मानव और उसका पुनर्-सृष्टि, मौखिक और साहित्यिक कार्यों में रचि लेने लगे। व्यक्ति ने साम्प्रदायिक जीवन से उस छील का पाठ लिया, निमग्न वह अब तन बन्द था।

इस प्रकार प्राप्त स्वतंत्रता धर्म के क्षेत्र में भी शीघ्र ही फैल गई। लूथर-जर्मनी ने रोमन कथालिख चर्च के निन्देता और सिद्धान्ता की परीक्षा आरम्भ कर दी और अपनी आत्मा का पीटर की चट्टान के सहारे टियान के बदले अपने जावन की सर्गित प्रकृतिक विज्ञानात्मक मूर्तना शुरू किया। चर्च का एकता विखर गई। इंग्लैंड के राजा या सत्ता की सहमति से रोम के साथ अपना आन्व्या-सम्बन्ध तोड़ दिया और इंग्लैंड के प्रोटेस्टेंट चर्च पर सर्वोच्च अधिकार प्राप्त कर लिया। जर्मनी में कितने ही राजा लूथर का अनुगमन किया और रोमन कथालिख मान्यताओं और पाप की सर्वोच्चता को नकारा दे दी। कालविन ने स्वित्जरलण्ड में एक ऐसे ही आन्दोलन का नेतृत्व किया। प्रोटेस्टेंट मत यूरोप के दूसरे देशों में फैल गया।

सुधार-आन्दोलन ने हर यूरोपीय देश का रोमन कथालिख और प्रोटेस्टेंट इन दो विचारधाराओं में बांट दिया। प्रत्येक मत का उद्देश्य न केवल मानव के सकीर्ण धार्मिक जीवन का नियन्त्रण था बल्कि उसमें राजनीतिक, आर्थिक और नागरिक आन्दोलन का निन्देता भी था। ऐसा परिस्थिति में युद्ध अनिवार्य था। जब विभेद इस सीमा तक पहुंच जाता है कि समझौता सम्भव नहीं रहता, तब तत्काल निर्णायक बनती है।

सौवहवां शताब्दी के मध्य में सत्रहवां शताब्दी के मध्य तक के नौ वर्षों में यूरोप में युद्धों का उदय रहा। भयंकर हत्याकाण्डों और विश्वसक सन्निव-अभिमानों के बाद अन्ततः यूरोपियनों ने यह सब साक्षात् कि एक साथ ही अच्छा रोमन कथालिख और प्रोटेस्टेंट मत सम्भव है और इनके साथ ही अपने प्रादेशिक राज्यों के प्रति वफादार भी रह जा सकता है।

इस प्रकार राजनीति में धर्म निरपेक्षता आई और धर्म उन विषयों में उलझने से मुक्त हो गया जिनकी जड़ें मानव के निम्न भासात्मिक स्वार्थों में थीं। ईसा की सत्ताह तक जो चीजें मौजुर की हैं उन्हें मौजुर का दे दो, और जो भगवान की हैं उन्हें भगवान की बना। लागू हुए और शांतिपूर्ण स्थिति स्थापित हुई। मत और सम्प्रदाय अपने-अपने भाव भूच गए और मानव उद्देश्यों की स्थिति के लिए समान राष्ट्रीयता के सम्मिलित कार्य बन गए।

राष्ट्रीय राजशाहों आधुनिक यूरोप के निर्माण में तीन आन्दोलन एक साथ दिखना शुरू किया। पाणि-सत्ता ने राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय शक्ति की आर्थिक और शारीरिक नवजागरण। राष्ट्रीय भाषाओं और सभ्यता का प्रास्ताविक किया और सुधार आन्दोलन ने राष्ट्रीय चर्चा का स्थापना की। मध्य-युगीन विश्वसक का स्वान धर्म निन्देता और प्रादेशिक समाजों के पुनर्जागरण ने ले लिया।

#### 4 औद्योगिक क्रान्ति और राष्ट्रवाद

राजशाहों का अन्तर्गत राजनीतिक सत्ता का अधून यूरोपीय जातिधर्म में राष्ट्रीयता का स्थापना दिखता है। यह सत्ता के नए रूप थे—एक देश विशेष में

रहनवाले लोग की समानता की चेतना, और अन्ध देशों के वासियों में एक भेद की चेतना ।

इसने पटना देखा था, जहाँ इस प्रकार का राष्ट्रीय भाव प्रकट हुआ । कारण यह हुआ कि सन् 1688 की अंग्रेजी क्रांति के फलस्वरूप मत्ता राजा के हाथ में निकल कर स्वयं प्रजा का मिल गई थी । वफादारी शासक के प्रति न रह कर स्वयं जनता के प्रति उन्मुख हो गई थी । फिर, व्यक्ति एवं समाज ने अपनी एकता अपनी मसद् में पा ली थी । पहला जनप्रिय राष्ट्रीय गीत 'लैटिनेरिया' सन् 1740 में लिखा गया था ।

सन् 1789 में फ्रांस का प्राचीन शासन एक खूना क्रान्ति की लपटा में जल कर भस्म हो गया । इस विप्लव में राजा के दिव्य अधिकार का सिद्धान्त नष्ट हो गया । चादहक लुई की बदनाम घोषणा 'राज्य नहीं, मैं हूँ राज्य' और उसके प्रपौत्र पंद्रहवें लुई की गर्वोक्ति 'सर्वोच्च मत्ता सिर्फ मेरे व्यक्ति में निहित है, मेरी जनता मुझसे एक रूप हाव है' अस्तित्व खोता है' शब्द में उछाल दा गई । क्रान्ति के बाद फ्रांस एक गणतन्त्र प्रभुत्व हुआ और नेपालियन की विजया ने उन यगोदीप्त कर दिया ।

नेपालियन का विप्लव न यगो म राष्ट्रवाद का मशान जता दी और सत्रहवाँ शाब्दी के उपरान्त देशान्तर, एक व वाद एक, उमकी चमक का महम्म किया । यमान नार वेन्दियम नमनी और इटली पोलैण्ड और हुगरी राष्ट्रवाद की प्रेरणा से प्रेरित हुए और उन्होंने स्वतन्त्रता तथा एकता की कामना का । अंग्रेजिया पर उमक जादू का असर होत लगा । जापान ने नेतत्व किया । तुर्की, ईरान चान और भारत मभा न एक हतचल आर उत्तेजना भन्म की । आज राष्ट्रवाद एक विश्वव्यापी परिस्थिति है । यह सभी महादीपा के लोग को आत्मानित और अनप्राणित करता है ।

सामन्तवादा जराजनता से राष्ट्रवाद सगठन तक पहचान में युरोप को मान्यता दिया लगा । लेकिन जस ही एक बार राष्ट्रवाद स्थिर हो गया, प्रांति की रफ्तार तेज हो गई ।

चूँकि मध्य-युग राष्ट्रवाद का अगुवा था इमलिए स्वभावन ही उन द्वारा मधुप्रथम लाभ भी मिला । राजनीतिक शक्ति उनके हाथों में चला गई और राष्ट्रों की जय-व्यवस्था में उनके हित प्रधान बन गए । मत्ता व राजा और एक म्द अनपतन्त्र के यजे स निवृत्त कर बुद्धिवा-यग के हाथों में पहुँच जाने का पस हुआ मुक्त समाज का उन्भव । ये समाज सिर्फ इसलिए स्वतन्त्र नहीं है कि विदेशी नियन्त्रण अथवा हस्तक्षेप न मुक्त है और न सिर्फ उस कारण कि अपनी शक्तियों के प्रयोग में ये स्वतन्त्र है बल्कि इसलिए कि ये उन मत्ता का आदेश मानते हैं जो उनका अपनी रज्ज में जनता की इच्छा में, निहित है । इन समाजों में राजनीतिक शक्ति का प्रयोग मत्ताधिकार के माध्यम से जनता-द्वारा चुने गए जन प्रतिनिधियों-द्वारा किया जाता है । इकरा का स्वतन्त्रता हान से व्यक्ति की आर्थिक स्वतन्त्रता सुरक्षित था । चिन्तन अभिव्यक्ति धर्म और जीविता के क्षेत्रों में व्यक्तिगत शक्ति पर लग बंधन टूट जाने से व्यक्ति की सामूहिक स्वतन्त्रता निश्चित है ।

मध्य-युग के समाज में पूजावाग जय-व्यवस्था व विज्ञान व कारण उत्पादन न अत्यन्त उन्नति का है और मर्मति का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है । अधिकांशिक लोग न धर्मव आर मत्ता में हिम्मा किया है और इस प्रकार पूर समाज व माय शक्ति का एक-रूपता का प्रम पूरा समानता स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र की उपलब्धि की आर आर तेजी से आग बढ़ा है । इन विज्ञान प्रम व बीच व्यक्ति समाज आर राज्य व महत्व का

उनका स्थिति में शान्ति आ गई है और मानवय मन्वा एव उदहया । सम्बन्धित धारणाभा का पून रूपान्तरण हा गया ह ।

### यूरोप का विस्तार

यूरोप का पूजावादा ममाज अपनी प्रकृति में निहित तब व द्वारा बुनिया भर में फल जान क लिए प्रेरित हुआ जिसमें वह अपने उद्योगो क लिए बच्चा माल प्राप्त कर सके और अपन समार माल के लिए नए बाजार ढूढ सके । इसी खान म वह भारत पहुचा । तब पूजावादा यूरोप के सबसे प्रगतिशाल देश इम्पेड न इस देश पर अपना आधिपत्य जमा लिया और उन शक्तियो को गति दे दी, जिन्होंने इसे बदन जाना । इस प्रकार प्रेरित होकर भारत ने राष्ट्रियता का आर जानेवाला भाग निश्चित किया और राष्ट्रीय एतना का चेतना के जाग उठने से स्फूर्त और जाग्रत भारतीयो ने स्वतन्त्रता-आप्ति के लिए सर्वय किया ।

यूरोप के सामाजिक विकास का इतिहास जो प्रकाश डालता है, उससे भारत के यतात को समझने में सहायता मिलती ह । यूरोपियनो के आने से पहले ऐतिहासिक परि बनना का गति और रूपरेखा जिस शली का अनमरण कर रही थी, वह भारत की स्थितिया व अनुभूत ही था । इस परिवर्तन का क्रम बहुत धीमा था, क्योंकि जावन स्थितिया रुढ थी । या ता जनमक्ष्या स्थिर थी मा उममें आनेवाला उतार चगाव दश व विशाल निजन प्रेशो द्वारा सम्भाल लिया जाता था । उत्पादन व उसके स्थिर और लागो की मामूला जुरूता व लिए काफी थे । सामाजिक स्तर विकास रुढ था और सामाजिक गतिशीलता अनुस्थित । तब गत्रहवा शताब्दी के मध्य म भारत के लोग पश्चिम के एव ऐसे वेगवान ममाज का भयानक टकरार में आ गए, जो सम्यता के ममी रूपो में उससे भिन्न था । फलत पश्चिमी प्रभाव उग्र गति से अपना काम करने लगे । उन्होंने सामाजिक परिवर्तनो के त्रम को तेज कर दिया और उन समान परिणामों को उत्पन्न किया, जिहें यूरोप अनुभव कर चुका था ।

भारत म औराजव का मृत्यु क बाद पतन बन्ना तेजा से हुआ । अठारहवीं शताब्दा के मध्य तक केन्द्रीय सत्ता पूरी तन्त गूट हो चुका था । और एव जब्यवस्था तथा अराजकता मग छा गई था । दुर्भाग्यवश, कोई व्यक्ति या समूह मुगा साम्राज्य का स्थान देने और त्ग का एकाका बनाए रखने क लिए ऊपर नहीं आया । इस प्रकार जो राजनीतिक शून्य बना उमने विशेश शक्तियो का घामन्धित किया । अतीत में, समान परिस्थितिया में मध्य-एशिया के हमलावर इस शून्य को भरने रहे थे । अठारहवा शताब्दी में भारत क उत्तर-पश्चिमा पदाशा घानक पारम्परिक मयम में उलझे हुए थे । यद्यपि सन् 1739 में नारिण शाहन और 1748 और 1773 के बीच अहमद शाह अब्दाली क भारत पर आक्रमण टिल आर शिल्ता साम्राज्य व बिग्रस्ते हुए ढाके को घातक आपात पहुचाए तयारि ईरान अरमानिस्तान और मध्य एशिया का आन्तरिक अवस्थाए मद्दमू गजनवी, शशवुरान गारा और बाबर की उपनगियों को दुहरान में अममय रहा ।

इत प्रकार परिस्थितिया समुद्र पार के विदेशियो को इन बात के लिए प्रेरित करने लगा कि व भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करें । इनमें से कई एव-दूतारे ने प्रति द्वा व । अत में अपकों ने अपने ममा यूरोपीय विराधिया का हरा दिया और भारत के भागो का व अनन सामन से अनगत से आण ।

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के साथ पदा उज्जा है और अत्यन्त मानवीय शक्ति का एक प्रभावशाली गणक आरम्भ होता है जिसका जन्म दिन 15 अगस्त 1947 के दिन होता है। यह नाटक उस ही महावाल्मीकीय का। इसके परिणाम और उपसंहार में दा उजासिता बोल गइ। जसा कि जय सभी नाटकों में होता है नैतिक और शैक्षिक शक्तियाँ का बहुत समय इमना बघावन्तु का नून विषय है। इसकी प्रस्तुतना प्राचीन युगों में गयी है उक्ति इस नाटकीय महावाल्मीकी घटनाका का इतिहास बठा रहनी शताब्दी के उन आग्नि कर्षों में प्रारम्भ होता है, उन प्राचीन भारत लुप्त होने लगा और न शक्तिया ज्ञान प्रभाव समान गयीं।

इस नाटक का परिणाम तीन अंशों में हुआ है। पहले अंश में भारत, जिसकी सामर्थ्य न उन घातों के दिना है अन्तर्गत का हानि का दिना में औपि नह गिरता है। दूसरे अंश में एक कृषि तरह विद्वान्ता मध्यना का आगत एक नई स्फूर्ति पैदा करता है, जो प्राचीन शक्ति के अन्तर्गतों का एक ताजा आरम्भ-पद्धति के रूप में विकसित करती है। और, अन्तिम अंश में इस प्रकार पुनः न प्रान्त भारत स्थितानुभव आत्मोन्नति और स्वतन्त्रता को बार बढ़ता है।

## पहला अध्याय

### मुगल-साम्राज्य का पतन और विनाश

#### औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारी

पचास वर्षों तक उस साम्राज्य का वागडार औरंगजेब व हाया भ रही जा जाकर जन-सहया और वभव की दृष्टि से समवालीन विश्व व राज्या म अनुत्तनाम था । अपन अत्यन्त दुबह वतव्य का पालन करन म उमने अनुराग, मनोयोग साहस आर धय के उन गुणा का परिचय दिया जा उस मानवा का एक विरुणण नामक बना तैत ह । अपन व्यक्तिगत जीवन में वह एक आत्श व्यक्ति था । यह उन मत्र बरान्या से मुक्त था जा एशिया व राताश्रा और शासका में सामायत था । वह सरल जीवन नहीं, तपस्वी का-सा जीवन बिताता था । धाने-धाने वेश भूषा आर जावन की जय सभी सुख-भविषाआ में वह मर्दम बरतता था । साम्राज्य के प्रशासन व मारा काम में अमन रन्ते हुए भा वह अपनी उरुरता का पूरा करन के लिए कुरान का नयन करके आर टोपिया साँवर कुछ पसा कमान का गमय निक्कान लेता था । उसका अन्तिम बसीयत म अपन दफनाए जाने के शर्चों व गम्बज में उमके आदश इस प्रकार थे 'मरी मिली हई टापिया के मूत्य में से चार रुपये दो आने मंगलदार जाया बेग के पाम ह । वह पमा ले लना और उसे इस गरीब पर पफन डालन म खच कर दना । कुरान का नकल करके बमाए गए तीन सौ पाच रुपये भर व्यक्तिगत शर्चों के लिए मेरा धैती में पडे ह । मरा मत्यु व दिन उन्हें फकीरा में बाट देना ।' उत्तरी त्तिचर्या बढी बठार था चौभाग घण्टों में मे बेबन तीन घण्ट वह साता था । वर घना ही सल्ल काम ननवाला था अपन म भी आर दूगरा से भी । अपने विशाल प्रशासन व एक-एक विवरण की वह देखभान करना था आर हर मनिक् अभियान का स्वय निगान करता था । उगमें अणय स्फूर्ति और प्रबल इच्छा शक्ति थी ।

फिर भी इतना मेहनत, सतक देखभाल, निष्ठापुत्रा पवित्र जीवन तथा प्रशासन, कटनानित और सनापति के रूप में उसका अगन्तिघ माय्यता के दाबानू उसका शासन अगहन रहा । यह स्वय भी इग वात का जानता था । अपन त्तितीय पुत्र आजम का त्रिजे अन्तिम पत्र में उमन स्वीकार किया था म मन्तनन की मच्छी हुक्मन और विमाना की मनाई एकदम नहः कर सना ह । इतनी बेजकीमता जित्या बकार गई ।<sup>3</sup>

अपनी मूत्यु मे ठाव पहल औरंगजेब न अपने साम्राज्य का अपा तीन बेटा मुअररुम, दादरम और कामयंग व बीरा बाट दिया था । लेकिन अभी उत्तरी आध मुद ही रही था कि गरी पर अधिचार पान व लिए उनका बीच शगडे आरम्भ हो गए । भाद्यों के बाच हुए इग मरण में मुअररुम विजया रहा और वह बहादुर शाह व नाम स गद्दी पर बठा । निन्तु उसका शागा-जान अत्यन्त रहा— तार हा यष शागा करने वह मन 1712 में भर गया ।

1 यदुनाथ सरकार 'हिस्टरी आफ औरंगजेब', पृष्ठ 5, पृष्ठ 264

2 यदुनाथ सरकार 'स्टडीज इन औरंगजेब रेन', पृष्ठ 38

3 यदुनाथ सरकार, 'हिस्टरी आफ औरंगजेब' पृष्ठ 5, पृष्ठ 259

जब उत्तराधिकार के लिए पुनः युद्ध आरम्भ हुआ गया।

उसके चाचा बेदा ने गद्दी पान के लिए जून बेहूदा डा से जल्द गद्दी का विवेचन करवाकर शाह की सार का सामना एक महीने तक दफनाया भा नहीं जा सका। अन्त में यह युद्ध बादशाह के द्वितीय बार सम्पन्न होने पर आज़िमुद्दौल्ला तथा दूसरी ओर विनाशी जहादा शाह के बीच इन्त में परिणत हो गया। लेकिन युद्ध-मंचालन में आज़िमुद्दौल्ला की मखना और बाहिनी तथा ईरानी दल के एक प्रमुख नेता जुल्फिकार खा और शारी सेना के प्रथम उपाधी मीर दफ्ता के साथ सेनापतित्व के कारण गद्दी जहादा शाह को मिल गई।

जहादा शाह के गद्दी पर जून में साम्राज्य की राजनीति में एक नए विन्दु मनुहूष नन्द ने प्रवेश किया। अन्त तक उत्तराधिकार-युद्ध में राजकुमार स्वयं ही प्रधान प्रतिद्वन्द्वी रहा करते थे। जब वे पाठि चल गए और उनके स्थान पर मह बाकाशी मामलत, बड़े पदाधिकारी तथा दला के नेता शक्ति के प्रमत्ती प्रतियोगी बन गए। उन्होंने राजकुमारों को नाम-मात्र के राजा और दिग्बावणी प्रमुखा के रूप में इस्तेमाल किया, क्योंकि इन नामों के साथ सम्मान जुटाया जा सकता है और शाह मुहम्मद से जादेगों और निदेशों का काननी रूप मिल जाता था। ये स्थिति सामान्य साम्राज्य का बनानेवाले बन गए। उन्होंने मत्ता और मरणा का प्रयोग किया और वैभव नष्ट कर लिया। आपस के घातक सन्धय छुट कर आरम्भ हो गए और उन्होंने साम्राज्य के विनाश आकार का नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

जहादा शाह सापरवाह लम्पट और 'धागचपन की हूँ तक नरोबाद' का। जून के राजा-राज्य और नन्द्य दरवागी जीवन का एक दुष्ट नमूना सामने रखा और शासक-वर्ग की नैतिकता का कल्पित कर दिया। उसके प्रभाव ने न केवल प्राचीन शाही गौरव का पुनरुद्धार अमम्भव कर दिया, बल्कि मामूली सीमाओं के एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में बचने की उनकी सम्भावनाओं का भा पून में मिला दिया।

बादशाह एक कठपुतली बन कर रह गया और सारी सत्ता बजोर तथा अय मन्त्रियों के हाथ में चला गई। फिर उन्होंने अपने कतन्य अपने महायका के हाथों में सौंप दिए। इस प्रकार, उत्तराधिकार बट गया और पर सत्तामौल मन्त्री की इच्छा और छल के अनुसार एक से दूसरे व्यक्ति के हाथों में चान चो। अन्त्यापी पदाधिकारियों ने इन अवसरों का उपयोग शीघ्रतापूर्वक साम सामने के लिए किया। परिणामतः प्रशासन में सापरवाही हान लगी और अज्ञानता फैल गई। गद्दी के लिए बहुत-से उम्मीदवार प्रवृत्त हो गए और उत्तराधिकार के जल्दी-जल्दी बसतन में राजभक्ति की भावना सुस्त हो गई।

अपने ग्यारह महीने के शासन में जहादा शाह ने अपने पूवजा-द्वारा मन्त्रित छद्मना का अतिरिक्त भाग लुटा दिया। साना, चादी और चांद के समय में इच्छा की गई अन्य मूल्यवान् चीजें उड़ा दी गईं।

तब बरखा के सिद्धांत पर खगोलशास्त्र का मन्त्राट के विरुद्ध युद्ध कर दिया। जहाँ-जहाँ सेना का छान कर अन्ती प्रिय बेगम सान कवर के साथ युद्ध के अन्त में सापरवाहिक भाग विनाश।

दुमायदा, खगोलशास्त्र एक घुमावदार चरित्र का व्यक्ति निश्चय हुआ। वह अपने बन्दा का गुंडा होने की प्रशिक्षण के प्रतिवृत्त, कष्ट-सा-द्वारा दररोज अन्धिरानि नकार कर देता है। वह अन्त प्रिय व्यक्तिगत अनुचर मार जुमता और खान

दौरा छा वे बहने पर चतना था। उम्मा सैयद-अ-मुत्ता स शमशा आरम्भ कर दिया जोर वास्तुविश्व शक्ति प्रयोग का प्रयत्न किया। अब, स्वभावतः ही सैयद-अ-मुत्ता जिन्होंने अपनी अतन्त्रिय योग्यता और विज्ञान साम्राज्य का उससे हवाल कर दिया था शासक पर विशेषकर नियुक्ति पर, और विज्ञान से होनेवाले काम व बटवारे पर अपना पूरा नियंत्रण चाहते लगे।

गतिरोप दिन पर दिन कटुतर होता गया। सयदा क नियंत्रण को तोड़ फेंकने की इच्छा से फर्रुखियर 7 अत्यन्त गहिन टग के डाह और पड्यन्त का सहारा लिया। हुसन अन्ना का राजपूताने के विद्रोहियों को दबाने के लिए जानेवाली सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। साथ ही विद्रोही जाघपुर-नरेस अजित सिंह राठौर का गुप्त पत्र लिखा गया कि यदि उसने हुसन अन्ना को समाप्त करा दिया तो उसे भारा इनाम दिए जाएंगे। योजना विकल रही। अजित सिंह न घुन टक दिए और इसने भी बड़ी बात यह कि सम्राट के पत्र उसने हुसन अन्ना को सौंप दिए। अब एक दूसरा पड्यन्त रचा गया। दरसन के सूबे 'नरनिजामुल्मुल्क' को वापस बुला लिया गया और उम सूबे को हुसन अन्ना के सुपुद कर दिया गया। अब वह दरसन जान के रास्ते में था, तब दरसन के सहायक मवेदार 'नर' का को गुप्त रूप से भडवाया गया कि वह उगे राते। यह पड्यन्त भी व्यथ रहा। 'नर' हार गया और मारा गया।

तीन वर्षों तक ऐम ही दावपेच चलते रहे। बादशाह न एक व बाए एक विश्वस्त सरदारों को अशुल्का को कुचलने का काम उस समय सौंपा जब उसका भाई दरसन में था। पर किनी म भी यह काम करने का साहस न था। अब उसी अपने समुद्र राजा अजित सिंह को सहायता के लिए बुलाया। तबिन जाघपुर का वह चतुर वृद्ध शासक अपने मामाता व चरित को जानता था। वह दिल्ली जाया पर उसने सयद अशुल्का का साथ दिया। तुराही दन व नता निजामुल्मुल्क जोर उसके भतीजे मुहम्मद अमीन का जम मुगल कुनीनतन्त्र के टोग स्तम्भ भी मिलिनि और अविश्वसनीय बाग्याह व विरोधी बन गए।

जब इन पड्यन्तों की कहानी हुसन अन्ना तक पहुँची तब उसने उत्तर की आर यात्रा में शामिल की। सन 1719 म वह दिल्ली पचा और उम दुभास्यपूष म्यति को साथ व लिए तत्काल समाप्त कर देने का उसने निश्चय किया। उसकी सौंप के साथ पड्यन्त बाजाज विशनाय सेनापति खाइराव दमाडे, सत्ताजा भागने और जय लोगा व नन व म स्याह ह्जार मराठ भी थे। शिल्पा व शिले आर महल में फर्रुखियर के गहायता का समाप्त कर दिया गया। बादशाह जो कायरापूषक म्यिया के मरुत म का शिल था सींच कर बाहर लाया गया। उस अजा करके एक उजाट अधेरा और दिना निती साउ-नामानवाची छाटी-नी बाठरी में बदी बना लिया गया। फिर उसे बुरी तरह अपमानित किया गया, भूषा रखा गया पाटा गया, हल्का उजर दिया गया और अजित कुठ दिना का बडे ही अपमान का टग में उतारा वध कर दिया गया।

फर्रुखियर के शासन व गिन-चुने वर्षों में साम्राज्य ने विपट की आर लम्बे लम्बे उन थे। हर वहीँ नयान अन्तरस्था फैल गई। मरणा, उमानादी और बजाज का शासन 7 गनारी सत्ता का अन्ना करारा आरम्भ कर दिया। दिल्ली की शिया म बडे गनारा व अनुपर आपग में शासक बनने लगे। सत्त चारों ओर शत्रुओं ने भर

गई। फर्रुखियार ने शान्ति से शाही राजधानी में लाने जानेवाले 'तन्ख' का मा' में हा गढ़वाड़ करा देने का उदाहरण प्रस्तुत किया था। यह ऐसा उदाहरण था, जिनका लाभ उठाने से वे महत्वनाशी साहसिक लोग नहीं चूकें, जो स्वतन्त्र सामन्त राज्य स्थापित करने के इच्छु थे। शाही आदेशों का खन रूप में ता' जाने लगा जोर प'श्विकारी विना अनुमति के ही अपने पद छोड़ कर चले जान लगे। जिन नियमों और आदेशों का औरगज़ेब के समय मघनी से पालन किया जाता था उनकी अब उपेक्षा होन ली। भ्रष्टाचार और अन्व्यवस्था फैल गई। आय कम हो गई और सक्ति सम्पत्ति चुक गई। दलत बकाया पड़ गए और भूखी सेना विद्रोही बन गई।

तो सबसे भयानक बात हुई, वह थी विभिन्न दलों में सम्बन्ध रखनेवाले सरदारों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और ईर्ष्या-द्वेष। इनमें चार दल महत्वपूर्ण थे तुरानी ईरानी अफगान और हिन्दुस्तानी। इनमें पहले तीन मध्य-एशिया रगन और अफगानिस्तान से आए उन विदेशियों के बंशज थे, जिन्हें भारत आन पर नागरिक और सैनिक विभागों में नियुक्त किया गया था। इनमें से बहुत-से परिवार औरगज़ेब के शासन-काल में ही भारत पहुँचे थे और ऊँचे पदा पर आसोन हो गए थे। ट्रांस-आक्सियाना में जाए तुरानी मुन्गी मतावनम्बी थे। ईरानियों ने ईरान के पूर्वी और पश्चिमी प्रान्तों, खुगसान और फारस में स्थानान्तरण किया था। ये शिया थे। अफगान सिन्धु-नार के सीमावर्ती पहाड़ी प्रदेशों से आए थे। इनमें बहुत-से हूले कबीले थे। ये अधिकतर सुन्नी थे। इन्होंने उत्तर भारत के कितने ही स्थानों में, विशेषकर बरेली और फर्रुखाबाद में अपनी स्थायी वास्तव्य बसा ली थीं। हिन्दुस्तानी सरदारों में वे मुस्लिम परिवार सम्मिलित थे, जो उस देश में पीढ़ियाँ से रह रहे थे। स्वभाव ही के ना जानेवालों से ईर्ष्या करते थे।

जब तक केंद्रीय सत्ता मजबूत रही यं दल नियंत्रण में रहे। लेकिन बहादुरशाह की मृत्यु के बाद इनका महत्व और प्रभाव बढ़ गया क्योंकि विराधी दावेदारों ने सत्ता प्राप्त करने के लिए इनमें महायुद्धों का आरम्भ कर लिया। अठारहवीं शताब्दी का इतिहास इनके प'पयन्त्रा और बेहद नेत्री से बफादारी बल्लन की कथाओं से भरा पड़ा है।

हर दल ने सम्राट के व्यक्तिगत पर नियन्त्रण प्राप्त अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश की। इस लिए वे कभी भी तरीके खनमान करने और कीमत की परवाह न करते हुए जहा से भी मिले वही से सहायता लेने में नहीं चूकते थे। यही कारण है कि जब उस अमी ने फर्रुखियार का सिंहासनच्युत करने का निणय किया था तब वह मराठा का ले आया था और सम्राट का उमने मजबूर किया था कि वह शिवाजी की विजया के प'घाट पर भाग गए उनके स्वराज्य की न केवल पुष्टि करे बल्कि दक्खन में और और मरदेख-मुन्गी बंधुन करने की अनुमति भी उन्हें दे दे। इसका जय यह हुआ कि प्रान्तीय राजस्व का पनीम प्रतिशन, जो अठारह बरोड रुपये की विनाश रानि बनता था उनके पास चना गया। इस समयोत्रे से 'मराठा राज्य का शासन वागे में सम्राट का एक अधीनस्थ और आजादारी सेवर तो बन गया, पर राजस्व में उसकी हिस्सेदारी हो गई और साम्राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करने का उसे बहाना मिल गया।

पर सैयद-बंशु लम्बे समय तक अपनी विजय का आनन्द नहीं ले सके। मुहम्मद शाह ने, जिने उरानि गही पर विजया था उनकी अधीनता का विरोध किया। तुरानी लक्ष्य वे नेता खान का सुवेगर निजामुन्नुक मुगल सेना का सेनापति मार मुहम्मद अली का उनका भनाका तथा साहौर का सुवेगर अहममद था आदि और



उराना तब तक मुगल भी मरणा के पास न पहुँच पाए थे। इन मरतवा उद्द समाप्त कर देने का निश्चय लिया। उराना मुगल मिलने पर सय्याह न उन्हे उनका पदा से हटा देने का निश्चय किया। तबिन जा मना उराने निजामुल्मुल्क के विरुद्ध भेजी वह हार गए और उराना मनापति मारा गया। इस पर हुसैन अला मुहम्मद शाह का साथ तब निजामुल्मुल्क को बुचबन के निगम्वय बना। मुहम्मद अमीन खा न जो सहायक बनने का रूप में उमके साथ गया था सय्याह का भारत का जान रचा। जब सेना फतहपुर सीक। न जाग बढ़ा तब पटवर्तन का नाग किया गया और हुसैन जली का मार्ग डाला गया (मन 1720)। इसमें अन्तर्ला बहुत रूठ हो गया और भाई का मृत्यु का बदला तब क उद्देश्य से उसन मुहम्मद शाह को हटा देने का निगम्वय किया तथा उसे युद्ध के लिए तैयार। तबिन वह हार गया और बन्दी बना लिया गया। दो साल बाद उस बंद म ही तहलर न दिया गया। इस प्रकार फरगनियर के मिह्रासनच्युत हाने के इक्षीस महीने के भीतर ही राजा बनानवाना का किम्मत का पसला हो गया।

युवक मुहम्मदशाह को प्रशासन में कोई रुचि नहीं थी। वह निम्न काल के लोगों से घिरा रहता था और तुच्छ कामों में अपना समय बिताता था। उसने सब-कुछ मीर मुहम्मद अमान खा के बेटे और अपने बजौर बमरहीन खा के हाथों में छोड़ दिया। लेकिन बजौर काहित सुस्त और बिनासप्रिय व्यक्ति साबित हुआ। दिल्ली में कोई शासन न रहा। प्रांतीय सूबदार को विपत्ति पाने पर महायता न मिल पाती। जब नादिर शाह अफगानिस्तान पर चढ़ आया और कानून के सूत्रधार में सैनिक सहायता तथा बकाया बतलन अंग करन के लिए धन मागा, तब उमकी प्रायता पर का ध्यान नहीं दिया गया।

इधर प्रमुख सरदार बमरहान की बड़ी हुई ताकत से इर्ष्या करन लगे थे और साम्राज्य के विरुद्ध उमर मद्रुआ के साथ राजद्रोहपूण घडयन्त्र रच रहे थे। वे दतन मरत हो गए थे कि एमे मनी सानिर कायों ने बचत थे जिनमें सबट की सम्भावना थी। उनमें मकोई भी मराठा ने तबो को तयार नहीं था और जब उन्हें जिही जोधपुर नरेण के विरुद्ध अभियान का आदेश दिया गया तब उन्होंने बहाने बना दिए। सम्राट और मरतवा के उगाहरण में सब आर अनतिकता पन रही थी।

उसने परिणाम घातक हुए। साम्राज्य बिखरन लगा। कितन ही प्रांत लगभग स्वतंत्र हो गए। बिहार, बंगाल और उड़ीसा में मुर्शिदाबुली खा और अवध में राजादत खा दिल्ली के नाम-मात्र के राजभक्त रह गए। बाबुल और लाहौर के सूबेदारों को उनका अपने गाघनों पर छोड़ दिया गया। मराठा न गुजरात मालवा और बुन्देलखण्ड के एक भाग पर अधिपार कर लिया। दाआव में रहेने अपनी खुदमुन्तार रियासतें स्थापित करने में जग गए।

राजपूताने में तीन प्रमुख राजवंश थे। इनमें मेवाड़ के सीतादिया मुगल साम्राज्य में बगल गिर सेते थे—बसे सम्राट का सरक्षण उन्हें माय था। यशवंत सिंह की मृत्यु के समय से जोधपुर के राठौर औरगजेब के विरोधी रहे थे पर उसकी मृत्यु के बाद उन्होंने गण्य कर लीं थे। यद्यपि उन्होंने उच्च पद भी ग्रहण किए तथापि उनकी राजभक्ति ब्रह्मिण्य रही। जयपुर के बछना भी जा अधिन स्थायी रूप में राजभक्त रह थे सामान्य परिण पतन के मिहार हो गए। राजा जय सिंह को जिनने पूनामन के नेतृत्व में हुए आठ-बिना का दबाया था मराठा के बापिक हमला का सामना करने के लिए मायवा

का सूबेदार नियुक्त किया गया। लेकिन गान्ही हिंसा का उठा करन के स्थान पर उसने मराठा स साठ-गाठ कर का जा परिणामस्वरूप वह सूबा हाथ से निकल गया।

यहां तक कि दिल्ली के आमपाम के आका का भी खतरा पैदा हुआ गया। मिर्च, जाट, मूले और मराठा चारा आर मडरा रह थे। सन 1737 में बाना राव रानधानी में धुम आया और उमन साम्राज्य की निरोहावन्धा का पदाफाग कर दिया। शाह रानधानी के अन्दर और बाहर अव्यवस्था फैल गई।

## 2 नादिर शाह का आक्रमण

लेकिन तभी एक बड़ा दुभाग साम्राज्य पर पड़ा। दिल्ली पर बाजी राव के आक्रमण के एक बप बाद ही इरान का राजा नादिर शाह उत्तरी अफगानिस्तान में धुस आया। तयारी न जान और आपराहा के कारण काबुल में धुसना उसके लिए आसान हा गया। उसने खैबर दर्रा पार किया और तजी से लाहौर की आर बढ़ा। माग म उसे बहुत छोड़े विरोध का सामना करना पड़ा। जब मकूट दिल्ली पर आ गया तब मुगल में हलचल फैल हुई और मुहम्मद शाह अपनी मना उतर करनाल में आ जमा। लेकिन सेनापतिया की अयाग्यता और आपसी सहयाग की कमी के कारण उन्हें करारी हार खानी पनी। हाग से अनतिकता बना। मन्ट भय और चिन्ताआ न प्रतिन हाकर सेनापति आत्मरक्षा के प्रयास म एक-दूसरे के विरुद्ध जाल रचन लगे। राजशाह बट गया। अवध का सूबेदार सजादत खा जिस मुठ में बड़ी जना लिया गया था एक इरानी था। वह तूरानिया म विशेषकर निजामुल्मुल्क से जिसे सम्राट का प्रधान परामशदाता नियुक्त किया गया था बहुत जलता था। बन्ने की भावना से आया हाकर उमन नादिर शाह की धन सिप्या का नाम उठाया और उन दिल्ली जान के लिए उक्ताया। उमन कहा कि वहा न्ये बन्पनातीत परिमाण म धन मिनेगा।

नादिर की तप्या उदीप्त हा गई। उमन सम्राट का बन्नी बना लिया आर दिल्ली की ओर कूच किया। उमन जामा मस्जिद के मच म स्वय को भारत का सम्राट घोषित करवाया। उमने नाम के सिक्के डार गए। दिल्ली इस आग्निपत्र ने आतन्तित हा उठा। जब नादिर आर उनके अफमरा न प्रमुख और धना नागरिया का नियमित रूप से लूटना और लोगो को अपमानित करके, उनका सजा कर, उनसे पैस चूसना आरम्भ किया तब चारा आर राप फैल गया। एक छाटी-सी घटना न तूफान मचा दिया और नादिर न बन्नेआम के आग्य जारा कर दिए। गलियो में खून की नदिया बहन लना। बाजार-के-बाजार आग की भेंट हो गए। नादिर ने लूट में भारी सम्पति इकट्ठी की। मागे और चादी की सिल्लिया हीरे, मयूरानन आर बादशाहा द्वारा पीलिया से मचित कीमती खजान उसने अधिकार में चने गए। वह जननिगत हाया, घोस उट आर सगभग पद्रह कराड ध्ये नगद लूट ले गया।

विजैता की भारत म ठहरन की काइ याजना नहा था। उसने मुहम्मद शाह का उसका ताज मौपा और अपनी विशाल सम्पति के साथ वापस चल पडा। नादिर शाह के आक्रमण न साम्राज्य का वह धक्का पहुंचाया जिसे वह कभी नहीं उबर सका। बाबुल का प्रान्त हाथ से निकल गया। भारत की सीमा मिघ तक पीछे हट आइ। खैबर का दर्रा और पेशावर शत्रुआ के हाया में चले गए।

पञ्जाब अराजकता आर आक्रमण का शिकार बन गया। जब नादिर न पञ्जाब का

राजा जयसिंह का मृत्यु 1745 में हुई थी। वह सन् 1745 में मर गया। तब उसके बेटे में सैनिकों के लिए युद्ध आरम्भ हुआ। उनसे एक नवाब की गद्दी पर शाहजहाँ साहब उतराधिकार आरम्भ शाह अब्दाली का निमन्त्रित किया। तब से 1773 में अरबी मरुत तक अन्तर्गत राजा का रोदता और लूटना रहा।

अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का भारत हाबेसियन परिस्थितियों का एक जीता-जागता नमूना था। वह उस जगत् का गमान था जिसमें हिंसक प्रभुओं की प्रकृतिबल मनुष्य चारा आर धूमन थे। आत्मनिष्ठ स्वयं और शक्ति की असाधारण रूप में सकीण वासना उनका प्रेरणा थी। बाइ नैतिक विचार और कोई दूरदर्ष्टिपरक लक्ष्य उन्हें बाध नहीं पाता था। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जानसारी और घोषाघड़ी, अपन नालालिक उद्योगों की सिद्धि के लिए बन् प्रयोग और छल-दण्ड का आश्रय लेने में वे मकिएवना का भी लज्जित करते थे। प्रतिद्वन्द्वी व्यक्तियों और दलों के मूषतापूर्ण पाठन मन्त्रों में भारत श्रावण और बर्बाद हुआ गया। वह एक भी ऐसे नेता तयार न कर सका जो पर्याप्त प्रभु-मन्त्र हो और व्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था स्थापित करता।

इस राजनीतिक और नैतिक पतन का वास्तविक अठारवीं शताब्दी में ऐसे बलवान् नित्य और दृढ़प्रतिता लोगों का क्या नशा था, जो शक्ति और साधनों से भरपूर थे। किन्तु ही ऐसे ओजस्वी जागीर और दुस्माहमी भाग थे, जो अपनी बिन्दगी को दाव पर लगा रना धिलवाह समझते थे। उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। बस अभाव एक उपयुक्त समय का था जो उनकी बुराईयों को उपयोगी दिशाओं में मोड़ सकता और उनके जीवन को मायब कर सकता। वे तूफानी ममुद्र पर श्चर उधर भटकनेवाली बिया तपू का नाव के समान थे।

उनकी अनियन्त्रित महत्वानाशाही से साम्राज्य में अराजकता फैल गई। रूहेलखण्ड में राना ने शाही अधिकारियों का निकाल बाहर किया, उनकी जागीरें छीन ली और स्वतन्त्र रियासतें बन् कर ली। राना के आगे अवध विहार बगाल और उड़ीसा गहने हुए। तमिल पूरा तरह स्वतन्त्र हो चुके थे। यमुना के दक्षिण में पश्चिम की ओर राजपूताना का और दक्षिण का ओर चम्पारन की तरफ जाटों का राज्य था। उत्तरे पूर राजपूताना दोआब और भारत के पूर्वी प्रान्तों में मराठे अपना मनचाह कर रहे थे। गुजरात और मानवा उनका अधिकार में थे। राजपूत रियासतें उनकी दया पर आश्रित थी और तब तक उन्हें कर देना था।

मुगल-मन्त्र का वास्तविक शासन दिल्ली और आगरा के आसपास तक सीमित था। वह भारत के अधिकांश भाग पर बह अरु भा अरबी विधिसम्मत मत्ता का शासन करता था और धिन्तव देना तथा नियुक्तियों का पुष्ट करता था।

प्रशासन की ढाल-ढाल ने साम्राज्य की आन्तरिक शक्ति को मुघा गता। आगरा के शासन में बिना शाहजहाँ से काम किया गया। उसके सम्राट की निजी जाय के लिए सुरक्षित गार्डों मूमि का शेर बन्दूक घट गया। खजाना धानी हो गया और राजस्व घट जाने से निर्यात सेनाएँ ग्यथा और उन्हें मुसलमान कर सकता असम्भव हो गया। गद्द-मुद्रों में उच्च और निम्न बग के सामन्त बरासुरा में मारे गए थे। इस्लाम आगरिक और सन्तियों के लिए योग्य व्यक्ति मिलने बटिन हुआ। एक समय सेना के बिना सम्राट पूरा गद्द निम्नहाथ हुआ गया। इस प्रकार, सन् 1739 में बरतान में मुगल शाह की पराजय का बन् के निम्नो एक मगदिया साम्राज्य का क्षेत्र न रहा।

### 3 अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण

जब दिल्ली की मस्जिदों में जुम्मे की नमाज के बाद नादिर शाह का भारत का सम्राट घोषित किया गया था तब लगता कि इतिहास का दुहराया गया है। दो बार पहले अर्थात् बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में और फिर सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में समान परिस्थितियों में एक विदेशी शक्ति ने भारत का पतन जापित करने में सफल हुआ। भारत के ये विजेता न्यून शक्तियाँ थे और स्वयं-सागों से भारत आए थे।

वेदिक मानहवीं शताब्दी में समुद्र-मार्ग से एक भिन्न प्रकार की शक्ति समुद्री मार्गों को पार करती हुई आई और उसने भारत के तटीय प्रदेशों पर अपने पैर जमा कर अपने अस्तित्व का पता दिया। उस समय इन बातों का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता था कि मुगल-शासन के विनाश से उत्पन्न अन्य का कौन भरेगा—कई स्वदेशी तत्व अथवा उत्तर-पश्चिम में आई कोई स्थल शक्ति अथवा अप्रत्याशित प्रदेशों से आनेवाली कोई ताकत एक दिव्यतल नए ढंग से ही उभरेगी। लेकिन शीघ्र ही भविष्य ने एक निश्चित रूप सेना आरम्भ कर दिया और अठारहवीं सदी के अन्त तक भविष्य के विषय में कोई सन्देह नहीं रहा।

सन् 1739 में करनाल में नादिर शाह का विजय और सन् 1803 में दिल्ली पर अंग्रेजों के अधिपत्य के बीच की अवधि में भारत का इतिहास के सबसे अधिक अपमानजनक और दुःखदायक क्षणों में होकर गुजरना पड़ा। दिल्ली का ऐतिहासिक गौरव और उसकी शाही ताकत बर्बाद हो चुकी थी। शक्ति का नाम जादूमरुता नाम अब भी लोग बताना और महामारी की तरह दवा का उजाड़न बान चतुर्मुखी सपनों का प्रभावित करने में समर्थ था। दिल्ली बड़े क्षेत्र बना रहा जहाँ सभी मस्जिदों का आकर मित्रता थी। हाँ शाही ताकत का पतननेवाला दशक एक अविनाशनीय भाग रहा। उसने न्यून मध्य हलचल में बहुत ही हानि और निरन्तर गौणत्व का भाग लिया।

दिल्ली के निवासियों पर बैठनेवाली एक कठपुतलिया का कहना अब मशरूफ में कहना जा सकता है। नादिर शाह आया और चला गया पर साम्राज्य के सम्राटों ने उसके कोई पाठ नहीं सीखा। शूनीयों की शानति का प्रसिद्धिवादी में कई कर्मी नहीं आए। वे सतत जड़ते रहे। सन् 1739 में कर्मीयों का और उम्मा बनाना निजामुल्मुल्क अहमद बख्शी (प्रधान मन्त्री) और मीर क़ासी (विन मन्त्री) थे। अहमद के सूबेदार सफ़र अहमद नेवृत्त में शान्ति जनता विराय करत थे शी हिन्दुस्तानी दारुनका साथ देता था। कादी के शासनिक व शैली भी एकता नहीं थी। मुहम्मद शाह के विरायनाम शूनीयों से अपना पीछा छडाना चाहते थे। सन् 1740 में दरबार की हालत से और बख्शी के व्यवहार से उत्तुंग कर निजामुल्मुल्क दिल्ली छोड़ कर दक्कन चला गया था। कमर्सीय बख्शी बना रहा। लेकिन शक्ति नष्ट-रूप और उसके अनुशानिया के हाथ में चला गई।

सन् 1748 में अहमद शाह अब्दाली का पहला हमला हुआ। नादिर शाह की हत्या के बाद वह हुजूर काशी और काबुल के प्रांतों का स्वामी बन गया था। काशी और मुल्तान के सूबेदार उपस्थित थे के दाना बेटी के परम्परानुसार और जनक छोटे भाई अहमद शाह के राजदरबार सागराजिमान अहमद शाह के सामने भारत-अभिमान का बहाना प्रस्तुत कर दिया। काशी पर अक्रियार करने वह सरहिन्द की तरफ बढ़ा और

उद्यमे नगर व निषट्कर्ता एव गांव में एकत्र शाहबाद अहमद का शाही मनाया का घेर लिया। युद्ध हुआ। यद्यपि बजीर बमरुही मारा गया तथापि मुगल-मना न अछाली का टुकटिया के पर उछाड़ दिए और उम बागम अपन दश लौटन का विवग होना पया।

इस अप्रमाशित विजय का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि 26 अप्रैल, 1748 का मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद अहमद शाह शान्ति-भूवक गद्दी पर बट गया। नया सम्राट एक अच्छी प्रवृत्ति का युद्ध था जिमने युद्ध अथवा प्रशासन की कोई जिम्मा नहीं ली था। शशव से विकास वष का अवस्था तब उमका पानन-भोगण हरम की ओरतो के बीच सागरवाही और गरीबी म हुआ था। जनसर अपन पिता की डाट उम खाती पडती थी। 'स्वभावतः हा राज्य के काम विश्वासपात्रा, राजा क मित्रा 'हिजडा और मित्रियों के एक गुट' क हाया में पड गए। इस गुट की प्रधान था राजमाता ऊमर वाई जा मुहम्मद शाह स विवाह करने स पूव एक मामूली नतकी थी। उसन हर नियुक्ति के बन्त उपहार के रूप में मागी खम बमूल बरक बेजार आत्मिया का ऊंचे पद द दिए। प्रजासन की चिन्ता किसी का नहीं थी। सूबेदार और सरदार शाही राजस्व का दुरूपयाग करते थे। उनका उदाहरण अकिशाली जमींदार अपनाते थे और अपन कमजोर पडोमियों की जमीन हथिया लेत थे।

गानिया व नता आर अवध व सूबेदार सफ्तरजग व बजार बन जान पर इस दल का प्रभाव बढ गया। नकिन इसे भारा कठिनाइया का सामना करना पडा। दूरानी सरदार उगक विरुद्ध थे। राजा व विश्वासपात्र नकी नातिया का काटत थे और बमजोर अहमद शाह का उमक विरुद्ध कर दत थे। बजीर भी दिल्ली के कामा में एकान्ति रूप से रचि नहीं ले पाता था, कयाकि उसे अपने प्रान्त पर भी काफी ध्यान दना पन्ता था। रहने उसक घोर शत्रु थ आर प्रान्त के आन्तरिक शासन में डील-डाल चल रही थी।

एमा परिस्थितियों में अहमद शाह अछाली और उमक जपगान मित्रा ने उत्तर स और मराठा न दक्षिण की आर स सकट उपस्थित कर दिया। आगे जा दुर्भाग्यपूर्ण घटनाए घटी आर जिनका परिणाम अन्ततः भारताय स्वतन्त्रता का विनाश हुआ उनमें रहीं दोना नता के नेताआ न मुख्य हिस्सा लिया। मुगल-सम्राट और उसके सरदार शतरंज व माहूर भर रहे और दूसरे प्रमुख नेताआ ने भी बहत तुच्छ और हीन भूमिका खदा की।

सन् 1748 की पराजय के बाद अछाली न सन 1749 की हमन्त ऋतु में पजाब पर आक्रमण किया। इसका सूबेदार मुहनुल्मुल्क भूत बजीर बमरुहीन का बेटा था। लेकिन निस दन व हाथ म दिल्ली का शक्ति थी उसका वह विश्वासपात्र नहीं था। पलत उसे बाइ नहायला नहीं दी गई। उसे अपना प्रवेश छोडना पडा और अछाली व सेनापति को हड्डि के रूप में भागी छन नता पया। ऐस गस्त शिकार न अछाली का भूख देख कर दी। सन 1751 में उगन भारत पर तीसरी बार हमना किया। बन्दाय मरवार स क्रिया प्रशा की सहायता न पावर भा मुर्न न मयासम्भव उसका विराघ किया पर उस आत्मसमर्पण करना पडा। पजाब और मुल्तान के सूबे अफगान पागको के हाथ में खन गए और सिन्धी का साधा चतरा हो गया।

तब अफगाण पजाब का रौं रू थ तब बजीर सफ्तरजग अपा 'दिल्ला भाग क गथा रहना का बुचनन में व्यस्त था। लेकिन रहेला-सरदार अहमद का बगव शीक्य भी था और पुर्तगाली भा। उनन चित्तमप्रिय ईरानी सरदार का पराजित और अपमानित किया। गानिया सफ्तरजग का रहना व मराठ म अपना रणा न नित मराठा से थप

वस्थाया सन्धि करनी पड़ी और जाटा की सहायता के लिए मौदा करना पड़ा। मल्हार राव हल्किर और जयापा सिन्धिया का उनकी सनाआ के लिए प्रतिदिन 25 000 रुपये और सूरजमल जाट का 15 000 रुपये देने के लिए उसे बचनबद्ध होना पड़ा। उन्होंने दोआब का माफ कर लिया और म्हुला का हिमालय की तलहटी तक पीछे खिंच दिया। फिर, उन्होंने उनके मान्य एक शान्ति-सन्धि कर ली, जिसके अनुसार इस अभियान का खर्चा सफ़रना के बख़्त उनके मल्ले मटा गया।

मराठा-मरदावा पहले ही मालवा ल चुके थे गुजरात का गैर चुक थे और बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा पर हमला कर उन्हें लूट चुक थे। वे राजपूताना में प्रवेश कर चुके थे और अब (1752) उन्होंने दोआब में भी अपनी चौकिया स्थापित कर ली थी, अर्थात् साम्राज्य के अन्तरग में उन्होंने अपन पैर जमा लिए थे। मार्च 1752 की अस्थायी सन्धि के अनुसार उन्होंने साम्राज्य के मरक्षका की भूमिका ग्रहण कर ली थी और दिल्ली की राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर पा लिया था। इस प्रकार, सर्वोच्चता के लिए बंगाल और मराठे के दा प्रतिद्वन्द्वी आमन-सामन आ जम।

शौघ ही उन्हें भीषे टकराना पड़ा। लेकिन ऐसा हान न पहले दिल्ली आर शाही दरवार का जक्य विपत्तिया आर जपमाना का मामना करना पड़ा। मरदरजग के तातक और घमण्ड न मरदारा का जपना शत्रु बना लिया था और सम्राट का रुष्ट कर दिया था। राजमाता न उस हटाने के लिए एक पद्यन्त्र रचना आरम्भ किया। उसके कारिन्दों का जिने स निकाल दिया गया। उनके त्यागपत्र को, जो उमने यह सोच कर दिया था कि बलशाह डर कर दब, नाणगा, स्वीकार कर लिया गया। अब आप से बाहर हाकर बजीर न बपन स्वामा के विरुद्ध युद्ध घापणा कर दी। उनके साथ जाटा न दिल्ली का लूट लिया।

सा बीच तूरानी मरदारा न ईरानी आग्रिपत्य के विरुद्ध अपना पूरा आर लगा दिया। बमरहान का एक बेटा वृत्तिमाद्रीना बजीर बन गया और निजामुल्मुल्क जास्तफ गह प्रथम का पाना आदुल्मुल्क मीर बछ्शी। उन्होंने नजीब खा (नजीबुद्दौला) के तैतत्व में रुतना का और अन्ताजी मक़श्वर की अधीनता में मराठा का सहायता के लिए बुना लिया। किले पर अधिकार करने का सफ़रजग का प्रयास विफल रहा लेकिन धन की कमी मना का बतन चुवान में असमर्थता और बजीर तथा मीर बछ्शी के मतभेदों के कारण सम्राट का सन्धि करनी पड़ी। सफ़रजग अपन प्रान्त जवब का वापन लौट गया (1753)।

गृह-युद्ध न मकार का भारी आर्थिक बटिनाट्या में डाल दिया था। मना बकाया धेस्तन के लिए बेचन हा उठी। दिल्ली का गलिया में प्रतिदिन झगग आर उपद्रवा के दृश्य देखन में जान नगे। उपद्रवा सनाआ एव मराठा तथा स्पेला लुटेरो से जीवन और सम्पत्ति की रक्षा का कोई उपाय नहीं था। सफ़रजग के चन जाने के बाद बजीर और मीर बछ्शा के मतभेद बग़ाण। चूकि सम्राट बज्जार का आर युवा था, इसलिए माग बछ्शी ने मराठा की मदद लेकर सम्राट को आतन का निरचय किया। विद्रोही मीर बछ्शी और उसके माधिया न उसे विवग किया कि वह इस्तिमाद का आग कर इमाद का बजीर बना है। बजीर बन कर सम्राट न पहना काम यग किया कि बेचारे निम्महाय अहमद शाह का सहायनच्युत कर दिया। उमन वाबन-दरपॉय गरबुमार अजीजुद्दीन का आनमगीर द्वैतीय के नाम स गद्दी पर बिठाया। इसके पाष बप बाद (मन 1759) बग़ाण छूटने का प्रयत्न करने पर उमन उमका हया कर गी।

इस अत्याच्य पर महत्वाकांक्षी और अद्विवेकी बख्शर के शासन व ये पांच वर्ष अत्यधिक अच्यवस्था दिवालियापन और यातना के वर्ष थे। घाण्टाट, मन्त्री और जनता सभा को लज्जा और अपमान भुगतना पड़ा।

इमाद और गफ्दरजग, दोना ने ही मराठा को सहायता के लिए बुलाया था। पन्नवा ने रघुनाथ राव को उत्तर की ओर भेजा पर जब तक वह वहाँ पहुँच सका, दाना अपना झगडा समाप्त कर चुके थे। लूट का माल 7 पातर मराठे जाटो और राजपूता व विगड्ड हा गए, क्याकि सन् 1752 का सहायता-संधि व अधीन लिए गए आगरा और अजमेर व प्रान्तों पर अधिकार करने से उन्होंने उन्हें रोक दिया था। इस उद्देश्य की पूर्ति व लिए रघुनाथ राव और मह्लार राव होल्कर ने दाआर का रौंदा तथा लूटा और जयाणा सिंधिया तथा उसने भाई दत्तात्री ने राज-पूताने का छान मारा। तत्र लूट का माल लेकर ये सरदार पूना नाट गए और दो वर्षों का लम्बा अभियान (1753-56) बिना किसी महत्वपूर्ण उपलब्धि के समाप्त हा गया। रघुनाथ राव के आचरण से उत्तर व सभी लोगा में भय फ्राघ और घुसा के भाव भर गए जिसका घातक परिणाम निकला।

सन् 1752 में पञ्जाब अफगाना की अधीनता में चला गया था। लेकिन अहमद शाह ने उमका शासन मुईनुल्मुल्क के हाया में ही सौंप दिया था। सन 1753 में उमका मृत्यु के बाद हालत बड़ी तेजी से खराब होती गई और अराजकता पल गई। इस विषम स्थिति में मुइन की विधवा मुगलानी बेगम ने व्यवस्था स्थापित करने के लिए अहमद शाह और इमादुल्मुल्क से प्रायना की। अहमद शाह के कोई कारवाई करने से पहले ही इमाद लाहौर पहुँच गया और उसने अपना सूबेदार तथा सहायक सूबेदार नियुक्त कर दिया। यह एक अतिशय घा, जिसे अफगान बादशाह सहन नहीं कर सकता था। उसने आगे-आगे तो अपने एक सेनापति को भेजा जिनका लाहौर पर अधिकार कर लिया और पाँडे-पीछे एक बड़ी सेना लेकर स्वयं भी सन् 1757 में आ घमका।

शुब ता उत्तर के राजा पर विपत्ति का पहला टट पड़ा। पञ्जाब हिंसा और अच्यवस्था का गड बन गया, जिसमें सिन्ध, मुगला और मराठा ने एक-दूसरे से प्रतियोगिता का। आक्रमणकारी लाहौर और सरहिन्द पर अधिकार करके दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली उसने मुखाबले के लिए एकदम तयार नहीं था। खैला का नेता नवाबुद्दीन अपने स्वामी का साथ छोड़ कर अफगानों में मिल गया। इमाद ने जाटा, मराठों और राजपूतों का सहायता के लिए एकटठा करके का अन्तिम प्रयत्न किया पर विफल रहा। बिना किसी मुराबले के ही कायर बख्शर ने राजघाटी मनापर का मौंप दी। लूटपाट और धूरता का राज्य चारों ओर फल गया और दिल्ली घाघनी हा गई। अमर-गरीब सरदार-भाषारणजन स्त्री पुर्य, सभी का बिना किसी भेदभाव के यातना और अपमान सहना पड़ा।

किन्तु दिल्ली की यातनाएं उनकी तुनना में एकदम नगम्य हैं जिन्हें मपुरा पापुन और बुन्दावन के पवित्र तीर्थों को सहना पड़ा। अफगान सेना दिल्ली को रौंदने के बाद जनत हुए गावों की बतारों सहती हुई लाराओं और बर्बानी को पीछे छोडता हुई आग बड़ी। माग में जाटा की घुचलते हुए ये लोग मपुरा बुन्दावन

और गोकुल की ओर बढ़े। इन पवित्र नगरों में जिस नरमहा और विनाश का श्रेष्ठा, उसका दण्ड नहीं किया जा सकता। जाम-इ-काण्ड के कारण 'सात दिनों तक यमुना का पानी खून-जैसा लाल बन कर बहता रहा'—ऐसा मथुरा नगर का उस मुसलमान जौहरी का कहना था जिसका मक-कुछ लूट लिया गया था और जाबु-उ-दिनास मूछा मर रहा था। मन्दिरों को अपवित्र किया गया, स्त्रियों का अपमान किया गया और बच्चा को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया गया। कोई भी एसी नृशंखता नहीं थी जो बाकी रह गई।

नेकिन इस दुःखद घटना का पढ़ने उच्चात्रनक पद था 'न स्यात्ता व तयापयित मरसका और अभिभावका का उपेक्षा भाव। जिन मराठा ने हिन्दवा स्वराज्य का धण्डा उखाड़ दिया था और डोल लकी थी कि वह कन्याकुमारी से अटक तक सहगाएगा, जिन्होंने साम्राज्य को विदेशी आक्रमण में बचाने का वन लिया था और अभी-अभी आगरा प्रान्त की सूबेदारों ग्रहण की थी, जो धर्म के नाम पर पवित्र हिन्दू तीर्थों पर अपने अधिकार का दावा करते थे और इसलिए जिनका नैतिक वक्तव्य था कि वे ब्रह्म-मण्डन की रक्षा करते, उन्होंने विपत्ति के समय बड़ी निमज्जतापूर्वक हिन्दुत्व का घोषा दिया। जाटों ने यादा विराध किया, क्योंकि अफगान उनके अपने प्रदेश का रौंद रहे थे। नेकिन आरम्भिक मुवाबले में हों हार कर वे अपने घोवा की मरहम-पण्टा करने के लिए अलग हट गए और लोगो का उहाने अपन शूर भाग्य पर छाड दिया। राजपूत अपने तुच्छ आपसी सगठा में दूबे से लीर उन्हें एकदम पता नहीं था कि श्रेष्ठ भारत में क्या हा रहा है। दिन्ता का सम्राट, भारत का बानूना शासक और जनता का सरलक धन में लीट रहा था और एक विदेशी विजेता के हाथों में बन्दी था।

एत प्रकार दिल्ली, मथुरा, आगरा और उत्तर भारत के हजारों नगरों और गावा से पीडा की जा कराह उठी, वह श्रेष्ठ भारत में सुना नहीं जा सका। नेकिन जो काम आत्मी नहीं कर सता वह प्रवृत्ति ने किया। अफगान सना की भयंकर बागबाइदा को हँडा का बीनारी न रागा। सिपाही घर जान के लिए ध्याकुन हा उठ। अफगानों को वापसी के लिए मजबूर होना पडा। पर अनुमानन नीन से बागह करीब रुपये के बीष का तूट का माल और तमूर के वन का अवशनीय अपमान करने के बाद ही वह लीटा। सम्राट का विवश किया गया कि वह मुहम्मद शाह की सोनह वर्षीय लडकी का विवाह "इस शूर्यार और राजा की सपदाने अफगान से कर दे, जिसके दोना वान बटे हुए थे और जिसकी नाक एक कोढ़-जैसे नामूर से ढक रही थी।" यह एक बरा ही बडवा मूल्य था, नेकिन राज नीति दया नहीं जानती और शासका की मूखता, अनगति और उनके अपराधा का दण्ड मासूम प्रजा को भुनाना ही पण्डा २।

अहमद शाह नेबीबूदीला का दिन्ती में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके बघान लौट गया। उसे मीर बदनो का पद दिया गया और 'गामन' के ममी अधिकार उसे

१ यदुनाथ सरदार, 'कालधर ३ मुगल एम्पायर', खण्ड २, पृष्ठ 128 (सरदार ने 'बरा-असा' शब्द इस्तेमाल किया है। लेकिन यह कृत्रिम तथ्य है, क्योंकि सन 1757 में अफगानों लगेनग 35 घन का था।)



सौंप लिए गए। बूटे बजार इमाद का मत्ता स रहित कर दिया गया लज्जिन बकीले-मुतलक का उत्तरदायित्वहीन किन्तु सम्मानित पद उस मिला।

अहमद शाह की बापसा के नक्वाने बाद पुराना खेत फिर गुरु हो गया। इमाद ने नवाब का हटान के लिए पद्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। अन्जाला की आधी के गुर जान के बाट मराठ भी उत्तर में प्रकट हो गए। उन्होंने बड़ी तेजी से अपनी जागीरा, जिला आर चाकिया का ने लिया और उन्हें हडपनेवाला का निवाल बाहर किया। उन्होंने दोआब पर फिर से अपना नियन्त्रण म्यापित किया और अपने कर उगाहना आरम्भ कर लिया।

समाज और इमाद ने नजीब का निकालने के लिए मराठा से माठ-गाठ का। नजीब ने उस लड़ना चाहा लेकिन प्रतिद्विधा से हार कर इमाद के घर का निधा पर अपना गुस्सा उतार। तब विराट का बेकार दर कर उसने बिना शत घुटन टक लिए। मराठा के लिए जिले जाय साम्राज्य का स्वामी बनने का माग खुल गया।

दिल्ली में मराठा मनाए गधुनाय राव जाय मल्हार राव हाल्कर के सनापतित्व में पजाब में घुम आइ और अगस्त 1758 में उन्होंने लाहौर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने अहमद शाह के प्रतिनिधिया का निकाल बाहर किया जाय अदीना बेग को अपना मूरदार नियुक्त किया।

दिल्ली में निकाल जान के बाद नजाब अवसर की पती ता में था। उसने अब्दाला से पत्र-व्यवहार किया और अपने खास हुए प्रदेशों को फिर से प्राप्त करने के लिए उस भारत जान का पसनाया। दत्तात्रय मिथिया के सनापतित्व में नजीब को दण्ड देने के लिए मराठा आगे बढ़ पर उसने मुजफ्फरनगर के पास एक मोर्चा बंद और किलाबंद शीरी के पीछे में उनका प्रगति रोक दी। घिरा हुआ रहेला मरदार यहां महाना मगठा का राव रहा—तब तक, जब तक अवघ के नवाब-नारा भेजा गया गामाह हिन्दुआ का एक रिसाला उसका महायता के लिए नहा पनुच गया। दूसरा दिशा में किए गए उसके प्रयास का भी फल निकला। अन्जाली बाबुन में घना और उनमें सिधु घाटा पार की। मराठा टुकडिया का गदेंना हुआ, तेजी से पजाब पार करके बट दिल्ली का जाय बड़ा। दत्तात्रय ने उस धानेश्वर पर रोकने का विषय प्रयास किया। इनमें असफल रह कर यमुना का पार करने के रास्तेका रथा के लिए वह पीछे हटा। पर उसकी राना को फिर हार घाना पनी। दत्तात्रय स्वयं माग गया। मल्हार राव ने अन्जाली को तंग करण का वाशिश की लेकिन उस हानि उठानी पनी आर वह राजपूताने की जाय पीछे हट गया।

उत्तर में मिला दन पराजया के समाचारा ने पूना में वैचना पना दी और गिराने का सम्मान के लिए पणवा-परिधान के एक मद्रम्य के सनापतित्व में एक शक्तिशाली नवा भजन का नियुक्त किया गया। बालाजी बायी राव के भतीज सगशिव राव भाऊ का सनापतित्व के लिए चुना गया। पेशवा का पुत्र विश्वास राव राना का नाम-मान का प्रघात बनाया गया। 22 000 मगठा भनिवा और क्रागाधी बनरन दूना में तानिघात का निधा पाए हुए आहिम या गदी के नरत्व में 8,000 अनुशासित सिपाहिया का उत्तर उत्तम उत्तर का जाय कर किया। उत्तर की

मराठा सनाए, डा होल्कर, मिर्घया और जय दलपतियों के नेतृत्व में दिल्ली के चारा घोर पड़ाव डाले पड़ी थी, भाऊ की सेनाओं के साथ मिल गई।

मराठा को धामा थी कि उनका पुराना साथी, अवध का नवाब, उनका साथ दया आर राबपूत तथा जाट भी उन्हें सशक्ति महायत्ना देंगे। लेकिन रहस्य और नवाब के बीच चर्चा आ रही लम्बी और कटु शत्रुता के बावजूद नवाब ने अब्दाली के साथ दिया, हालांकि उसने साथ दिया दवे-दवे ही। उसे इस तथ्य ने प्रेरित किया कि नजीब आर अब्दाली अपनी सेनाओं के साथ दोआब में उपस्थित थे और उसके प्रदेशों का बड़ी सरलता से गैर सक्ते थे। मराठे उसकी सीमाओं से बहुत दूर ममुना के उस पार थे, और वे अफगानों तथा म्हेला की सम्मिलित सेनाओं को पार करके ही उस तक पहुंच सकते थे। मराठा की सरलता का उसके लिए अर्थ था, स्थायी आधिपत्य। लेकिन यह सबविदित था कि अब्दाली की भारत में टिकने की कोई इच्छा नहीं थी। मराठों ने उसके पिता को घोषा दिया था और उनके बचन पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।

राबपूत राजा भी अभी हाल में ही मराठा-द्वारा की गई उनके प्रदेशों की नृपाट को भूल नहीं सके थे और वे किसी भी पक्ष का साथ देने को तैयार नहीं थे। जन्तु जो भी जीत जाए उसी के पक्ष में खड़े हो जान की उन्होंने मोची थी। जाट गानक मूरजमन भी मराठों के प्रति मन्दिग्ध था, क्योंकि उसे उनका वादा पर बहुत धोड़ा विश्वास था। उसके रथ को प्रदेश के मराठा सूबेदार गोविन्द बल्लान वुदेता के दुष्ट हरादा ने भी पक्का किया था, जो अलीगढ़ के नए जाट-किले का हम्पना चाहता था।

स्पष्ट ही उत्तर में मराठों का एक भी मित्र अवका साथी नहीं था और उनके अपने सेनापतियों ने इस बात पर मतभेद था कि अब्दाली के विरुद्ध किन युद्ध नीतियों का प्रयोग किया जाए। उनकी सेनाओं की सरलता सिर्फ दिल्ली में प्रयोग कर लन में थी, क्योंकि यहमद गाह दोआब में था और दिल्ली में एक छोटी-सा टुकड़ी थी जो मक्लिगानी मराठा को नहीं रोक सकती थी।

लेकिन दिल्ली एक पन्दा सिद्ध हुआ। पेशवा के पान फालतू धन रहा था। जामीरा और रिपामता से उन गडबड झनना में कर वसूल करना कठिन था और लूट-मार से लाभ भी बहुत घटा हुआ था। आत्मिया के साथ-साथ घोटों के लिए भी रसद का बमी थी। रसद थोड़ी पड़ रही थी और शत्रु चारा आर महरा रहे थे। शक्ति की गम्भीरता ने भाऊ को दिल्ली में वापस जाने पर विचार कर दिया। अब्दाली का भी लगा भाऊ की तुलना में, कुछ ही अच्छी थी, क्योंकि वह भी धन को बना का अनुभव कर रहा था और घर जाटन के लिए उल्लूक था।  
 2. लेकिन नजीब द्वारा धन और सामान का दिया जाना तथा भाऊ का जिद्दी रथ उसके लिए इन बात के मक्लिगानी कारण बन गए कि वह टहरे और चण्डे को चरम सीमा तक ले जाए।

दाना विगर्ध पानीपन के आनन-भामने आए। युद्ध में मराठा सेनापति ने

1. यदुनाथ सरकार, 'फान द्राए द मुगल एम्पायर', पृष्ठ 2 (1934 का संस्करण), पृष्ठ 256

दा घातक भूल की। उसने अपने सच्चार-साधना को बट जाने दिया और मराठा-युद्ध के परम्परागत तराको को छोड़ दिया। अपनी प्रशिक्षित टुकड़ी की बद्धता पर निर्भर रहने हुए उसने मनिवा की विशाल जमात को और अपन शिविर के साथियों को चौड़ी और गहरी खात्या को एक पकित के पीछे जमा दिया। अफगान मना दक्षिण की ओर जानवाली एक मटर पर जमा थी। अन्तली न अपने सन्निव चारा जार फना दिए और रसद आदि जाने व मराठा-सच्चार-साधनों को बट लिया। 'चारों ओर का प्रदेश मराठा का शत्रु था और अतीत में उनके द्वारा कई गढ़ भीषण बचाविया का बदला लेने के लिए उद्वल रहा था।" इसलिए भाऊ के शिविर को कोई महायता नहा मिनी और घोर भुखमरी उसके सामने मुट्ट बाण खड़ी हो गई। भूख म निराश और विवश होकर भाऊ ने युद्ध का खतरा उठान का निणय किया। 14 जनवरी 1761 को वह शिविर से बाहर निकला और दोना विराधी भीषण भयप म गुत्यम-गुत्या हो गए।

भारतीय युद्ध में निणय मुख्यतः मेना के गुणा पर ही निर्भर करता रहा है। पानीपत में एक साधन-सम्पन्न कुशल और मध्य एशिया तथा भारत में युद्ध का नब्बे अनुभर वाला एक सेनापति अपक्षाटत एक युवक सेनापति के सामने खड़ा था, जिसने सिर्फ कर्नाटक म दक्षिण भारतीय मनाआ व विरुद्ध ही कुछ युद्ध लडे थे। मराठों की अफगा अन्तली के पाम अधिन सैनिक अधिक तोपें अधिक जिरहवखतर और अधिक बढ़िया घुडसवार थे। जफगा सेनापति और उसके कप्ताना का मराठों की अपेक्षा अधिक योग्य होना उनका अधिक उल्हाही तथा अनुशासित होना जफगा मेना की विजय का कारण बना। मराठा ने जोरदार धाव बोले और वे एक महान जालि के अनुकून दडना और वीरता के साा लडे। पर भूख ने उन्हें कमबोर बना दिया था और दोपहर बाद तब वे थक गए। अन्तली के बन्दूकचिया ने उनका केन्द्र का छननी बना दिया। नो मबडाई और हाफती हुई भीड के रूप में पीछे हटे। इन्नाहिम गर्नी व अधीन उनका वाइ भुजा ने अन्तली की सना की दाहिनी भुजा बन रहेलो पर आक्रमण किया, लेकिन एक सख्त और धुंधार लडाई व बाण जिसम उमने अस्सी प्रतिशत बद्धकची मारे गए उसे मैदान छोड़ देन का विवश हाना पडा। मराठा की दाहिनी भुजा में स्थित सिधिया और हाखर नजीब और भुजाउद्दौला के सामने खडे थे। लेकिन उहोने लडाई में बहुत घोडा भाग लिया। जब उन्हान देखा कि केन्द्र और बाईं भुजा नष्ट कर दी गई है तब होन्वर भागा और सिधिया का टुकडिया उसके पीछे भागा। पराजय एक सवनाग में बल गई। भयवर कत्ले आम आरम्भ हो गया। अटटाइग हबार नोगा की लानें मदान में विपर गद। अधिवतर सैनिक अफगर मारे गए। विश्वाम राव और भाऊ दोनो ही वीरतापूजन लम्ने हुए काम आए।

पानीपत की पराजय एक प्रथम काटि ना विनाश सिद्ध हुई। लेकिन यह निर्णायक विजि दगा में नहीं थी। अन्तली के लिए यह एक बेकार का विजय थी। जैसे ही उमन पीठ माडी, उनकी विाय छण्ड छण्ड हो गई। घर पर वह और जमा उतगधितारी विद्रोहिया म लम्न थे और उत्तर तथा पश्चिम से उद्वनका

जोर ईरानिया का मकद तिर पर था। वे भारत-स्थित अपने प्रतिनिधियों का भाव महाप्रता देने में असमर्थ थे। मिर्झ अपने गटा में निकल कर चारा ओर पतकना उन्होंने अफगान अफमरा का निवान बाहर किया आर चारा आर नूट-मे धावे योत्रे। कुछ ही वर्षों में सिन्धु व यम पार जंगली के विज्या का सिन्धु भी बाकी नहीं रहा। मराठा का बड़ा नगरी चोट लगी थी। लेकिन दस ही वर्ष में वे उत्तर में वापस चोट जाए और मुगल-सम्राट शाह जालम के सरदार बन कर उमे मन 1771 में इलाहाबाद में दिल्ली गया।

यह बात महिम्न है कि यदि पानीपत में मराठे जीत जाते तो भारत में पर्वर्ती इतिहास में उमम कुछ विषय अन्तर पडता। मय यह है कि मन 1761 में पहले ही मराठा राजनीति में टूट-फूट के अमन्त्रिण्य चिह्न प्रकट हो चले थे। उनके धरनु प्रशासन का आधार दुबल था। मराठा-म्वराज का प्रदेश गरीब था। एक साम्राज्य को शासन के लिए पर्याप्त राजस्व व साधन बहाने थे और इमीतिरा पेशवा की सरकार को सट और वनात वसूली पर अपनी मेनाए खड़ी करने की नीति अपनाती पडी थी। स्वराज अथवा मराठा प्रदा में बाहर का भारत कुछ सरदारों में बटा हुआ था तिनमें यह आशा की जाती थी कि वे उनके और केन्द्रीय सरकार के पाषण के लिए धन देंगे। लेकिन कन्द्रीय सरकार के पास इतनी बाकी मेनाए नहीं था कि वे सरदारा के दुराग्रह को कुचल सकती। कोई एमा मिद्वान भी उन्होंने विक्रमित नहा किया था जो उन मन्त्रों को कर रख स्वता। शिवाजी के यश के राजा के प्रति स्वामिभक्ति पेशवा के मत्तमान हो जाने के कारण नष्ट हो गई थी। पेशवा मदान में बहुत दर में पहुँचा था और मन्त्री एवं सेनापति जो कुछ ही समय पहले तक उनके समक्ष थे उमका मत्ता के प्रति ईर्ष्यान्वुय। दन परिस्थितिया में फूट और आन्तरिक खगड अनिवाय थे। मन 1738 जैम आरम्भिक वर्ष में ही जव राधोत्री भामने मुगल-साम्राज्य के पूर्वी भाग में चौथे वमूल कर रहा था वह पेशवा बाजीराव प्रथम में खगड बैठा था। भामला वम सीमा तन पहुँचा था कि अगला पेशवा बालाजी राव मुगल-सम्राट के कहन पर मन 1743 में भामने का दण्ड देने के अभियान में वगान व नवाब अलीवरदी खा का साथ देन पर राजी हो गया था। होल्कर और मिर्जिया का विराध तो मुलपता ही तही दीखता था। दामाजी गायकवाड पेशवा का मुवाबता कर बैठा था और होल्कर का दण्ड दवी-दवी गत्रुता का था। पानीपत व बाद व दिना में पेशवा की तही का उत्तराधिकार भी दावेदारा के पारम्परिक युद्ध के मकद में मुक्त नहीं रहा था।

मराठा राजनीति ने ऐसा रूप ग्रहण कर लिया था जिसे अनुमार बडे जागीर दारा और सरदारा व कुछ परिवार म्वनन्त्र गियानने म्यापित करन की ताक में थे। राजनीतिक नामता में जनता का जयवा वरों का कोई हिस्सा नहीं था। मराठा नवाबों ने उच्च काटि की राजनीतिवित्तता का भी परिचय नहीं दिया। व नाचा और छान पपट करनवान थे। उन्होंने विनाश का पीन दिया और अपनी प्रता अथवा अधीन मित्रा की महानुभूति प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने स्वयं अपने नाचा व हिता और उनकी मास्त्रिक प्रानि में भी कोई रुचि नहीं दिखाई।

दा वातन भवन की पराजय अन्तिम नहीं थी। जो युद्ध बास्तव में निषायक हुआ युद्ध के लिये शक्तिवारी परिणाम निकले वह पानीपत में चार वर्ष पहले ही प्लासी पर विजय के दण्डली वाता में लगे जा चुका था।

मार्ग भारत में जान से पहले अहमद शाह ख्वाजा की जर्जी गौहर को शाह आलम द्वितीय के नाम में सम्राट घोषित कर दिया था। लेकिन चूंकि शाह आलम राजधानी से बाहर था इसलिए नजीबुद्दौला दिल्ली का प्रधान प्रशासक और राज्य प्रतिनिधि बना। शहजादा जवानबख्श को युवराज-पद दिया गया। इस प्रकार, 1761 से 1770 तक नजीबुद्दौला शासन के केंद्र में रहा। वह केवल सम्राट का ही नहीं, बल्कि अहमद शाह अदाली का भी प्रतिनिधि था। उसे दिल्ली के चारों ओर में मुगल प्रदेश में व्यवस्था कायम करनी थी और जाटों तथा सिंधु की लूट-छसोट का रोकना था। जाटों के विरुद्ध तो वह सफल रहा। मुरघमल को उसने उदाई में भार लगाया और उसके बेटे का विरोध के अयोग्य बना दिया। लखन सिन्हा के विरुद्ध वह विफल रहा और उन्हें काबू में नहीं कर सका। हां फतकिया सिख सतलज-पार के सरदारों से बच गए।

#### 4 मराठों के झगड़े और दिल्ली का पतन

सन् 1770 तक पानीपत के घबरे से मराठे इतना भाषा उभर चुके थे कि उत्तर में फिर से प्रकट हो सकें और अपनी सत्ता का फिर से स्थापित कर सकें। इसी अवसर पर नवाब का मृत्यु ने शाह आलम को मजबूर किया कि वह एक चात्र चुने—या तो अंग्रेजों के संरक्षण में इलाहाबाद में रहे, या मराठों की सहायता लेकर दिल्ली की गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न करे। सम्राट की राजधानी लौटने की चिन्ता का मराठा सरदारों ने पूरा साम उठाया। उन्होंने उसके साथ एक संधि कर ली और उसे दिल्ली लिये जाने और पुन गद्दी पर बिठाने का वचन दिया। इस प्रकार बारह वर्षों के निष्कासन के बाद शाह आलम शाही शक्ति का प्रतीक और उसके केंद्र राजधानी में लौट गया।

बाहर रहते हुए भी शाह आलम ने विहार और बंगाल पर अपनी सत्ता फिर से स्थापित करने के लिए कुछ प्रयास किए थे, पर बंगाल के नवाब ने हाथों उस मुह की गानी पड़ी थी। यह एक अजीब संयोग है कि पानीपत के युद्ध के अगले ही दिन साम्राज्य के भाग्य के प्रति अचेत शाह आलम ने बिहार के एव नगर के पास एक अंग्रेजी सना से सहाय की थी किन्तु उसे हार कर संधि करनी पड़ी थी। फिर, छीन वर्ष बाद (1764) जब सम्राट और अंग्रेजों के नवाब ने मही से हटा दिए गए नवाब कात्तिल अली खा (मीर कासिम) का पक्ष ग्रहण किया था तब उनकी सम्मिलित सेनावा को बक्सर में पराजित होना पड़ा था। इस प्रकार शाह आलम अंग्रेजों से पैमाने पाने लगा था और शूजाउद्दौला उनका अधान हो गया था। एक विदेशी शक्ति पर निर्भर रहने की इस अपमानजनक स्थिति का समाप्त करने के लिए ही शाह आलम ने मराठा का संरक्षण स्वीकार किया था और इलाहाबाद छोड़ दिया था।

मराठे अब दिल्ली के मामलों पर नियन्त्रण करने की स्थिति में आ गए थे। लेकिन वे अभी पेशवा माधव राव की सन् 1772 में मृत्यु के बाद पुना उत्तराधिकार सम्बन्धी अनिश्चित झगड़ा में उलझ गए थे। पेशवा के चाचा रघुनाथ राव ने नारायण राव को हटाने के लिए पाने रखा। उस मही सराया से असन्तुष्ट तत्वों की सहायता प्राप्त हो गई।

पेशवा के परामर्शदाता अपने स्वामी के भाव्य के सम्बन्ध में कर्मादेश उपमा का भाव धारण किए हुए थे। महान के रमज गद्दिमा का फुसला लिया गया। पेशवा ने पूरी मतबन्ध नहीं बन्ती और पदाब्ज होने के नौ मास के भीतर ही उनको हत्या कर दी गई।

एक गृह-मुद्र आरम्भ हो गया और रघुनाथ राव (गणेशवा) ने अंग्रेजों से सैनिक सहायता की बातचीत की। अब जैसे पत्नीली आब पर चला दी गई थी। सभी मराठा सरदार पेशवा में शामिल हो गए। उनके दक्षिण के पड़ोसिया—हैदराबाद के निजाम और मसूर के हैदर अली—ने अपने-अपने हितों के अनुसार पक्ष ग्रहण कर लिए। फार्मोसी तक मध्य में शामिल हुए। अन्त में सन 1782 की मानवार्थ की संधि ने इस लम्बे युद्ध का अन्त लिया।

दिल्ली और मध्य के इन वर्षों में मराठा सरदारों का उत्तर व मामला की ओर ध्यान देने का बहुत कम अवसर मिला। दिल्ली को उमड़े हाल पर छाड़ दिया गया। नजफ खा, जिखने बगार व अंग्रेजों के सम्पर्क में रह कर सैनिक विद्या सीखी थी और जिसे उनका विश्वास तथा सहयोग प्राप्त था, दिल्ली का प्रभावशाली शासन बन गया। यद्यपि उममें नागरिक प्रशासन को ठीक रखने की आवश्यकता याम्यता नहीं थी तथापि बहु चारों ओर से उमड़ते हुए शत्रुओं के आक्रमण से साम्राज्य के बचे-बचूके हिस्से को बचाए रख सता।

सन 1782 में नजफ खा मर गया। उसके महायका के बीच राज्य प्रतिनिधित्व व लिए एक गन्दा लक्ष्य आरम्भ हुआ। इसमें उन भोगों व अपने को नष्ट कर दिया और मराठा के लिए मार्ग खोल दिया। मराठों का नेता महादजी सिंधिया दक्षिण के मुठों से मुक्त होकर अब उत्तर के मामला की देखरेख करने का स्थिति में आ गया था। उत्तगधिहार-मुद्र ने मराठा-समूह को जंग को हिना दिया था और एक मध्य व क्षेत्र के रूप में पेशवा का सत्ता कमजोर पड़ गई थी। सिंधिया हान्तर, गायरपाठ और भासने-जंगे सरदार दक्षिण, बगान और लवध व मुगल सूबेदारों की तरह ही स्वायत्त शान्तिव शासन बन गए। महादजी का महावाकावा की कि बहु स्थितियों व मुगल-महासामन्त की स्थिति प्राप्त करे। नजफ खा के मृत्युशय्या के पदचन्द्रा और पेशवा से सम्राट मुक्ति पाना चाहता था। उमल प्रशासन का बागडार हाव में नेने के लिए महादजी को दिल्ली बुलाया।

अप्रज स्थितियों के मामलों को बहुत बारीकी से जाच-परख रड थे और इन बारे में उनसे अपन दरारे थे, पर अभी वे उन लूफानी महारों में बूढ़ पड़ने को तैयार नाथ थे। लेकिन सम्राट पर नियन्त्रण बाने के लिए मराठा और अंग्रेजों में संधि जनिबाय था। अवेन मराठों की अपना अधिक शक्ति और साधन-सम्पन्न थे। अपनी याचना के आधिक, सैनिक और बूटनीतिक पन्नुमा के बारे में वाचमन्त हुए बिना वे आगे नहीं चले। दूतों और, मराठे ध्य, उपलब्ध सेनाओं की योग्यता और साधियों की विश्वस्तता का विचार किए बिना ही दिल्ली व बड़ो में बूढ़ पडे। वे केवल नाम का समर से आरक्षण हुए।

इस प्रकार, महादजी ने सम्राट का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उसने फतहपुर सीकरी के निकट एक गिरि में सम्राट के सामने अपने का प्रस्तुत किया, उसके पैर पर अपना गिर रखा और मोने की 101 मोहरे उसकी नजर की। सम्राट ने राज्य प्रतिनिधि (करीने-मन्तव) का पद, जिमें प्रधान मन्त्री (बजार) और प्रधान सेनापति

(मीर ज़ुमा) व कनय सम्मिलित थे, उम प्रदान किया। पेशवा के अधिव बडे दावे का टुकड़ा लिया गया। महाराजी का महत्वाकांक्षा पूरी हो गई। मुगल-साम्राज्य का सर्वोच्च पद उन प्राप्त कर लिया था। प्रान्तीय सूत्रदारा और सर्वोच्च पदाधिकारिया का नियुक्त और वर्धमान करना तथा जागार प्रदान करना और कर लगाना उसके अधिकार में आ गया था। वह सम्राट का प्रतिनिधि और राज्य में उसके बाद सर्वप्रमुख व्यक्ति बन गया था।

लेकिन वास्तव में बहुत ऊंचा वीरमत धरम महाराजी ने एक बेकार का खिलौना लिया था। उस दस लाख रुपये मासिक खर्च करके एक बड़ी सेना रखनी पड़ती थी और पत्तन लिए उम उस सकुचित साम्राज्य में से पैसा खींचना पड़ता था, जिम कितनी ही बार रौंग और लूटा जा चका था। शाहा आदश दिल्ली और आगरा व जिलो में आगे कठिनाई से हा असर रचत थे और यहा भा शाहा क्षेत्रा का बहुत बडा भाग या तो न डाला गया था या उस पर उन लोगों ने कब्जा कर लिया था, जो बल प्रयोग के बिना कानूनी कर दन से भी इनकार करते थे। और भी बुरा बात यह थी कि हर दिशा से और अन्दर से भी शत्रु उम पर दबाव डाल रहे थे। मुगल-सरदार उसके विरुद्ध जाल रचत और विद्रोह करत थे। अस्थिर चित्त और अविश्वस्त सम्राट ने स्थायी सहयोग नही लिया। पेशवा व सरदार में नाना फत्तवासे का प्रभाव उसके विरुद्ध काम कर रहा था और धरेनु सरदार व पास जिसे मैदान में पहुंचे हुए अपने सेनापति का पूरी सहायता करनी चाहिए था, विपत्ति के समय महाराजी की मदद करने के लिए न धन था और न बसी इच्छा। जयपुर के राजा ने निश्चित नजराना देने से इनकार कर दिया और अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने के लिए अपने दूत का लखनऊ भजा। महाराजी उसके विरुद्ध कारवाई करने पर विवश हो गया। लेकिन बतन का बहुत पुराना बकाया और भुखमरी व भय के कारण मुगल-टुकड़िया के साथ छाड़ जाने से उसकी स्थिति विदम्बनाजनक बन गई। वह राजा का दवाने में विफल रहा।

मुगल अमीर गुनाम कान्ति काला ने महाराजी के सकुट का लाभ उठाया। दिन मिलत गाह आलम की गद्दी से उतार दिया गया। उसे यातनाए दी गई और अज्ञा बना दिया गया। लेकिन इसा बीच महाराजा लालसर की अपनी हार से उभर आया था। उसने दिल्ली पर फिर से अधिकार कर लिया। उसने अंधे सम्राट को फिर से गद्दी पर बिठाया और प्रशासन-गन्त का पुनर्निमाण करने तथा सेनाबा एव पेशवा-नरकार की उपाहार मांगा का पूरा करने के उद्देश्य से विद्रोही सामन्ता आर जमीदारों को वश म करने का नियम किया ताकि समस्त जोर धन इकट्ठा हो सक।

लेकिन कितन ही एसे शत्रु थे जिन्होंने उसके माग में स्वावट डाली थी। य ध अनगन रहेन मुगल-सरदार राजस्थान के राजा और भाडे के अव्यवस्था सिपाही जा बिगने हुई हालतो का लाभ उठाने की ताक में रहते थे। मराठा-सरदारों में होकर उसका प्रतिद्वंद्वी था और नाना फत्तवसे उसने बढते हुए सम्मान तथा प्रभाव के प्रति आर्षानु था। नाना फत्तवसे ने महाराजी को सीमित करने के लिए एक चाणक्यवाणी

<sup>1</sup> जय मित्रिया ने कहा कि यह ता पेशवा के अनुचर के रूप में ही सर्व-मुक्त कर रहा था तब पेशवा की शमा में बहुत शय प्रकट किया गया।

<sup>2</sup> महात्मा सरदार 'कान आरु व मुगल एम्पायर' पृष्ठ 3 पृष्ठ 282

जाल रचा। उसने नडरान इकट्ठे करके वरिष्ठ उत्तर प्रदेश का गिरिया, होल्कर और पगवा व प्रतिनिधि जमी बहादुर के बीच बांट दिया। जान बूझ कर प्रत्येक के लिए नडराना का राशि इतनी ऊँची रखी गई कि कोई जमाना हिम्मा पूरी तरह बसून न कर सके और इस प्रकार तीनों बगानार आपसी बलह में लगे रहें।

जपान शत्रुता जीर उनका पन्धरा के सिद्ध महाराजों की प्रतिश्रिया था एक अन्यन्त लिगाल मना इकट्ठा करना जा गानि जीर व्यवस्था कायम रखन तथा नडरान एवं भूमि-कर एकत्र करन में समर्थ था। यह मेना लि कायन ने जा मन् 1784 में उन्की नीयतों में का नैदार की। उनने जा मना उन्की का, उनका मदन्व-वस्था अन्तत 39 000 तक पहुँच गइ। यह मुख्यत पदम मना था निन प्राणीमी पद्धति से प्रगिभित किया गया था। उनका साथ तापची टुकिया थी, जिन्हें यूरोपीय देखरख में काम करनेवाले कारखाना में तैयार तापा और बन्दूका में मुमजिन किया गया था।

इस नई मना के कारण महाराजा शत्रुता पर छा गया और अपन प्रतिद्वन्दी हाल्कर मनेज ममी शत्रुता पर उनने निगायब विजय प्राप्त कर ली। मन् 1793 तक वह अपनी शक्ति का चरम सीमा पर पहुँच गया। उनका नाम और का मराठा में अद्वितीय बन गया, लेकिन उसकी विजय अल्पकाली रही क्योंकि दो वर्षों के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई और इसके साथ ही मराठे अपने अन्तिम महान नरिब बटनीति से वचिन हो गए।

उन्के बाद का व्यवस्था का समर्थ जाया। चारों ओर क्षयते आरम्भ हो गए। महाराजा का शासक सिंग बेटा, दीनत जब जी उनका सौतनी माना आपन में बगहन लगी। गिरिया व नारिक जीर मरिब अग्रिकारी, जा विभिन्न ब्राह्मण-उपजातियों का साथ और श्रेणियों का सम्बन्ध रखन थे एक-दूसरे के विरुद्ध पदपन्धर रचन लगे। मुकोना होल्कर व बेटे अपन पिता की विरायत के लिए एक-दूसरे से भ्रानथातक युद्ध में ललत गए। मुक्क पगवा माधव राव द्वितीय की मन् 1793 में उत्तराधिकार के लगे आरम्भ हो गए जिनमें मराठा-सरदार ने विराधी पक्ष ग्रहण किया।

जो गृह-युद्ध अब आरम्भ हुआ उनमें प्रमुख भाग सेनवाल थे, मन्वन्त राव होल्कर और दीनत राव गिरिया। नाना फर्नबोन ने बाकी टुकुल करन और अपन घोर शत्रुता के बेटे का दूर रखन व विपन्न प्रकाशों के बाद अन्तत उन्की का पन्-समर्थन किया। कोल्हापुर के राजा छत्रपति सिवाजी जीर पदवधन-नरदार परगुराम माऊ के साथ युद्ध छिड़ जाने से भी अधिक उत्तनने पैदा हो गई। प्रतिद्वन्दी सनाजा के अमिषाना देग का तबाह कर दिया। गावक-गाव उनने पाडा की टापा से रोड डाले गए। नरारा सटा और बगद किया गया। धनिकों का पदपरा में मन्वाए दी गई और मरीदा अन्वनाय गृष्ट महु। मराठा प्रदेश में चारों ओर जरातकता फैल गई।

यह युद्ध जिसमें सब एक-दूसरे में लगे अन्देश व लिए देवी बरगन सिद्ध हुआ। उम नैगालियन के साथ जीवन-मरण का संधप में उनमें थे, जिसने मूमध्य-सागर का तर कर लिया था पिरामिडों की छाया में तुनों का हरा दिया था और जा सीरिदा पुन जाया था। उसके दूर का जीर पूर्वी देग को सिपता व विरुद्ध उन्का रहे थे और सिद्ध था कि टीपू मुननान उन्के साथ पन्ध-व्यवहार कर रहा है। उम समर्थ जाने दिना ने गगा के निरु अन्देश मरवार ने वेल्मनी-बगुना का भारत भेजा।

करतमें में पन्धरा शरन हा वेल्मना न मराठा को सहायक गिरिया व जान में देव नान के लिए उनने बावसोत्र आरम्भ की। वेगडा न प्रथम तो उनने दान प्रदाना



वो जोर कोई ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब यशवंत राव होल्कर ने उसे हरा दिया (1802) और पूना से बाहर खदेड़ दिया, उस जैसे ब्रिटिश सरकार स्वयंवर करने के लिए विवश होना पड़ा। वह बसई गाम गया और वहाँ उसने एक छात्र पर हस्ताक्षर कर दिए जिसने अनुसार वह प्रजेजा के लक्ष्यो हो गया।

इस प्रकार केन्द्रीय मराठा राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया। लेकिन मराठा सरदार अब भी शक्तिशाली थे। अंग्रेजों के साम्राज्य से अपने धार सकट के दिना में भी मराठे अपनी अवशिष्ट शक्ति की रक्षा के लिए एक नहीं हो सके। ऐसी मुद्यता का भाव्य ने समा नहीं किया। सिंधिया और होल्कर अंग्रेजों से अलग-अलग लड़े और दोनों को वारो-वारो से करारी हार खानी पड़ी।

महादजी सिंधिया न दक्षिण के लिए कूट करने में पहले साम्राज्य के प्रशासन का उचित प्रयत्न कर दिया था। उसने दिल्ली व चिरिया के सरदार शाह निजामुद्दीन को राज प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया था और दिल्ली के प्रदेशों का कर उगाहने के उद्देश्य से छ जिलों में बांट दिया था। दुर्भाग्यवश, दिल्ली से सिंधिया की लम्बी अनुपस्थिति, यूरोपीय सेनापतियों की गहरी राज प्रतिनिधि की कूरना और उसके चालचौपन, तथा साहसिक लागा की लूटपाट न सम्राट एक छोपे के जीवन को इतना दुखी बना दिया कि बंधन नहीं किया जा सकता।

जब बलसली ने दौलतराव के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तब ब्रिटिश सेनाभा 1 उत्तर और दक्षिण में स्थित मराठा पौजा को बहुत तेजी से घेर लिया। उत्तरी पक्ष का गनापति सेन अलीगढ़ पहुँचा और जयन पेरन के अधीनस्थ सिंधिया की सेनाओं का उघाट डाला। फिर उसने दिल्ली की ओर कूच किया। 16 सितम्बर, 1803 को उसने दिल्ली में प्रवेश किया। सम्राट शाह आबम ब्रिटिश सरकार में चला गया और मुगल साम्राज्य का अस्तित्व वस्तुतः समाप्त हो गया।

दक्षिण में आयर वेल्डला (मद्रास के ड्यूक आफ वेतिगटन) ने सिंधिया और भौसने की सेनाओं को क्रमशः अस्तर् और अरबाव में नष्ट कर डाला और तब गाविलयड व सिन्धे पर अधिकार कर लिया। देवनाब और सर्जी अजागाव की सिंधिया पर हस्ताक्षर करने मामले और सिंधिया ने अपनी स्वतंत्रता समाप्त कर दी। इस प्रकार शिवाजी का हिन्दू पाठ पाठगारी का सपना नष्ट हो गया।

## दूसरा अध्याय

### अठारहवीं शताब्दी में साम्राजिक संगठन

#### 1. भारतीय इतिहास की विशेषताएँ

बाबर ने सातहवाँ शताब्दी के आरम्भ में मुगल-साम्राज्य की नींव रखी। उसके माघ और सयल उत्तर्गप्रिवारिया ने एक विगत क्षेत्र में उसे फैलाया—इनना सि औरग-जैव की मृत्यु तक उसकी सीमाएँ उत्तर में बरकदारम पर्वत तथा आक्सत नदी तक और दक्षिण में कन्नैरी नदी तक फैल गई। पश्चिम से पूरुव तक यह साम्राज्य ईरान और बर्मा के राज्या के बीच स्थित था। इन प्रकार, मुगल अपने से पहले अथवा बाद के किसी भी साम्राज्य से अधिक विस्तृत प्रदेशों पर राज करते थे।

इस विस्तृत साम्राज्य ने अपने समय में अतुलनीय धूमधाम, शान्ति और तथा वैभव और सभ्यता में भरपूर होने की प्रसिद्धि प्राप्त की। प्रशासन और राज्य प्रबंध की इसकी प्रणाली ने विस्तृत भूभाषा में शान्ति और व्यवस्था कायम की। कला और साहित्य की प्रगति के लिए भी अद्वितीय अवसर उपलब्ध हुए। विश्व-सभ्यताओं के इतिहास में इसकी उपलब्धियाँ एक शानदार अध्याय जाड़ना हैं। लेकिन यह अद्भुत प्रासाद अधिक समय तक कायम नहीं रह सका। सन् 1526 में पानीपत में नीर रघी जान म सेवर सन् 1739 में नादिर शाह के आक्रमण तक की 213 वर्ष की अवधि में ही यह साम्राज्य समाप्त हो गया। मुगल-साम्राज्य की अवधि लम्बी नहीं थी, पर भारतीय साम्राज्य काधारणन अल्पनीवी ही रहें थे। मौर्य-साम्राज्य का डेड मरणात्नी स भी कम समय में अन्त हो गया। मानवाहना न अपना साम्राज्य पहली शताब्दी ईसा-पूर्व के मध्य स्थापित सिन्ध और दक्षिण पर समुद्र से समुद्र तक अपना प्रभुत्व विस्तृत किया। पाँचवें शताब्दी की अन्त अवधि तीन शताब्दी स भी कम है। गुप्त-वंश न लक्ष्मण से ही बंध तक राज किया। दक्षिण के चीन आर बंगाल के पान-सुमे प्रादेशिक राज्य अधिक दिना तक कायम रहे—तापद इस कारण कि उनकी स्थिति मरुक्षित थी। अथवा, नापारणत प्राचीन और मध्य-युगान सभी भारतीय राज्य और साम्राज्य अन्तर्भाव ही रहे।

वर्ष 1519 में नेवर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक फैल इतिहास में एक समय पर दो शताब्दियों में अधिक की अविकल राजनीतिक एकता का नाम भारत न बर्मा नहीं उठाया। एशिया का जटिल भारतीय साम्राज्य उसकी मृत्यु के नाम एकदम बाद हो विघटन गया। चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त-द्वारा जीते गए प्रदेश पाचवीं शताब्दी के अन्त में बुद्धगुप्त के समय तक हम से निकल गए, जब उत्तर-पश्चिम के हूण हमलावरों ने गुप्ता की मत्ता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। चिनजियों का साम्राज्य कश्मिर में तीसवें (सन् 1290-1320 तक) टिका। तुगलकों की सत्ता का मुहम्मद तुगलक की मृत्यु (1351) न पहल ही बंगाल और दक्षिण में चुनौती दी जाने लगी थी। मुगल के साम्राज्य का अन्त और अन्त की मृत्यु के बाद आधी शताब्दी के भीतर ही अन्त-अन्त हाकर विघटन गया। इस प्रकार भारत का इतिहास साम्राज्यों के उदय और पतन तथा एक के पतन और अन्त का स्थापना के बीच का अचरनत्रा की कहानी है।

भारत का इतिहास के विषय में दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि साम्राज्या की राजधानियाँ और राजनीतिक प्रणालियों के प्रभाव-क्षेत्र स्थायी नहीं रहे। मौर्यों और गुप्तों की राजधानी पूर्वी भारत में थी। मानवाहना ने दक्खिन से राज किया। गुजर प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज थी। चान दक्षिण भारत के थे और मध्य-युगीन मुल्ताना तथा मुगलों ने दिल्ली अथवा आगरा से अपने प्रभुत्व को विस्तृत किया। यूरोपीय स्थितियाँ का मुनासबत में केन्द्रितता का यह अभाव दानीय है। उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड, फ्रांस और इटली के राज्या न लन्दन, पेरिस और रोम के विशिष्ट क्षेत्रों में ही अपना रूप वियासत किया था।

यद्यपि भारत के किसी भी एक हिस्से में केन्द्रीकरण में एक प्रधान भूमिका निरन्तर अदा नहीं की, तथापि यह सच है कि भारत का मध्य-देश (शुभव मध्य-देश) अर्थात् सरस्वती तथा सदा नारा का और हिमालय तथा विष्णुचल के बीच के प्रदेश का राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन में युग-युग से एक विशिष्ट सम्मानित स्थान रहा है। कारण, यह प्रदेश प्राचीन युगा में सूयवशी और चद्रवशी राजाओं राम, भरत और जनक के राज-कुलों का तथा मध्य-युगा में तुक और मुगल-साम्राज्या का गढ़ रहा। गया, यमुना और सरस्वती जसी पवित्र नदियाँ और हरिद्वार अयोध्या मथुरा, प्रयाग तथा काशी-असे तीर्थस्थाना की भूमि भी यहाँ है। यहाँ कुछ महान भारतीय भाषाओं—संस्कृत, पाली ब्रज और उर्दू—न जन्म किया और वे फली फूलीं। यही बुद्ध और महावीर के धर्मों का तथा भक्ति और सूफी-आन्दानना का विकास हुआ।

मध्य-देश वह केंद्र रहा जहाँ से सांस्कृतिक प्रभाव भारत के सभी प्रदेशों में पहुँचता था। लेकिन यह सांस्कृतिक केंद्र भारत के लोको के एक संगठित सामाजिक राजनीतिक दलाई के रूप में बाधे रखा और इस उद्योग की ओर उन्हें आकर्षित करने में विफल रहा।

भारत के एक ही हिस्से में सामाजिक संगठन का विकास करने में असफल क्या रहा और इसका राजनीतिक ढाँचा अस्थिर क्या रहा—ये वे समस्याएँ हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। इन्हें समझे बिना अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों-द्वारा भारत की विजय को और इस संगठन 200 वर्ष बाद भारत-द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति का स्पष्ट नहीं समझा जा सकता। इसलिए यह जरूरी है कि विजय के अवसर पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना को समझना बानेवाला जो विशिष्ट अवस्थाएँ भारत में बतमान थी उनका विश्लेषण किया जाए।

अब सम्यता के निर्माण और उसके विनाश दोनों में ही मानव और प्रकृति को एक भूमिका अदा करनी पड़ती है। इन दोनों में प्रकृति की भूमिका मात्र की भूमिका का समझना ही है। प्रकृति अवसर प्रदान करती है लेकिन यह मानव का काम है कि वह उसे सभ्य उद्योग में बदल चुकोनिमा प्रस्तुत करती है जिसे यथोचित प्रतिनिध्याओं की शक्ति देनी है। जब मनुष्य प्रकृति की दान को उपयोग करता है तब वह अपना बदमास जागे रखा है और पतन से दूसरा साया पर उठना जाता है। इससे विपरीत अवस्था में या ता पर गुनितान विधि में पतन रखा है या इतिहास धर्म के बीच जा-नुछ टटने धर्म प्रकृति का पर रखा गया, वह टूट जाता है और जलना विधर जाता है। लेकिन सम्यता और सम्मताओं का उत्थान और पतन बाधकता के बिना ताद निरुपेण गीतना नहीं होना। जहाँ तक विचार पड़ता है मानव अपने भाग्य का निर्माण स्वयं

ही करना है प्राकृतिक कारण उसकी शक्तियाँ को चाहे कितना ही भीमित कर दें। सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक प्रगतिमान मानव-द्वारा प्राकृतिक साधनों के सज्जनात्मक उपयोग की ही परिपक्वता है।

यद्यपि ज्ञान की वर्तमान अवस्था में सन्तुलित वायु-कारणवाद के उल्लेख हुए ज्ञान का वैज्ञानिक पद्धति से मुक्तमाना सम्भव है, तथापि वर्तमान की घटनाओं का मात्र वर्णन करके और उनकी शृंखला की व्यवस्था उनमें उपस्थित वायु-कारण सम्बन्धों की उपस्था करके सन्तुष्ट कर लेना सम्भव नहीं है। इतिहास का समन्वय की शक्ति में बाधें बढ़ने के लिए इन कारणों के प्रभाव का मूल्यांकन आवश्यक है।

यदि मर्मा इतिहास की तरह भारत का भी इतिहास मन और प्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया का एक लक्ष्य है, तो जिन विभिन्न तत्वों ने अठारहवीं शताब्दी की घटनाओं का रूप-रामर दिया उनके योगदान का मूल्यांकन जरूर ही जाना है। और, आरम्भ जिस प्राकृतिक वातावरण में ही किया जा सकता है, जो मानवीय प्रयत्नों को प्रेरणा और अवसरदाना का प्रदान करता है।

## 2 भूमि

भारत उत्तरीय शताब्दीवाले ज्यों भूमि के दृष्टि से यह उमा वग में पड़ता है जिनमें सोवियत रूस जिन आस्ट्रेलिया कनाडा और अमेरिका हैं। जनसंख्या की दृष्टि से वह चीन के बाद सत्तार का सबसे बड़ा देश है।

इसकी भौगोलिक विशेषताएँ इसे विश्व का एक निचोड़ जयवा प्रतीक बना देती हैं। कारण सभी प्रकार की जलवायु, सगमग हरडग का भूमि और जल, पशुओं और पौधों की अधिकतर जातियाँ कितनी ही प्रकार के खनिज पदार्थ और कितनी ही मानवीय जातियाँ इसका विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

यह देश प्राकृतिक दृष्टि से चार भागों में बंटा है। हिमालय प्रदेश उत्तरा मंडलाना का प्रदेश, मध्यवर्ती पंचभूमि, और पूर्वी पश्चिमी तथा दक्षिणी समुद्रतटा-महित दक्कन।

हिमालय का प्रदेश हिम का अविच्छिन्न आवास है। इसी की गोद में कश्मीर का सगौरमय घाटी अवस्थित है, जिन मुगलों ने धरती का स्वर्ग बनाया था। यहाँ अतिसन्त पर्वतीय राज्य है जिनमें से कुछ बहुत छोटे और चित्रमय हैं, और निम्न, मूटान तथा नेरल-जैसे जय राग्य हैं जिनमें बसनेवाली मडबूत और लडाख जातियाँ पर्वतारोही की तरह निवसित प्रमा है।

उत्तरा मंडलाना का प्रदेश जो जय-भार से बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत है उन महान् नदियों की देन है जिनके जल-मय हिमालयान्ति हिमालय में हैं। उपजाऊ पंजाब की निम्न और उसकी महायुक्त नदियाँ जीवनी हैं। जाड़ा में ठण्डी और गर्मियों में गम इनकी शक्ति और स्फूर्तिमान जलवायु तथा नगम्य से लेकर माघारण तक क्या इस परिश्रमों विद्याओं और प्रचुर कृषि-उपकरणों की भूमि बना देता है। उज्ज्वल का एक बहुत बड़ा भाग रेगिस्तान है। यह पीली रेत का एक अद्वितीय समूह है, जहाँ जन बहुत कम है और जीविका बनाना बहुत कठिन। लेकिन राजस्थान ने उस गर्मियों राजपूत-जाति का जन्म दिया है जो अत्यंत और बहादुर के समान की रसा के प्रति बहुत व्यक्त आतिथ्य भाव से आनन्दित, देश की भाँसा तक उपाय ज्ञान सरदारों के प्रति

व्यापार प्रमाद को हटाने के लिए वीर और साहसी अनिर्मुक्त और समकालीन भारतीयों को  
म उद्यम रही है।

मध्य भूमि अगवली और राजमहल की पहाड़िया के बीच अवस्थित नदियाँ से  
भरा प्रदेश है। यह वह तल भूमि है जिसमें हिमालय का फागलू जल उत्तर से और  
विन्ध्याचल का जल दक्षिण से आकर बहता है। ये नदियाँ बड़ी-बड़ी उपजाऊ मिट्टी  
पाती हैं जिसने मध्य भूमि को नाद को भर दिया है और उसे हजारों फुट गहरी मिट्टी  
की पर्त प्रदान की है। धीमे धीमे बहनेवाली यमा हिमालय की घाटियाँ से बाहर निकल  
कर उपजाऊ मिट्टी की मोटी परत के बीच बहती हुई दाहिनी ओर बाइ, दोनों ओर से  
महायन्त्र नदियों को ग्रहण करती हुई बड़ी शान से तब तक आगे बढ़ती चली जाता है  
जब तक बंगाल की खाड़ी के विशाल विस्तार का आतिगमन करने के लिए दक्षिण की ओर  
नहीं मुड़ जाती। यह एक गम प्रदेश है। यद्यपि जाड़ा हल्का पड़ता है, तथापि धूम्र  
के महीनों में पपड़ा जमी धरती पर सूर्य की किरणों श्रुतापूर्वक दहकती है। तब जून  
मास में दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम से काल बादल घिरने लगते हैं तथा  
धरती को प्यास बुझाने और उसे समृद्ध हरियाली से ढक देने के लिए बरसात का  
पञ्चती है।

यह मध्य भूमि प्राचीन और मध्य, दोनों ही युगों में भारतीय सभ्यता की पीठस्थली  
रही है। इसकी भाषाओं को सर्वाधिक व्यापक भाव से मान्यता मिली है। यह साहित्य  
रचना के लिए प्रसिद्ध रही है। इसके राजाओं के वीरतापूर्ण काम और पवित्र पुरुषों  
पावन कृत्य उन विद्वान्तियाँ पढ़ानियाँ तथा वीर-गीतों में लिखित हैं, जो पूरे भारत की  
र मूल्यवान् धरोहर बन गए हैं। इसकी नदियों के तटों के साथ-साथ वे नगर बस  
शक्ति के बन्द बन गए, और वे आश्रमों, विद्वान्-ज्ञान तथा सत्य के अन्वेषकों को  
आश्रय दिया।

जहाँ-तहाँ गंगा रामायण पहाड़ियों के पास से सरग कर आये निकलती है वह बंगाल  
उत्तराखण्ड मगध में प्रवेश करता है। गंगा ब्रह्मपुत्र और मेघना आ इस भूमि पर घीम  
तीमे बहती है उस मिट्टी सतनी चरती है जिसे वज्रपन माय चीन माना है। यह विशाल  
नदियाँ तटों पर जमा हावी चलती है और गंगा पथ की तरह चलना जाती है। इनकी  
गह्राए कमरियाँ का रूप धारण कर लेती हैं। बंगाल एक वाष्पय मदान है जो प्रचुर  
तथा आतिगमन जन धाराओं और जलानया के कारण गम और नम रहता है। यहाँ  
उपज बढ़ा घनी है और आसन गह्र। 'स्वयंमय बंगाल' को भारत का अधिातर भागों का  
बढ़ा तर प्रकृति का धरणा मिते है।

गंगा के नामगमा मगध के दक्षिणी छोर से भूमि ऊँच होन लगती है यहाँ तक कि  
यह कमूर विन्ध्या शिखरों के उतार तक पहुँच जाती है। यह उठा हुआ प्रदेश मध्य भारत  
का उत्तम भूमि है। पश्चिम में पूर्व तक मालवा बुन्देखण्ड और दक्षिण-पश्चिम प्रदेश इसमें  
गमिनिता है। पूर में कमूर-मादरन का पबल-श्रेणी इस प्रदेश को छोटानागपुर और  
उड़ीसा से अलग करता है और पश्चिम में चम्बल नदी और अरावली पहाड़ियाँ इसे राज  
पूजा और मुजरात से बाँटना हैं। विन्ध्याचल का गंगा के मैदान से आरम्भ होकर हल्क  
उपार के साथ अपनी गंगा का ओर उठता है, अब मुह के बल तीब्रे दक्षिण की ओर लुका  
रहा है। इवान के पश्चिम में मगध का सगरा तट प्रदेश है। इस नदी में अमरकान्तक  
का उद्यम का जन आता है। यह अवतपुर की निकटवर्ती सममरी चट्टानों की गहरी

घाटियों में से गुजरती है और तब जंगल और पहाड़ियों में से हजार शान्तिबुद्ध नमूद की ओर बह जाती है। नमदा बड़े ही चित्रमय दृश्यों के बीच भाग बनाती हुई चलती है। प्राचीन काल में इसने तटा पर अनगिनत जयस, मन्दिर और पूजा-स्थल बनाए गए थे। परिवर्तन नमूद-नट के बन्दरगाहा तक पहुँचने के लिए उत्कृष्ट यात्री पाटलिपुत्र से विजय-पवन-श्रेणियों के साथ चल कर चित्रकूट भिन्ना और उज्जैन होत हुए भड़ौच पहुँचा करत थे। जो दक्कन में प्रवेश करना चाहते थे व पहुँचे दरों में से गुजरत थे और तब नदी व उन पार चने जाते थे। नमदा की किलेन्द्री में नगमा पवित्र गगा-जैनी श्रेष्ठ पावनता के आवरण में उठे लपट तिया है।

नमदा दक्कन के टा पठार का उत्तरा सीमा है जा सुदूर दक्षिण तक एक काल का तरह गडा चना गया है। इनके दोना आर पूर्वी और पश्चिमा घाट हैं। पूर्वी घाट अल्पव स्थिर रूप में पंजा वम ऊँचा पहाड़िया की एक श्रेणी है जिसके बीच-बीच में रिक्त स्थान हैं। बगाल की खाड़ी और इस घाट के बीच का चौडा मैदान उत्तरीमा आन्ध्रप्रदेश और तमिलनाड की समुद्र-तटवर्ती भूमि है। तट चमरा से ढकी दरदरा और रेन के टीला स भरा है। इनके बीच-बीच में बड़े-बड़े बिचरे हैं, जिन्हें उन नदिया न बनाया है जो घाट में महा-बहा पडी दरारा में अपना गाद-भरा जल लिए घुसी बसी जाती है। इनमें प्रमुत्र हैं—महानदा मोगवरी कृष्णा और कावेरी के डेल्टे। इन डेल्टा-मैदानों में कुछ घाड़िया हैं अन्यथा यह समुद्र-नट बगान की खाड़ी से भामान्यन आनेवाले मानसून और अघडा के आघाता के सामन उभुक्त पडा है। समुद्र-नट छिछला है। व पन्दरगाहा और बड-उडे जलजानों की मुरमा के लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन समुद्र-नटवर्ती मैदान उपजाऊ है। वषा और नदिया दोना से इतना काफी जल प्राप्त हा जाता है कि यह क्षेत्र—विशेषकर उत्तर में उमोता का और आन्ध्र के उत्तरी त्रिणों का दनाका—शान की दृष्टि में बहुत मन्थन बन गया है। दक्षिण की ओर के प्रदेशों में मानसून बहुत दूर से पहुँचत है और वषा की मात्रा बहुत कम हो जाती है। महा निचाई के लिए तालाबों और सोनों का जल प्रयोग में लाया जाता है। महा की रेतौली मिट्टा और समुद्र-नट की नमकीन हवा में ताड पश्चिमा लरूर और केसुरिना के वस बहुत होत हैं।

जब कि उमोता भारत के उत्तरी की मुख्य हलचला से शान्ति-स्था तक अन्ध-धना रहा है, वाघ्र और तमिलनाड देश के इतिहास की तरागिदा में बरा जारदार हिस्सा बन रहे हैं। ये प्रदेश सातवाहनों चालुक्यों चोलों, चारतियों विजयनगर-साम्राज्य और बहमनी राज्यों की आरपाइया के केन्द्र रहे हैं। इस समुद्र-नट के दक्षिण भाग में व मडिया थी, जहा पूर्व और पश्चिम के बीच का विश्व-व्यापार हाता था और जहा एक दिना न दूनरी शिवा की यात्राओं पर जानबाले रोम, अरब, ईरान मलाया और चीन के व्यापारी जायम में मिलते थे।

पश्चिमा समुद्र-नट बहुत भररा है। इसकी राय-सुदा पवन-प्रेमों सहादित ने उत्तर नीरगिरि और उमनें मा आगे तक लगभग अविचल रूप में पना हुआ है। इमें पाच हजार कु तर ऊँची चोटिया हैं। नीलगिरि-पवन-श्रेणी में डोडाबटा की ऊँचाई ती आठ हजार सान ती फुट स भी अधिक है। पश्चिमी समुद्र-नट में कच्छ और काठियावाट गुजरात काकष बनाया, वेरन आदि कितने हा प्रदेश सम्मिलित हैं। कच्छ समुद्र से घिरा एक द्वीप है और काठियावाड एक प्रायद्वीप है जिने एक भरती पट्टी मुख्य भूमि में जोडती है। गुजरात मानज क पठार का ही एक विस्तार है, मानो निघु-नगा क मैदान

का अदस्ताए प्रायद्वीप तब बढ आई हो। काण एव तटवर्ती तल भूमि है जो तीस म पचास मील तर चौकी है और खानदेश से गोआ तर फली है। पहाडियो न यत्र-तत्र इमे पाटा है जोर पश्चिमी घाट की खडी चट्टान इस पर छाई हुई हैं। पश्चिमी घाट चपटा चोटियावाला पवता की एव अस्त-यस्त श्रेणी है जिसे गहरी पनाघाटिया विभक्त करती है; य पवत प्राकृतिक दुग है। मुगला के साथ अपन मध्य में मराठा ने पना उपयोग किया था।

काण और वरल के बीच बनारा का तटीय पट्टी है। घाट स समुद्र की ओर तल गहनवाली जल धाराआ न इमे नुरी तरह काट छाट डाला है। इन नदिया की घाटिया हा घती के लिए अदस्त प्रदान करती हैं अथवा प्रचुर वर्षा से पनपे हुए और मलरिया मे ओनप्रोन जगल इन पहाडिया पर छाए हुए हैं। लकिन इन जगला में सागवान और चटन की सवटा प्रचुरता ग पाई जाता ह।

वेरल पश्चिमी समुद्र-तट का सुदूरतम दक्षिणी भाग है। उत्तर में नीलगिरि और दक्षिण म आमनाइ तथा काडैमम पहाटिया ऐसे अवरोध ह जो वेरल को शेष देश म अलग करनी ह। इन्हें नीलगिरि और अनामनाई पवता के बीच स्थित पालघाट की रिक्त भूमि ही विच्छिन करती है। इन पहाडिया न निकन कर छोटी छोटी नदिया समुद्र की ओर बहती ह और अपन मुहाना पर छोटे छोटे डरटे बना कर मामुद्रिक नौबानयन के लिए माग प्रदान करती हैं। अथवा कच्छ और समुद्र-तट नारे तट पर फले हैं और जल माग ही सचार का एकमात्र साधन है।

पश्चिमी समुद्र-तट विशेषकर पश्चिमा घाट अगम के वाट भारत का मरमे तर प्रश है। इसके पूर विस्तार म अनगिनत छोटे और बडे बंदरगाह ह। ईरान का खाडा और लाल सागर की प्राचीन सम्भताआ के क्षेत्र पश्चिम में इमके सम्मुख ह और अधिक जाधुनिक समय के अफीगा के दक्षिणी छोर का चक्कर काट कर जावाला यूरोपीय जन माग भी इसी के समभ पडता है।

पूरी और पश्चिमा घाटा के बीच और मतपुत्रा भाइनेल तथा हजारीबाग की पवत श्रणिया के दक्षिण में भारतीय प्रायद्वीप का भगभशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन बट भूखण्ड है जिसे दक्कन कहा जाता है। य प्रायद्वीप आकार म त्रिकोणा है। इसका आधार वह चौग उतरी पठार है जिस एव खरी रेवा पश्चिम में मराठा बोलनेवाले भाषा मध्य में हिन्दा बोलनेवाला और पूर में वनुगु भाषिया के बाब काट देती है। तीचे पठार का मध्य भाग है। इसम बन्नड तेलुगु और तमिल भाषाआ के क्षेत्र सम्मिलित ह। दक्षिणी भाग के फिर ना हिम्म हो जात हैं जिनमें म पश्चिम की भाषा मनपालम है और पूर का तमिल।

मराठाष्ट्र प्रश म पवत के पठार, पश्चिमा घाट और काण समुद्र-तट के अश सम्मिलित ह। मिट्टी जनवायु और उपज का दृष्टि से इनमें प्रत्येक की निजी विशेषताएं ह। पठार की मिट्टी मुख्यत गरभनासी है। मागून पश्चिमा घाटा पर ही अपना अधि पाग भाग घानी तर डाला ह और दक्षिण के हिम्म में वर्ष भर में बाग से तीस इंच तक वर्षा हाता है। माग अनाद—बाजरा, कोने और मन्वा—यहा तम अधिार होना है तथा उरार-बाजरा ही पश्चिमा तथा मिनब्यापी मराठा विगाता का प्रमुख भाज है।

पठार का जाध अथवा जनगानासला भाग त्रिभुज भिन्न है। इसकी विशेषताएं हैं—पारिभूमि गोआ और गुनी घाटिया चट्टान और पायाण-गडा के समभ बमजोर

रेतीली मिट्टी और मामूली वर्षा। मगधवाण की तुलना में तेलंगाना बहुत थोड़ी हरीनिमावाला प्रदेश है। यहाँ पड़ बहुत थोड़े हैं, घास भी घटिया और बहुत कम है।

उत्तरी दक्कन के हिन्दा भाषा प्रदेश में प्राचीन दक्षिण-काशल अथवा गोडवाना—जसे उडोला की सीमा पर स्थित दुग्ध पहाड़िया और जगन्नी का प्रदेश है।

दक्कन की बीच की पट्टी में मैसूर का पठार, दक्षिणी आंध्र और उत्तरी तमिलनाडु हैं। मैसूर का पठार समुद्र की सतह से 1 500 से 4 000 फुट तक ऊँचा है, और तुंगभद्रा एवं कावेरी नदियाँ तथा उनकी अनेक सहायक नदियाँ के प्रमुख जल-स्रोत इसी में अवस्थित हैं। वर्षा मामूली है—वर्ष में 25 से 35 इंच तक और खेती तालाबों से बिचाई पर ही अधिकांशतः निर्भर करती है।

मैसूर से नीचे तिबोने प्रायद्वीप का शीप बहुत तजीस सभरा हो जाता है। केरल और तमिलनाडु के कच्छरी मिट्टी के मैदान इसकी दो भुजाएँ हैं और नीलगिरि आगमार्त काडोम तथा पाननी पहाड़िया की उच्च भूमियाँ उसके बीच में हैं। पहाड़िया पर वर्षा बड़े जोर की होती है। ये निसगतया ही उष्ण-वर्षा-शीत जगला से टकी हैं। नीलगिरि में यूकिनिप्टस के नाने वन सघनता में हान हैं और इही को दब कर इन पहाड़िया को यह नाम दिया गया है।

दक्कन के पठार तथा उत्तर की ओर पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रतटा की उपजाऊ निम्न भूमियों के बीच भारी विषमता है। प्रदेश की पहाण प्रकृति कमजोर मिट्टी वर्षा का तटों तक सीमित रहना कुछ भाग में वना की प्रचुरता तथा कुछ में दलस्पति की वमी से सब श्रूणा मन विनिष्टताएँ हैं। ये आगम और प्रचुरता के जीवन को अवसर नहीं देती। इसलिए भारत की सम्यताएँ दक्कन के चारों ओर की निम्न भूमियों निम्न गंगा के मैदानों, बंगाल की खाड़ी अथवा मम्भाल की खाड़ी में गिरनवाली नदियों के डेल्टा तथा समुद्र-तटवर्ती मानावार और कोरोमडल में पनपी हैं। मसृति के इन केंद्रों से घन कर ही लोग दक्कन की उच्च भूमियाँ में घुस आए हैं और उनके कुछ हिस्सा को अपनी विशिष्ट मम्भृनिया के क्षेत्र में खींच लाए हैं। उन्होंने मूल निवासियों को घने जंगल और टुंग पहाड़ा की ओर ढकेल दिया जहाँ वे आज भी रहते हैं।

भारत का भौगोलिक स्थिति में विद्यमान विषमता चौरानवाली है। जलवायु मिट्टी, वर्षा तापक्रम तथा स्थल और जल की विभिन्न विशेषताओंवाले बहुत-से प्रदेशों में देश बना है। देश की विशालता, आवागमन और संचार-साधना की पुरातनता, अपसाकृत कम सघन जन-संख्या—ये सब ऐसे तत्व थे जिन्होंने अतीत में प्रदेशों के पृथक्करण को बढ़ावा दिया। जब तक ऐसा अवस्थाएँ रही, तब तक सामाजिक समुदाय की चेतना का प्रयत्न होना बहुत कठिन था।

किन्तु इन सब विषमताओं के पीछे कुछ समताएँ भी हैं। ये उन पहाड़ों और समुद्रों की दल हैं जो देश को घेरे हुए हैं। सम्पूर्ण भारत को एक अर्धोष्ण-वर्षा-शीत मानसूनी जलवायु देने में—जिसमें जाण गर्मी और वर्षा की श्रूनुए व्रमण इस तरह आता है कि इनकी अवधि सुनिश्चित हो गई है और इनके बारे में पूर्वघोषणा की जा सकती है—हिमालय एक शक्तिशाली घटक है। समुद्र और उत्तर में पहाड़ों की एक अडवृत्तावार शक्ति एक ऐसा ढांचा घटा कर देती है, जिसके बीच जीवन विशेष बाहरी हस्तक्षेप के बिना ही आगे बढ़ना बना गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य और समाज में यद्यपि एक



मघनात्मक एकता उत्पन्न नहीं हुई, तथापि सस्कृति के क्षेत्र में सामान्य रीतिरिवाज और मनुवृत्तियाँ विकसित हुई और सामान्य विशेषताएँ पनपीं।

प्रकृति पर विनाश और अवेषणों की विजय के द्वारा भूगोल की चुनौतियों का सामना किया गया है। मनुष्य अब भौतिक अवरोधों पर, यहाँ तक कि आवाज के द्वारा पर भी फाँस पान में समय हो गया है। प्रकृति का पान मानवीय प्रयाजना के लिए प्राकृतिक शक्तियों को दशीभूत करने में महायक बना है। पहाड़ों, नदियों, जमला और जनघायुओं के द्वारा प्रस्तुत कठिनाइयों को समाप्त कर दिया गया है और भौगोलिक विविधताओं न मानव की ऐक्य भावना के सामन घटने देव दिए हैं।

लेकिन ये सब मरणात्मक बहुत आधुनिक हैं और उन्नीसवीं सदी तक पहुँच कर हा भारत का इनका नाम मिन सवा है। इससे पहन भौगोलिक विषमताएँ देववासिया पर और उनकी अवस्थाना पर हाबा थीं और उहाने साथ रहना आर एक हाना कठिन बना दिया था तथा केन्द्रोपसारी शक्तियाँ का सगभग अबाध रूप से जोर था।

आज विज्ञान न मानव की सेवा में एक विराट शक्ति नियुक्त कर वा है। लेकिन जटारहवीं सताब्दी के अन्त तक मानव को मात्र उतनी ही शक्ति उपलब्ध थी, जितना मानव अथवा पशु ने सम्भव था। कृषि और उद्योगों में मानव की उत्पादन सामर्थ्य उन्हीं पर निर्भर थी। प्रादेशिक विभागाँ के बीच सम्पर्क तथा केन्द्र-द्वारा प्रशासनिक नियन्त्रण सीमित था।

इसलिए पृथक्तावाद स्थानीयतावाद और प्रदेशवाद राष्ट्रवाद अथवा विश्ववाद न प्रयत्न थे। यद्यपि प्रकृति ने एक ऐसा भौतिक ढाँचा दे रखा था, जो एक विशिष्ट सस्कृति और एक समग्र सामाजिक समूह को सुविधा प्रदान कर सकता था और दरअसल उसकी आर सकेता भी करता था, तथापि विभेदक भौगोलिक शक्तियाँ पर काबू पाने के लिए आवश्यक तबनीकी पान के अभाव ने सामाजिक और राजनीतिक एकता के विकास का म्यमित कर रखा था।

जा विनाश अवराध भारत को उससे पढासिया से अलग करत थे। एमे शक्ति शान्ती सत्व थ जो एक विशिष्ट व्यक्तित्व के विकास में सहायक थे और अन्य देशों की सस्कृतियाँ से भारतीय सस्कृति को अलग करत थे। लेकिन प्रादेशिक विषमताओं न अशिम भारतीय सस्कृतिक एकता और सामाजिक समूह के लिए आवश्यक समयक प्रभियाँ का रोव दिया।

### 3 निवासी

जिनी भी जाति के इतिहास में भौगोलिक तत्व का बड़ा महत्व हाता है पर मानवीय तत्व का उससे भी अधिक महत्व है। मनाशा, विचार भाव चरित्र और और-तरीके मस्याआ का स्वरूप दते हैं और विभिन्न वाला म जातीय प्रगति का दिशा प्रदा करतें हैं। भारतीयों का आजा की भाषाआ उनसे धमा विशवागा और पूजा विधियाँ उनके सामाजिक संगठन और सोन्पर्यामिब्यक्ति इन सब पर उनकी परम्पराओं की छाव अहित है। उदाहरण के लिए सातवीं सदी ईसा-पूर्व में उपनिषदा के वाक्या से उबर बीसवीं सताब्दी में राष्ट्रीयता की विरासतों तक मनाशाआ और नैतिक धाराआ की एक स्रष्टृ शृंखला चली आ रही है। लेकिन इस एकता और स्वरूपता के ऊपर विभिन्नता की पत्र है, क्योंकि भारत भाषाओं,

जातियो, घमों और प्रथाओं के बहुगुणन का आगार है। विपमता उतनी ही सुस्पष्ट और आकर्षक है, जितनी सस्कृतिके कुछ गुणों में विद्यमान समानता। इस विविधता का एक श्रोत है, भारतीय आवादी का स्वरूप।

भारत के निवासियों में कई जातियों का मिश्रण है। इन जातियों में से कुछ इस देश में इतने लम्बे समय से रह रही हैं कि इन्हें स्थानीय समझा जा सकता है। अन्य जातियों ऐतिहासिक काल में बाहर से यहाँ आईं। ये आपस में घुल मिल गईं और इन्होंने कितनी ही विभिन्न किस्मों को जन्म दे दिया। जातियों के भारत में आगमन और उनके यूरोप में आब्रजनों के बीच एक शिक्षाप्रद अन्तर है। दोनों में समानता मात्र आय भाषा भाषी जातियों के आवासमन की है। यूरोप में ये दशान्तरण तीन घाराओं में हुए। प्रारम्भिक आब्रजक बल्कान और इटली तथा पश्चिमी, मध्यवर्ती एवं पूर्वी प्रदेशों में, वहाँ पहले से रहनेवाले लोगों को हटा कर अपना उन्हें अपने में समाहित कर बस गए। लेकिन पाचवीं शताब्दी में रोम-साम्राज्य की सीमाओं के पार से आब्रजकों की एक दूसरी लहर दबाव डालने लगी और विसी-गाव टयुटन, वडान, फ्रक तथा अन्य लड़ाकू जातियों ने रोम की किलाबन्द सीमाओं से टकराना आरम्भ कर दिया। अन्ततः किलाबन्दी टूट गई और बर्बरों की बाबू महान साम्राज्य पर छा गई।

यूरोप के विभिन्न प्रदेशों में इन जातियों का बग जाने से उन प्रदेशों में जहाँ पूर्ववर्ती आर्य-जातियों ने बहुत जमाया था, नए समाजों का जन्म हुआ। इन जातियों ने कबायली सरदारवाले राज्य स्थापित किए और अपने उन कुलीन सामियों की सहायता से, जा व्यक्तिगत बकादागी की भावना से सम्पन्न थे उस मूखे पर शासन किया। उनके सगठन का स्वरूप ही ऐसा था कि वे युद्ध विजय और विस्तार की ओर प्रवृत्त हुए।

इस देशान्तरण ने हर प्रदेश को प्रभावित किया। इटली में एंगल और सैक्सन फ्रांस में फ्रैंक, स्पेन में विसी-गाव, उत्तरी इटली में लम्बाड, नीदरलैंड में बेलों तथा बल्कान देशों में आस्ट्रो-गाव आकर बसे। इनके बस जाने से एक नया यूरोप सामने आया—बहु यूरोप, जिसमें पवित्र रोमन शान्ति का स्थान निरन्तर चलनेवाले कबायली युद्धों ने ले लिया।

लेकिन छठी शताब्दी से शान्ति का क्षेत्र विकसित होने लगा। कबीले बस गए और मगठित हुए। ईसाई धर्म और नैटिन सस्कृति पली। आठवीं शताब्दी में चार्ल्स महान ने एक साम्राज्य की स्थापना की, जिसने रोमन साम्राज्य की स्मृतियों को हरा कर दिया। पूरब में कुस्तुन्तुनिया उम अय साम्राज्य की राजधानी बना जिमने एशिया माइनर के एक बहुत बड़े भाग को अपने अधिराजत्व में ले लिया।

तब, इस दूसरे यूरोप को एक विश्वसारभूत शान्ति का सामना करना पड़ा। जगली, भयानक और असभ्य उत्तरी जातियाँ स्वीडन वियन देशों से लगे-लगे मगियारों के आनाबदोस पूरब से और सम्म मुसलमान उत्तरी अफ्रीका से आकर प्रकट हुए।

उत्तरी जातियाँ—नार्डनियन स्वीड और डेन लागा ने ब्रिटेन और फ्रक साम्राज्यों पर विजय-अभिमान किए। ये लोग साम्यी और निपुण मल्लाह थे। जातियों के मुहानों में प्रवेश करके जन मार्गों पर नरते हुए वे राज्यों के केन्द्र तक घुस आए। मगियारों ने—जिनके तेज घोड़ा और जूचक धनुर्विद्या न जा भी सामने आया—संघर्ष कर लिया—पारसेपियन पण्डा का पाग करके मध्य-जर्मनी और उत्तरी इटली का तहान-तहान कर डाला। अन्ततः ये जातियाँ और एशिया मिनोर का बीच एक बाधा बन कर टपक टपक कर बग गए।

मुसलमान, जा पूर उत्तरी अफ्रीका को खलीफा के आधिपत्य में ले आए थे आठवीं शताब्दी के आरम्भ में स्पेन को पार करके प्रायद्वीप को रौंते हुए दक्षिणी फ्रांस तक घुस आए। इन्होंने बाइजण्टाइन साम्राज्य के दशा पर भी दबाव डाला।

नौवीं और दसवीं शताब्दियों का दून घुसपैठा आर दशान्तरणा ने यूरॉप पर बहुत गहरा असर डाला। ब्रिटेन में एंग्लो-नॉर्मन और यूरॉप में वार्नो-विजियन सरकारों के नष्ट हो जाने से जीवा और सम्पत्ति की सुरक्षा की समस्याएँ बहुत उभर आईं। सैनिक भूमि-पट्टा तथा सामन्ती सम्बन्धों का बन्धन्यता से परम्पर-बन्धे सरक्षक और सरणिता, लार्डों और कामगारों का एक द्विध्रुवी समाज दूसरे यूरॉप के सडहरे पर उठ खड़ा हुआ। स्यारहवीं शताब्दी तक तीसरा यूरॉप अस्तित्व में आया। इसका निर्गन्त अविच्छिन्न विरासत तब तक हाता रहा, जब तब राष्ट्र राज्या का आधुनिक यूरॉप पल्लवित नहीं हो गया।

भारत का इतिहास इससे भिन्न रहा है। आर्यों के भारत-आगमन से पहले यह देश बहुत छिन्ना कर बसा हुआ था और उत्तरी मदाना तथा पठारों के विशाल क्षेत्र पने जगला से ढके थे। इन प्रदेशों के निवासी विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और उनका शारीरिक विशेषताएँ भी विभिन्न थीं। उनकी भाषाएँ मगल, आस्ट्रो-साम्य और द्रविड-परिवारों से सम्बन्ध रखती थीं।

आर्यों के देशान्तरण ईसा-पूर्व की दूसरी सहस्राब्दी में घटित हुए। आर्य वहाँ से आए, वह पूरी तरह निश्चित नहीं है। डेन्यूब के निचले भाग से लेकर आनसत के ऊपरी हिस्सा तक के विशाल प्रदेशों के विभिन्न अंश उनका मूल निवास-स्थान होने का दावा करते हैं। अपनी यात्रा में उन्होंने बिन मार्गों का अनुसरण किया, यह भी निश्चित रूप से बताना सम्भव नहीं है।

जो नदियाँ पश्चिम से बह कर सिन्धु में गिरती हैं, उनकी घाटियाँ मगल हाकर व भारत में प्रविष्ट हुए। बहुत लम्बे समय तक वे सरस्वती के तटों पर टिके रहे। उनके अति साहित्य में इस नदी का एक विशेष पावनता प्राप्त है। वे ज्या-ज्या उत्तर-पश्चिमी ओर परिपक्वी प्रवेश से आगे बढ़े, उनके बचीला और दला न सिन्धु-नगों के मदाना में छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिए। लेकिन जैसे-जैसे वे अपने मूल स्थान से आगे बढ़ते गए, वग-बसे उनकी सख्या कम जाती गई और सामूहिक देशान्तरण छोटे-छोटे दला के तत्व में किए जानेवाले विजय-अभियानों में बदल गया। अन्ततः आर्य-संस्था का प्रबन्धना पूरे भारत पर स्थापित हो गई।

हर प्रदेश में आर्य और मूल-संस्थानों के सम्मिश्रण ने एक विशेष सिन्धु का जन-स्था। सिन्धु-नगों के मदानों में पंजाब और राजस्थान पंजाबी और राजस्थानी बालिया जनजातों तथा समान शारीरिक विशेषतावाले लोगों के निवास-स्थान बन गए। मध्य भारत और बिहार की उच्च जातियों का शारीरिक बिन्यास एकसमान है परन्तु सिन्धु-जनित जनजातें हैं। इस प्रदेश में बोलनेवाली भाषाएँ हिन्दी (पश्चिमी और पूर्वी) का ही विभिन्न रूप हैं।

बंगाल में सामा की शारीरिक सिन्धु म पता चलता है कि उनमें मगल जाति का मयन हुआ है किन्तु उनकी भाषा—बंगला—आर्य-परिवार का है।

दक्षिण उच्च भूमि गुजरात मालवा बुदकण्ड और बघेलखण्ड में मगल-जनित सिन्धु-जनित जनजातें साम्य रखें हैं। गुजरात की मगल राजस्थानी से मिलती हैं, किन्तु

मध्यवर्ती भाग में हिन्दा की बागिया मालवी, सुन्दरी जोर बघेनी वाला भाता ह। छाटा नागपुर एक उच्च-श्रेणी पहाड़ी प्रदेश है, जिसमें गहरी घाटिया बूतायन स हैं। यह जगला से ढका है आर अनाय कबीलों के लाग बहून बनी सभ्या म बहा रहत ह। इनका अपना कलायना माउन और भाषाए हैं। इनमें मद्यान, मुडा, उगव, हा और गड प्रमुख हैं। इनको कुछ भाषाए द्रविड हैं जोर कुछ आस्ट्रेलायड अथवा मूडा बालिया ह। इन कायनी भाषा का गार्गारिक विशेषताए है, मध्याकारी मिर और चौरी नाम।

दक्कन का पूर्वी भाग तीन प्रदेशों में बटा है—उर्गिमा जात्र और तमिनाड। उर्गिमा के लोग की भाषा बगला में मिननी-बुलनी है। आत्र के लोग तनुगु बानत हैं, जा द्रविड भाषा ह। तमिन लोग, जा प्रायद्वीप के दक्षिण भागों में रहत ह दो विभिन्न जिन्मा में बटे हैं। मिर का आकार और विमान तथा चेहरे के मका इन विभाजन के आधार हैं। लेकिन दाना हा तमिन भाषा बानत हैं।

दक्कन के पश्चिमी भाग में महाराष्ट्र, कनाटक (कुर्ग, मैसूर, बनारा) और मानावार का समूह-उत्त सम्मिलित हैं। महाराष्ट्रिया की भाषा आय है, लेकिन अपन शरार विवास में से मुजाव और सान्भ्यात में भिन्न है।

कन्नड भाषा जाग महाराष्ट्रिया में मिनत-बानत है। उनमें भी उर्ध्व और निम्न जानिया के बीच अन्तर है। कन्नड भाषा द्रविड है पर जाय शब्द उनमें बड़ी मख्या में मिलत हैं।

मानावार के निवासा लम्बे मिरवान हैं और अपना शारारिक विशेषताओं में तमिन लोग के अनुसूच ह। उच्च जानिया नम्बूद्री ब्राह्मण और नीच निम्न जानियों और काला का अपना अग्रिम लम्बी तथा गारा हैं।

तनुगु, तमिन कन्न और मद्यान द्रविड-परिवार की भाषाओं का शाखाए हैं। इनके बानतवान आय भाषाए बानतवाना के बाद दूसरा स्थान रखत हैं।

भारत में जावादों का वितरण दो बानों स्पष्ट करता है। प्रथम यह कि भौगोलिक विभाजन नवशाय जिन्मा के समानान्तर दृष्ट ह। लाना है, पहले जोर बाद के निवासियों के मिश्रण न उन समय का कम-अग्रिम बिना अवस्थाओं में विभिन्न जिन्मा का उम दिया जिनमें प्रत्येक न अपना विभिन्न भाषा वितरित करती। हर प्रदेश में जन्मा विशेष भाषा के साथ-साथ एक-एक प्रकार के सामाजिक की निरन्तर बनाए रखा है।

उत्तरार्धवीं शताब्दी में भाषा अथवा उमरा में इन भाषाओं का विभाजन की चना दिग्दर्शक शक्ति है। उनमें म्यात्र भाषाओं का उल्लेख किया है। इनमें तीन द्रविड हैं—मु-मम्बूद्री (बनारा) निवगा (तनुगु) और मारवा (तमिन), मान उत्तर की आय भाषाए—मिघा बरमौरा, गुजराती गौरा (पश्चिमी बगना), बाना (पूर्वी बाना), अथवा (पूर्वी हिन्दा), देहवा (पश्चिमी हिन्दा) और कुजरा (पश्चिमी नही जा मनी)।

अनुद-पत्र न दग भारतिय भाषाओं का जिन जिन्मा ह बरमौरा, मिन्गी मुल्तानी (पश्चिमी पगरी), देहवा (हिन्दा), बगना भागवादी (सान्भ्यानी), गुजराती, मराठा तनुगु और कन्नड।

मानवा कलायना में जकार न अपन साम्राज्य की एक आधार पर जा उन प्राचिन आधार प्रतीत हुआ होगा, प्रान्तों में बाना था। जिन्मा के मदान का मुल्तान और टट्टा में बाना जा था। लाहौर राज्यात के साथ प्रत्येक एक जन्मा प्रान्त का। सान्भ्यात

का केन्द्र अजमेर था। दिल्ली, आगरा अवध और इलाहाबाद में मध्य-देश आ जाता था। मुद्दर पूव का मदान बिहार-सहित बंगाल प्रांत के रूप में संगठित था। केन्द्रीय उच्च भूमि का मालवा नामक भाग ही साम्राज्य में सम्मिलित था क्योंकि बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड स्वतन्त्र थे। पश्चिमा दक्कन का पठार और उसके समुद्र-तटीय प्रदेश अहमदाबाद (गुजरात) खानदेश और बरार के प्रान्ता में विभाजित थे।

\* औरंगजेब न प्रान्ता का पुनर्विभाजन किया और साम्राज्य को इक्कीस प्रशासनिक इलाक़ाओं में बांटा। ये भारत के प्राकृतिक और भाषायी विभाजन से बहुत अधिक मिलते जुलते थे। मुल्तान और लाहौर के प्रान्त पंजाब के दो भाग थे, जो पंजाबी की दो शाखाएँ बोलते थे। दूसरे भाषायी प्रान्त थे—सिंधी भाषी ठट्टा राजस्थानी बोलनवाला अजमेर हिन्दी भाषी दिल्ली आगरा, इलाहाबाद और अवध, बिहारी बंगला और उडिया बोलने वाले बिहार बंगाल और उड़ीसा, मालवी बोलनवाले मानवा और केन्द्रीय उच्च भूमि, गुजराती भाषी गुजरात तथा मराठी भाषी खानदेश बरार बीदर और बीजापुर।

इस प्रकार प्रादेशिक जन-वर्गों और उनकी भाषाओं की विशिष्ट प्रकृति को पूरे इतिहास के बीच मान्यता दी जाती रही है।

इन विभाजनों के पीछे एकता की एक अचूक स्वीकृति निश्चय ही रहती है। यह सच है कि विभिन्न प्रदेशों में निवासियों में विभिन्न तत्वों का मिश्रण हुआ। लेकिन विभिन्न भाषाओं में एक तत्व समय-समय रूप से रहा और वह है आयतत्व। आय-परिवार, बग और बबूल विभिन्न मध्याह्न म देश के विभिन्न प्रदेशों में जाकर बस गए थे और उन्होंने प्रादेशिक अविद्या पर अपनी छाप अंकित कर दी थी।

\* द्रविड तथा छोटी मोटी भाषाओं—उदाहरणार्थ मुन्ना आदि—के अतिरिक्त सभी भाषाओं का आधार आयों की भाषा बनी। लेकिन आय भाषा में भी भ्रान्त-तत्व रिस गए। सबसे बड़ी बात यह कि विभिन्न भाषाओं के साहित्यों का विषय बड़ी दूर तक समान है क्योंकि उन सभी में मनु-संस्कृत-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की है। धार्मिक विचारों और आचारा तथा सभी प्रदेशों की सामाजिक प्रणालियों पर आय प्रभाव की गहरी निबिदाद रूप से अंकित है।

आयों के भारत में एक बार बस जान और अपना भाषा धर्म तथा सामाजिक प्रणालियों को देश भर में फैला देना के बाद हर प्रदेश में यहाँ के मिश्रित जनवर्ग की धार किस्म से प्रेरित होकर विभिन्न संस्कृतियों बननी। इन विभिन्नताओं के रहते हुए भी इन विविधताओं में कितनी ही बातें समान थीं।

यूरोप में जो कुछ हुआ उमक विपरीत बर्तना का दृष्टा बड़े-समान पर दशान्तरण इतने बड़े यहाँ कभी नहीं हुआ जिससे प्रादेशिक अस्तित्व अथवा लोग के अतिरिक्त और उतनी संस्कृतियाँ अस्त-व्यस्त होनी। ऐसा नहीं है कि बाल के युगों में विदेशी भाषा में नहीं आएँ लेकिन इन बाल में आनवाला की सभ्यता इतनी बनी गयी रही कि वह प्रादेशिक भाषाओं के विकास में नातिनारी परिवर्तन ला देता।

आयों के आने के बाद तक (साथियों) यूना जोर इन भाषा में आए। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि गण और मूडर जाति-युगों के मूल में उत्तर-पश्चिमी प्रायद्वीप में गणना में मिश्रण हुआ है तथा कथकल है। बड़े-समान का यह भी मत है कि गणपुत्रों का मूल गणना जाति में घोडा जा सकता है। छया गणना में गणना यथा भारत में गण-जाति का भी विकास का पूव-जन-वर्गों का भाषा का जन-जाति का

को नहीं है, और छठी शताब्दी में उनका अचानक शक्तिशाली बन जाना उन धारणा की पुष्टि करता है।

लेकिन इन जातियाँ के बदेशिक उदय के निदान में कितनी भी मचाई क्या न हो, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इनकी सख्या किसी भी प्रदेश में मूल निवासियों के किसी भी बड़ स्थानान्तरण की ओर अथवा सांस्कृतिक प्रणालियों या सामाजिक-आर्थिक रूपरेखाओं में काइ उल्लंघनाय परिवर्तन का दन की आर सकेन नडा करती।

उत्तमवा शताब्दी के अंत के अंक (1901 की भारतीय जनगणना का रिपोर्ट के अनुसार) हम उनकी संख्या का विवरण देते हैं। राजपूताने में राजपूत पूरी आबादी का 6.4 प्रतिशत था जाट 8.7 प्रतिशत और गूर 4.8 प्रतिशत पंजाब में राजपूत 7.4 प्रतिशत थे जाट 19.5 प्रतिशत (इस सट्टा में मुसलमान हिन्दू निख जाट शामिल हैं) और गूर 1.5 प्रतिशत। उत्तर प्रदेश में, जाड़ा जातियाँ का दूसरा महत्वपूर्ण गढ़ है विवरण इस प्रकार था—राजपूत 8.3 प्रतिशत जाट 1.9 प्रतिशत और गूर 0.69 प्रतिशत।

इसी रिपोर्ट के अनुसार इन प्रांतों में राजपूत जाटा और गजरा का अधिकतम मस्या इस प्रकार थी—राजपूताना में पूरी 97,00,000 का आबादी में 6,20,000 राजपूत, 8,50,000 जाट और 4,60,000 गूर पंजाब में पूरी 2,48,00,000 की आबादी में 19,00,000 राजपूत 50,00,000 जाट और 7,40,000 गूर थे, उत्तर-प्रदेश के 4,66,70,000 निवासियों में 34,00,000 राजपूत और 7,80,000 गूर थे।

इन तीन वर्गों के जातीय स्वल्प के बारे में विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं कि ये एक ही आय शरार-वर्ग से सम्बंध रखते हैं। यद्यपि पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम भारत के कितने ही स्थानों को गूर ने अपने नाम दिए हैं तथापि उनका सबसे पहला राज्य खोशपुर में स्थापित हुआ था। यहीं से वे उत्तर प्रदेश में फर्रु और उन्हेनि गूर प्रविहार-मायाग्य स्थापित किया। यह सम्बन्धना श्रुतिहार राजपूतों के साथ गूरों की एकरूपता की ओर संकेत करती है। गूरों के कुछ वर्गों नाम बहा हैं जो राजपूतों के हैं और उनके शारीरिक नाक-नकरा भी एकरूपता हैं।

जहां तक जाटों का सम्बंध है, वे राजपूतों के छठीस प्राचीन वर्गों में सम्मिलित हैं। जाटों का अपना दावा यह है कि वे मधु-वर्ग (एक राजपूत कबीले) से सम्बंधित हैं। इवटसन कहता है उनके लगभग एकरूपता शरीर वियास और नाक-नकरा तथा उनके बीच हमेशा से विद्यमान गहरे सम्बंध—इन दोनों जातों को देखने हुए कम-से-कम इतना अत्यधिक सम्बंध है कि वे एक ही वर्ग से सम्बंध रखत हैं।<sup>1</sup>

ऐसा प्रतीत होता है कि मूल में तीनों वर्ग एक ही जाति में सम्बंध रखते थे। राजपूतों के जाटों के सम्बंधित जान और जाटों के राजपूतों के स्तर तक उठ जाने के विवरण उनके स्वरूप-सम्बंध का सूचित करता है। यह सुविदिन है कि जाति प्रथा अतीत में उतनी गहन नहीं थी, जितनी आज है और इनकी सम्भावना है कि इन तीनों जन वर्गों की मस्याएँ अन्य वर्गों के इनमें घुल मिट जान में इनका बड़ गई हों।

1 डी० इवटसन, 'पंजाब वास्टस', लाहौर, 1916 (भा 3, 'द जाट, राजपूत ऐम्ड एलाइड वास्टस'), पृष्ठ 100

इमनिा य प्रकट होता है कि राजपूत गूर और जाट एक ही जाति के हैं और उनमें विद्यमान अन्तर्-सामाजिक अधिक और नवशोय कम है। उनकी सभ्यता और पूरा आवागमन उनका प्रतिभूत इस सम्भावना की आर सवत करता है कि उन्होंने छोटे छोटे दना में भारत में प्रवेश किया और इसालिए अपना विशिष्ट शरीर निन्यास (यदि था तो) अपने वशजो का द मवन में वे विपन रह।

किन्तु इस धारणा के विरोध में कि व उन जाग्रवा न सम्बन्ध रखते थे जो मीथियना के साथ भारत में घुम आए थे (कुषाणा न पहना और दूमरी मनान्दिया में भारत में एक साम्राज्य निर्मित किया था) जयवा व उन दूणा में स थे, जिहाने पापवा गताला म भारत पर आक्रमण किया था, मवल तक उपन ग्रह।

जहा तब कुषाणा का सम्बन्ध है सिधु के उम पार काबुन की घाटी में और दान्य आक्मियाना में उनका घर था। उनके राजाजा न वशमीर और उत्तर पश्चिम भारत पर अपना राय म्यापित किया था। लकिन भारत के किमा भी प्रदेश में उनके बड़ी सभ्यता म कम जाने का उल्लेख इतिहास म नहीं मिलता। वास्तव में, माथियना का प्रधा दन ता पश्चिम की ओर ईरान और उममे भी परे, चला गया था। केवन एक दल (कुषाण) अफगानिस्तान में रह गया था, जहा उसके मरदार गुप्त गाजा-द्वारा उनके भारत से निराले जान के बाद भी शासन करते रहे।

दूणों अथवा श्वेत एथेलाइटों का भारत पर बड़ा अल्पकालीन आधिपत्य रहा। उनके दो राजाजा, तोरमान और मिहिरगुल, ने भारत पर आक्रमण किए पर अन्तत मालवा के राजा यशोधमन और गुप्त वश के बालादित्य न उन्हें बाहर धडेद दिया। जब आक्मन मनी-तट पर पारसिया और तुकों ने उन्हें बरारी मात दी तब उनकी सक्ति पूरी तरह नष्ट हो गई। यह सदिग्ध है कि यदि उनकी जाति के किसी बडे दल ने पजाब मथवा राजस्थान के इलाका पर अधिकार कर लिया होता तो उन्हें इतनी तेजी से निकाल बाहर कर सक्ना सम्भव होता।

पजाब और राजस्थान के प्रदेशों में बसनेवाले लोगों की सघटना इस धारणा की पुष्टि नहीं करती कि कोई विदेशी नवशोय दल यहा आकर बस गया था। पजाब राजस्थान और पश्चिमी उत्तरप्रदेश का उच्च जातिया की शारीरिक विम्भ इतनी एव ती है कि बड पमान पर मिलावट की सम्भावना समाप्त हो जाती है। गुर्गों का कहना है कि राजपूता का श्वेत दूणा स सम्यग्धित होन का अनुमान सही नहीं माना जा सकता। सपति ये सन्धी छोपडीवाले हैं, जब कि दूण लु-क्याबनापी जातिया।<sup>1</sup>

दूणा व निप्लासन व 600 वष बाद तरु कौ अवधि में कोई सम्मार घुस-पैठ टा हूद। नय ग्यारहवीं शतादी में महमूद गजनवी के नेतत्व में अफगाना और तुकों न भारत में प्रवेश किया। इस हलचल के परिणामस्वरूप भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई। बारहवीं शतादी व अन्त में अठारहवां शतादी व अन्त तक मुगलमान गघ्राण भारत व अधिराश भाग पर राज करत रहे।

दूणाम के प्रभाव ने भारतीयों व सासृतिा जीवन में परिवर्तन उपस्थित किए। धम विचार भाषा साहित्य कला किलप, चित्रकला और संगीत का इसन प्रभावित

1 जी० एम० गुर्गों, 'वास्ट ऐण्ड कनास इन इण्डिया' (नया संस्करण, 1937), पृष्ठ

किया। भारत की मस्कृति पर इसका प्रभाव गहरा और व्यापक मिद्ध हुआ। नेकिन जहा तब सामाजिक आर्थिक ढांचे का सम्बन्ध है, उनमें बहुत थोडा परिवर्तन हुआ। कबीला और जातिया की हिन्दू प्रणाली तथा परिवार और जाति के मूल सम्बन्धा को निश्चिन्त करनेवाला हिन्दू-कानन बहुत थोडा बदना। इसके विपरीत, स्वयं मुसलमान हिन्दुत्व म प्रभावित हुए। जानिया वा विभाजन विवाह क रीति रिवाज और उत्तराधिकार के नियम, जो हिन्दुआ में प्रचलित थे, इस्लाम ग्रहण कर लेने के बाद भी चालू रहे।

इन छ मी वर्षों में भारत प्रवेश करनेवान मुसलमाना की मख्या बडी नही थी। विजेताआ की सेनाआ और उनके शिविर के साथ चलनवाले लोगो को छोड कर बहुत थोडे-स विद्वान कवि व्यापारी, साहसिक तथा कुछ दण्ड प्राप्त अफसर और सरदार भारत की आर मुठ आए थे। भारत आनेवान मध्य और पश्चिमी एशिया क मुसलमान नवशाय दष्टि से उत्तर-पश्चिमी भारत के निवासिया म गायद ही भिन्न थे। उनकी सख्या इतनी नही थी कि वे देग क जातीय आर्थिक और सामाजिक जीवन में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन ला पाते।

इस प्रकार, ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी में आर्यों के दक्ष-परिवर्तन के समय से अठारहवीं शताब्दी तक समाज की नवशाय नींव में कोई प्रचण्ड अथवा क्रान्तिकारी सगोधन नहो हुआ। सास्कृतिक परम्परा की धारा में बाहर की कितनी ही उपघाराण आकर मिली, लेकिन यह अपनी मूल प्रकृति को धोए बिना लगातार बहती रहा।

पर इसका यह अर्थ नही कि समय निश्चल रहा। परिवर्तन अनिवाय था। हा, भारत में परिवर्तन धीमे और सीमित रूप में अवश्य हुआ। गहरे जल में उसने कठिनाई से ही हमचल पदा की। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इतिहास के सारे उलट-फेरों के बीच जीवन की सामाजिक-आर्थिक नींव दृढता से स्थिर रही।

भारतीय सस्कृति की निरन्तरता के प्रमाण बहुत-सारे हैं। जैसा कि बाबर ने प्रमाणित किया है, मध्य-युगों में जीवन की एक 'हिन्दुस्तानी प्रणाली' पूरे भारत में विद्यमान थी। भौगोलिक प्रदेशों में इस हिन्दुस्तानी प्रणाली की अगमृत किस्में पनप रही थीं। नेकिन वे सस्कृति की प्रमुख धारा की ही विविधताए थी, अर्थात् हिन्दुस्तानी प्रणाली की ही शाखाए थीं।

भारत में यदि क्या थी, ता सामाजिक और राजनीतिक एकता की चेतना की। जिने अवधियों में पूरे देश पर एक राजनीतिक प्रणाली का शासन रहा, उस समय भी सामाजिक समुदाय के भाव और एक सामाय सत्ता के प्रति आगाकारिता की यहा कमी रही। न ता सास्कृतिक एकरूपता और न ही राजनीतिक प्रभुसत्ता भारत को दला, समाजा और जातियों में विभाजित करनेवाले अवरोधा को तोडने में सफल हो सकी। जो दा मस्याए एवीकरण का अटूट विरोध करती रहीं, वे थीं जाति और ग्राम।

#### 4 जाति

जाति और ग्राम की प्रमुख विशेषताए थी सामाजिक अचलता, छण्डीकरण और आत्मनिभरता। इनके माध्यम से पृथक्-तावाद न इननी गहरी जडें जमा ली कि राजनीतिक मिश्रत्व, राजसगा के परिवर्तन, विजेताओं के आगमन और प्राकृतिक विपत्तिया भी इस प्रणाली पर बाई छाप डालने में असमथ रही।



जाति एक अत्यन्त सश्लिष्ट और अपरिवर्तनीय सामाजिक परिस्थिति है। यद्यपि इस पर बहुत-कुछ लिखा जा चुका है तथापि इसके कितने ही पक्ष अभी अज्ञात हैं। इन विशिष्टताओं का अतिदृढ़ विवेचन कठिन है। इस बारे में जा-बुझ भी कहा जाए, उसे चुनौती दी जा सकती है, क्योंकि वह त्रासद अन्तर्विरोधों से भरी है। पर यह परिस्थिति जो सभ्यताओं के इतिहास में तगभंग अंतिम है, अपना अस्तित्व रखती है, और सभी मामलों पर इसके गहरे प्रभाव का गमने बिना तथा इसकी विशिष्ट प्रकृति और पकड़ा देनेवाली शाखा प्रशाखाओं का ज्ञान प्राप्त किए बिना भारत के अतीत को समझना और उसके भविष्य की कल्पना करना असम्भव है।

जाति के बारे में एक अजीब बात यह है कि इसका अस्तित्व द्वैतात्मक है। एक ओर तो जाति प्रथा का सद्धान्तिक स्वरूप है जिसमें हिन्दुओं के धार्मिक विधि-साहित्य अर्थात् स्मृतियों का प्रशास्त्रों एवं उनका टीका टिप्पणियाँ में विषयगत किया गया है। दूसरी ओर वर्णों और उपवर्णों का वास्तविक जगल है जिसका तथ्यात्मक विवरण साहित्यिक और अन्य विभिन्न सूत्रों से इकट्ठा किया जा सकता है। लेकिन बड़ आश्चर्य की बात यह है कि इस उल्लेखी हुई और पंचदार गुंथी का पूरा स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी में जनगणना का कार्य आरम्भ होने के बाद ही प्रकट हुआ।

जाति एक प्राचीन संस्था है क्योंकि इसके लगभग सभी अवयव वेदों में मिलते हैं। जाति कबीला वग, धर्म विश्वास और आचार—इन तत्वों ने मिल कर इसका निर्माण किया है। ऋग्वेद में वर्णित आर्यों के समाज में जातीय चेतना गहरे रंग और बढ़िया ऊंची नायबाले आर्यों तथा काल रंग और दबी हुई नायबाले अनायों, दासों अथवा दस्युओं के बीच दीख पड़ती है। वेदों में कितने ही आय और कुछ अनाय कबीला का उल्लेख है जो बाद के इतिहास में परस्पर मिल कर जातियाँ बन गए। ब्रह्म यानी पुरोहिती का काम श्रेष्ठ अथवा सैनिक शक्ति, विश्व अर्थात् उत्पादक और आर्थिक काम करनेवाले—इस त्रिविध विभाजन को मान्यता दी गई है। यह विभाजन ईरान के आर्यों में किए गए ऐसे ही विभाजन अथवा स्वेस्तर, वस्त्रीय पशुयन्त (पुरोहित, सैनिक और किसान) से मिलता जुलता है। चौथा वर्ण, अर्थात् शूद्र, ईरान के हुइती हैं। पहले तीनों में आचार का अन्तर था। क्षत्रिय राजकीय मजमान था, जो धर्म क्रियाओं के माध्यम से दिव्य तत्व से एक रूपता की आकांक्षा रखता था। ब्राह्मण पुरोहित था, जो धर्म क्रियाओं की पद्धति और उससे निर्णय निर्वाह में निपुण था। वश्य राजा का अनुचर था जो राजकीय उत्सवों में भाग लेता था और भूमि की उपज एवं पशु देवर वग को पुष्ट करता था।

इन आरम्भिक युगों में ये विभाजन रुढ़ होकर जातियाँ नहीं बन गए थे। इन चार वर्णों के अतिरिक्त ऋग्वेद में जातियाँ और काम धर्मों से सम्बन्धित कितने ही वर्णों का वर्णन है—जस ताई, बड़ू वग सुहार और चमवार। इष्ट—आस्था और आचार की भिन्नताओं पर आधारित विभेदों का भी वर्णन है। श्राय बहिस्मृत (होता) है दास अथवा (विधिभूय) अथवा (आचारभूय) और मध्यवाच (दुष्ट वाणावाला) है।

जैसे-जैसे समय बीता विभाजन रुढ़ होने लगे। आरम्भ के युगों में वर्णानुक्रम के सिद्धान्त का बहुत बड़ा महत्व था। ब्राह्मण क्षत्रिय हो सकते थे और क्षत्रिय ब्राह्मण। एक क्षत्रिय राजा के बेटे दस्यु ने पुरोहित का काम अपना लिया था। ऐसे परिवर्तनों के कारण ही उपाहरण बाद के साहित्य में उपाहरण है। ब्राह्मणों के शासन और योद्धा

हमारे कर्मों का दृष्टान्त है। ज्ञान, अनुभव और हृदय का यथावत्। ज्ञानों के बाद अनेकाने नृप और कर्म जनक ब्राह्मण में। मनुस्मृतियों ने अनेक बरों में अतिनीच 'दाह्या' तथा 'सोत्रियों' के अतिनीच बरों को बुरा करने का वाक्य दिया है।

मैत्रिन श्रमद न न्यय वन के तथ्य पर बरा देकर जाति के अतिरिक्तियों के विषय का प्रश्न किया। उन्होंने हर जाति का उद्भव अतिनीच के एक विधेय रूप से हुआ बताया गया है। जब एक बार सिद्धान्त बन गया कि जाति अलग है तब भारत के सिद्धान्त अरब्यपुर पर जन्म प्रारम्भ करना और अतिनीच के हर बरों में न न्याय पर निम्न विधेय 'जन्म' की तरह इनके प्रभाव का गया।

जाति के दृष्टान्त की समझ के निम्न विद्यमान सिद्धान्तवादिना ने एकत्र तत्त्व जन्म का प्रश्न तब उठा कि अज्ञेयों का तथ्या का उन्नात का प्रश्न किया। समान जाति के मनुष्यों के बीच हुए विवाह से उत्पन्न बच्चा जाति का प्रश्न करता था और उत्पन्न बच्चा का बन ए जाता था। निम्न विवाह से जन्में पिता उच्च जाति का होता था और माता निम्न जाति का (अनुसूत विवाह) उत्पन्न बच्चा शायद ही पिता के समाज स्तर से निम्न माना जात था। अतः एक ही निम्न जाति का पुरुष उच्च जाति की स्त्री से विवाह (प्रतिनयन) करता था तब मनुष्य का समाज-स्तर माता पिता में प्रत्येक से नीचा माना जाता था।

चूँकि इन प्रकार के विवाहों में अतिनीच जन-परिवार और समोजन ही सन्तानें थी, इसलिए वे कितना भी बड़ी संख्या में जातियाँ और उपजातियाँ को जन्म दे सकती थीं। विधिवेत्ताओं ने साबित किया कि जातियाँ इसी प्रकार उत्पन्न हुईं लेकिन उन्होंने हर जाति को स्थायी रूप में एक जन्तु काय अथवा पशु से बाध देने का प्रयत्न किया। इस प्रकार, समाज का और उसके समाजक अवस्था का एक अपरिवर्तनीय ढांचा नैसर्ग हो गया। यह सैद्धांतिक प्रणाली समाज के मन में रूढ़ हो गई और तथ्य कितने ही दुःखप्रद हो गये न हों उन्हें इसा तन्त्र में ठासने का प्रयत्न किया जाने लगा।

इस सिद्धान्त का मनु और धर्मशास्त्र के अन्य लेखकों ने विस्तार दिया तथा इसका प्रभाव निरन्तर बढ़तू रहा, यहाँ तक कि सत्रहवीं शताब्दी में 'जाति विवेक' और 'शूद्र धर्मशास्त्र' जैसी पुस्तकों में भी जाति प्रथा के उद्भव और विचार के विषय में परम्परागत प्रणाली को अपनाया गया।

इन धर्म-लेखकों का मत है कि जाति जन्म से निश्चित होती है, क्योंकि उपजातियों और भ्रष्ट जातियों की बहुसंख्या का कारण है उच्च जातीय पुरुष और निम्न जातीय स्त्री के बीच विवाह का प्रचलन, कि हर जाति का अपना स्थिर पैसा है मरुपि कुछ परिस्थितियों में विशेषकर विपत्ति के समय, दूसरा धंधा अपनाने की अनुमति है, कि जाति ने घाते पीने की स्वतन्त्रता पर बंधन लगाए हैं और यह एक रूढ़ सामाजिक व्यवस्था है जो समाज के सोपानिक क्रम में जाति अथवा उपजाति की स्थिति और उसके स्तर को निर्दिष्ट करती है।

लेकिन यदि सिद्धान्त का जलम हुआ पर तथ्यों पर विचार किया जाए, तो लोगों का दला और पगों में कान्तिविन विभाजन धर्म-शान्तीय लेखों के बणना का अपेक्षा पूरी अधिक उन्नतता हुआ है।

पी० वी० पाणे के अनुसार पवित्र पुस्तकों में उल्लिखित जातियों की संख्या 172

है।<sup>1</sup> लखिन जनगणना का रिपोर्ट के अनुसार भारत के प्रत्येक भाषायी प्रदेश में कमभन्ग 200 जातियाँ और 2 000 उपजातियाँ हैं और पूरे भारत में 800 से अधिक बड़ी जातियाँ और 5,000 से अधिक छोटे बग हैं। अब, पवित्र पुस्तका ने जिस प्रमुख तथ्य की उपेक्षा कर दी है वह है आजादी के जातीय रचना क्रम में प्रादेशिक विभिन्नताओं का अस्तित्व। जा अबली जाति पूरे भारत में समान रूप से पाई जाती है वह है ब्राह्मण-जाति। राजपूत, जिन्हें मिथि-पुस्तका के क्षत्रिय-वर्ण का प्रतिनिधि माना जा सकता है, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और राष्ट्रीय उच्च भूमि तक सीमित है। मुठ्ठी भर राजपूत पूर्वी भारत और दक्खिन में बिखरे हैं। फिर औद्योगिक, कृषि अथवा व्यापारिक कामों में लगी जातियाँ के नाम और उनका स्थिति विभिन्न प्रान्तों में भिन्न है। निम्नतम स्तर पर कुछ जातियाँ सामान्य हैं पर कुछ एकदम भिन्न हैं।

जा बात और भा महत्वपूर्ण है वह है उच्च और निम्न जातियाँ का वितरण। श्रेष्ठ जातियाँ (ब्राह्मण और राजपूत) अथवा शुद्ध जातियाँ (जिनसे श्रेष्ठ जातियाँ जल ग्रहण कर लीं) और अशुद्ध जातियाँ (जच्छूत अथवा बाह्य जातियाँ<sup>2</sup>) का अनुपात जमा वि नीचे की तालिका<sup>3</sup> में स्पष्ट है प्रान्त प्रान्त में भिन्न है।

	हिन्दू	ब्राह्मण	राजपूत	अन्य
	साथ में	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
असम	30 6	3 9	0 3	95 8
बंगाल	454 5	6	3	91
बम्बई	178 3	5 6	2 5	92
मध्य प्रांत	87	4 1	2 6	93 3
मद्रास	285	4	05	95 95
पंजाब	9 25	3	4	93
उत्तर-पश्चिमी सामा प्रान्त	385 5	12	8	80
मध्य भारत	78	12	10 4	77 6
राजपूताना	92	9 8	5 2	85
भारत	1 880	7	3 8	89 2

जहाँ तक अछूता का सम्बन्ध है, अबो से पता चलता है कि सन 1931 में वे भारत की पूरा आबादी के 14 प्रतिशत और कुल हिन्दुओं के 21 प्रतिशत थे। बम्बई में इनकी प्रतिशत संख्या सबसे कम थी—11 प्रतिशत, और असम में सबसे अधिक—37 प्रतिशत।<sup>4</sup> इससे अतिरिक्त हर प्रदेश की अपनी विशिष्ट अछूत जातियाँ थी यद्यपि कमार पूरे भारत में बिखरे हुए थे।

सिन्दर में अब यूनान याद की तिथि के हैं क्याकि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में नहीं है। लेकिन इनमें माट रूप में उस शताब्दी के हिन्दू-समाज की स्थिति का

1 पृ० धी० बाणे, 'हिन्दूरी आरु धर्मशास्त्र', खण्ड 2, भाग 1, पृष्ठ 71

2 'संनस आरु इण्डिया', 1931, खण्ड 1, भाग 1, पृष्ठ 471

3 'संनस आरु इण्डिया', 1881 खण्ड 2 (आबादी के अर्थ), पृष्ठ 240-41

4 'संनस आरु इण्डिया रिपोर्ट', 1931, खण्ड 1, भाग 1, पृष्ठ 494

पत्नी सग नरना है। आवादा में स्वाभाविक वृद्धि और हानि का नाश सम्भूत मर्यादाएँ बदन जाती हैं। लेकिन जब तक मुस्यष्ट कारण न हों सम्बन्धित प्रवृत्तियों का बदलने की सम्भावना नहीं होती।

कुछ दूसरी प्रादेशिक विविधताएँ भी थी। जिनमें सामाजिक पूर्वता का क्रम समान नहीं था। जिनमें सम्मालन जति श्राद्धों का मर्यादा का चुनौती देती थी। बंगाल में बादस्य शूद्रा में गिन जान थे लेकिन बिहार और उत्तरप्रदेश में वे जिन माने जाते थे। मगध में वायस्य (प्रभु) स्वयं का शत्रुता न उत्पन्न मानते थे। इस प्रकार के जन्म दूसरी जातियों में भी पाए जाते हैं। विवाह की नियम-प्रवृत्तियों में सम्बन्ध रखने वाली जिनमें जौ प्रथाएँ भी अलग-अलग हैं। कुछ प्रदेशों में विनाशकर के मिनारों में उल्लिखित नियम प्रचलित थे जब कि दूसरे में 'दायभाग' अथवा 'जीवनवाहन' की मर्यादाएँ सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार अलग-अलग रूपों में एक-दूसरे से अलग-अलग हानि का विचार जिनमें दक्षिण में नहीं। दक्षिण में यह माना गया कि अश्विजित अष्टम क शरीर में से फूटती है। जिनमें उमका छाया से भी बचा गया। तमिलनाडु और मद्रास में तो ठीक दुनिया निश्चित कर दो गई, जो अशुद्ध जातियों और उच्च जातियों के बीच खी जाता था, हुआ तालाब और नदियों तक के प्रयोग में छूने से अश्विजित हानि का विचार प्रचलित था। मन्दिर प्रवेश वर्जित था। दस के अधिकांश भाग में अशुद्ध जातियों के घर अलग होते थे। लेकिन कुछ प्रदेशों में ग्राम और नगरों में हर जाति के लिए एक विविध भाग निर्दिष्ट कर दिया जाता था।

एक जाति-द्वारा दूसरी जाति के हाथों का पत्नी हुआ मात्र स्विकार किया जाना एक अलग प्रादेशिक विषय है। पूर्व-बंगाल, गुजरात और दक्षिण भारत में कच्चा (घी के बिना पकाया गया) भोजन और पक्का (घी से पकाया गया) भोजन में कोई अन्तर नहीं माना जाता। लेकिन दूसरे प्रदेशों में उच्च जातियों-द्वारा छोटी जातियों के हाथ से बनाया गया पक्का भोजन स्विकार करना वर्जित नहीं है।

भारत के कुछ भागों में—उदाहरणार्थ मद्रास में—अश्राद्धों का शरीर में विभाजित के दक्षिण और वाम। वाम के लिए 'जुनूम' में घोड़े पर बैठ कर निकलना, विशेष चिह्न-वाले झंडे उभार चला और अपने विवाह-मंडप का बारह म्दमा पर आधारित करना वर्जित था।

प्रादेशिक विभिन्नताओं के रहते हुए भी जाति की कुछ सामान्य विविधताएँ हैं। जिनमें सबसे सम्बन्धित है सगोत्र विवाह की प्रथा। जाति सामाजिक वृत्त में उन नीतियों का निर्धारण करती है जिनके भातर ही विवाह सम्मत है और जिनके बाहर निषिद्ध है। लेकिन अधिकांश जातियों अलग-अलग उपजातियों में विभक्त हैं। स्पष्टतः हिन्दू-मनीषा अपने ही सामाजिक अन्वेषण में विभिन्न जातियों के भी क्वालि एक का छोटे-बड़े में तोड़ देने के लिए कोशिशें कर रहा था।

उपजातियों का वर्णन, आधुनिक ऐतिहासिक शोधों और प्रादेशिक अन्वेषणों पर बला भी जाती थी। विभिन्न शिल्पों में तकनीक का अन्तर अथवा जीविका या निवास-स्थान का अन्तर एक नए उपजाति निर्मित करने के लिए एक विहित कारण बन जाता था।

वणसवर सन्तान बढ़ाया उनकी मर्यादा को बढ़ाती थी। प्रयाग की विशिष्टताएँ और आचरण की विचित्रताएँ भी विभाजन उत्पन्न करती थी।

वित्त ही विदग्धा जाति प्रयाग में सम्मिलित कर लिए गए। शाकद्वीपी ब्राह्मणों का भी मूल शायद विदेशीय ही है। द्रविड-ब्राह्मणों के मूल में भी शायद कोई जातीय तत्व ही। महाराष्ट्र के चित्तपावन ब्राह्मण सिर के आवार, त्वचा और आँखों के रंग के विचार से पंजाब और उत्तरप्रदेश के ब्राह्मणों से भिन्न हैं। मुंडा, मयाल उदाव और अय अनाय आदिवासी श्रम जातियाँ बन गईं।

कवायली नामा पर आधारित जातियाँ और उपजातियाँ भी अनगिणत हैं—जस, अरार मूलर गोट मगठा भीम डोम, गाड। वरण कायस्थ और राजपूत अतिवायत राजनातिव जातियाँ हैं। पहला जातियाँ छोटे अधिकारियों का काम करती थी और राजपूत सत्ताधारी थे। वर्गीय विपन्नताओं ने ऋग्वेदा अथर्ववेदी यजुर्वेदी सामवेदी, एवनायी स्मात और वणव ब्राह्मणों का जार लिंगायत विश्वादे, त्रारूपयी, सतनामा तथा शाक्त-जसी जातियों का जन्म दिया। अन्य उपजातियों के मूल में प्रादेशिक विभाजन है। उदाहरणार्थ ब्राह्मणों में काशीया, सरवरिया गारस्वन ब्राह्मणस्थ, देशस्थ, गार ओमवाल, श्रीमानी सोरठिया, राडी और बरेड बरनाद बगी नाडू बनारा, कम्मा, वस्ति इत्यादि। बर्षा और गूदा में भी नगर ग्राम जिन आदि के नाम पर अनगिणत उपजातियाँ बन गईं हैं।

प्रयाग की विशिष्टताएँ और आचरण अथवा जीविका की विचित्रताएँ ही इन जातियों के बनने के लिए उत्तरदायी हैं। पुरानिया अथवा जूयिया जो अहीर घायो और बसोरो से पदा हुई सन्तानें हैं, छगिया चमार जो पत्ता से बना एक टुकड़ा पीते हैं, सुवरा जो धीवरो की एक उपजाति है और सूत्रा का काम करती हैं और वैतालियाँ जो गुजराती कुम्हारों की अवध सन्तानें हैं।

मुगहर (चूहे घानेवाल) एक निम्न आदिम उपजाति, भुलिया (भुलकड) जुलाहा की एक उपजाति, दुमला (कमठोर) गुजरात के आदिम जाति का एक वर्ग बल्लार (चोर), तियान (दक्षिणवाले) और परिया (दोलवाले)—इन सब उपवर्गों के नाम विभिन्न विशिष्टताओं की ओर संकेत करते हैं।

जाति और उपजाति का दूसरा महत्वपूर्ण उपरक्षण घाघा है। कुछ नृत्वशास्त्रियों के अनुसार भारत का जातीय ढांचा घाघे पर आधारित है। चार बर्षों का प्रयाग है। ब्राह्मण का काम है उपानना (ब्रह्म) और क्षत्रिय सम्बन्धित मय बम, क्षत्रिय सत्ता (क्षत्र) के प्रयोग में नियुक्त है वय उत्पादक है और गूद्र का काम सवा है।

चार वर्गों के अतिरिक्त जातियाँ-सम्बन्धी बम मुद्ररतम अतीत में ही विद्यमान रहे हैं। वे गंगा-विभाज्य जातियों और उपजातियों का गण और इस प्रकार उन्होंने घाघा को जन्म का आधार पर निर्दिष्ट कर लिया। जीविका पर आधारित जातियाँ और उपजातियाँ अलग हैं। आचरण की बात यह है कि ताना और पदवि के छोटे छोटे अंतरों ने उन्हें और भी छान विभेद हुए दान में विभाजित कर दिया है और उनके बीच विवाह-सम्बन्ध बर्धित हो गए हैं।

उपकरण के लिए चमारों (कमठे का काम करनेवाले) को लीया है। उनकी जाति बहुत बुरा है। उनके लिये हाँ ७

के काम में विशिष्ट शक्तियाँ से सम्बन्धित। बुदलगीर चमड़े के पाप बनानेवाले हैं, जौगर घोड़े की काठियाँ बनाते हैं और बटवे चमड़ा काटते हैं। इसी प्रकार धीवरा (मछियारो) में बसिये हैं जो बास के डों से मछली पकड़ते हैं और बघड़्ये हैं, जो रस्ती से अपनी बसी बनाते हैं। भाली (वागमानी करनेवाले) फूल उगानेवाले फूल-भालियों जौरा उगानेवाले जौरा-भालियाँ और हन्दी उगानेवाले हल्दी-भालियाँ में बटे हैं। भुने हुए चन बेचनेवाले (घुरिये), कत्या बनानेवाले (घूर), नमक साफ करनेवाले (तोहड़), भेड़ पालनेवाले (भेड़े), भैंस पालनेवाले (मन्ने) गानेवाले (बँजन्तरी) सपेरे (भग-भरडी) आदि की कितनी ही उपजातियाँ हैं।

लेकिन जीविका की समानता का जाति का एकमात्र आधार मानना गलत होगा क्योंकि कितनी ही विभिन्न जातियाँ के ध्ये एक-ने हैं और एक ही जाति के लोग विभिन्न धर्म करते हैं। सामान्यतः जो बात सच है वह यह कि धर्म बसानुगुन बन जाते हैं।

जाति प्रथा की तीव्रता बिल्कुल यह है कि यह एक भौतिक क्रम में बर्गों और उपबर्गों के स्तर को निर्वाचित करता है। इस तर्क से अधिकार और कृतव्यो के साथ व्यक्ति की स्थिति निर्दिष्ट होती है। धर्म-पुस्तकों में कल्पित चतुर्वर्णिय विभाजन वास्तव में, व्यक्तिगत और दला के वर्गीकरण और स्तरीकरण का एक प्रयास है। सिवाय इसके कि सामान्यतः ब्राह्मण उच्चतम जाति और बद्ध निम्नतम जाति के रूप में भाष्य है भारत के विभिन्न प्रदेशों में बीच की जातियों और उनकी उपजातियों की मध्या तथा उनका सम्पूर्ण स्थिति एक-जैसा नहीं है।

जाति न केवल व्यक्ति के समाज-स्तर का निर्दिष्ट करता है बल्कि उनके धार्मिक विश्वासों और आचरणों का भी प्रभावित करती थी। ब्राह्मण स्मार्तों शैवा और शाक्तों में तथा दक्षिण-वाम मार्गों पर चलनवाला में विभक्त थे। शत्रियाँ में भी ऐसे ही वर्गीकरण थे। लेकिन इन मामलों में पारिवारिक परम्परा अथवा व्यक्तिगत मुकाबला ही चुनाव का प्रमुख आधार रहता था। अतिरिक्त जातियों में देवता और देवियाँ (जैसे कि ग्रामदेवता) तथा उत्सव और अनुष्ठान कर्मों के बग विरोध में विरोधी होते थे। उपासना में विद्यमान ये विभेद जातियों और उनकी उपजातियों में उपस्थित अन्तर का और भी बढ़ा देते थे। इन प्रकार जाति और उपजाति के ढाँचे में नागरिक और धार्मिक स्तर जीविका सामाजिक समानता विवाह और दानदान व नियम पड थे। नियम और कानून अन्तर्गत धार्मिक विधि-पुस्तक के लिए जाने थे तथा अन्तर्गत प्रथा और परम्परा पर आधारित होते थे।

नियम और जातीय विशेषता का कानून व लिए निम्न जातियों में एक न्यायो-परिष्कार और मुखिया के अन्तर्गत एक समिति होती थी। परिवार के मुखिया अथवा बुद्धम और अनुभववान लोग इसके सदस्य बनते थे। इन परिष्कारों का एक समिति होती थी, जो इसकी कार्यवाहियों का निर्देश और संचालन करती थी। माशरफत यह पांच सदस्यों का एक छाती-मा मया जाता था जिसे पचायत कहते थे। पचायत कारवाय करने के लिए मया तयार करती थी और बग मया को बँटकर बाल-की-बाल में बुलवा करती थी।

इन समितियों का प्रश्न मुखिया जाता था जो बालानुगत अथवा जीवन भर के लिए चुना जाता था। उनकी जाति चौबग या प्रश्न या संचालक होता था। कर्मा-वर्गों के उपर माय एक-एक अर्थ अधिकारियों—नायक शैवान मुन्तार जाति—का भार पडता था। समिति जनता के व इस सम्बन्ध में जाता बालानुगत या जीवन भर के

लिए चुने हुए हान थे। तबिन अक्षर जब आवश्यकता पड़नी था तभी उन्हें चुन लिया जाता था। मुखिया के पद का चिह्न एक पगना होती थी, जो नए चौधरी व सिर पर समाराहपूर्वक बांधा जाता था।

पचायत का म्याया सम्या स्थान विशेष—गाव कच्चे अथवा नगर, तिम जुहार, गट अथवा चण्ड गहने थे—की सगात्र विवाहवाणी उपाति में सम्बन्ध रखती थी। कभी-कभी दा या अधिक पचायत मित कर उपजातिया के पारस्परिक मामला पर विचार करना था, लेकिन पूरी जाति की कोई समिति अथवा पचायत नही हानी थी।

पचायत का कायधेत्र मुविन्त था। 'जिन मामला पर पचायत विचार करनी है वे ह—जाति का मामाजिन प्रया का भग मिया जाना ननिवना भग व मामले जब जानाय नियम साडे गए हा विशेष धार्मिक अपराध, पारिवारिक झग जस कि दाम्पत्य सम्बन्धा की पुनस्थापना, विवाह के बचन का भग अथवा पत्नी का उचित बय हा जान पर भा उसे पनि के यहा न भाना। कभी-कभी एमे मुबदमे भी जा प्रत्य व कानून के अन्गत आत ह, चाहे वे दीवानी हा अथवा फौजदारी—जैसे, मारपीट अथवा ऋण, आदि—वह हाय में लती है। व्यापारिक झगडा में सम्बन्धित अभियोग तो अकार लिए जान ह।'<sup>1</sup>

पचायत के निणया का लागू करन व लिए प्रचलित दण्ड थे—बुमाना बिगदरी अथवा ब्राह्मणा के भाज का दण्ड अस्यायी अथवा स्थायी जाति निष्वासन कभी-कभी तीर्यटन भिदाटन अथवा किमा जय प्रकार के हेय कम का भी दण्ड दिया जाता था।

उच्च जातिया, विशेषकर ब्राह्मणा और क्षत्रिया में जातीय प्रशासन का कोई म्याया मन्त्र नहा था। प्राचान समय में राजा वणाश्रम धम (जाति और जावन की अवस्थाका के कानून) का सरक्षक हाता था। मध्य-युग में हिन्दू राजाया-द्वारा शासित प्रदेशा में जाति का सरक्षण राय का वतव्य माना जाता था। इमों बहुत-से दृष्टान्त उपलब्ध ह—उदाहरणाय मराठा प्रशासन ने हस्तक्षेप करने जाताय कानून का लागू किया। लेकिन ऐसा प्रतीत हाता है कि शासन का काय-क्षेत्र उच्च जातिया म आग नही बढ़ता था। एमे मामला व सक्त बहुत थोड़े ह, जब सरकार ने निम्न जातिया-द्वारा नियमा और परम्पराका का लागू करन अथवा उनके भग में जाइ रुचि निश्चार्ड हा।

तथ्य यह है कि भाग्य की राजनाति उन निम्न जाति प्रया व अधात भाग करती था। जाति प्रया ने समाज को दो वर्गों में बाट दिया था एक छाटा-मा बुनीतान अथवा 'गसक अन्गम' वग, जिसमें उच्च जातिया सम्मिलित था, और दूसरा धाम जनता जयना कामगार-वग (टायनयी व श्रमा में प्रौढारियत) जा निम्न जातिया म निर्मित शाकिता का अत्यन्त वामदृश्यक वग था। शक्ति का एवाधिकार और इमा प्रकार ज्ञान का भा एवाधिकार प्रथम वग व दू हागा में था। ब्राह्मणा का निर्मातन-वग का माता जाना था और निम्न व्यक्ति का कानन और पाय का सरक्षक तथा ऐस प्रकार पर निणय में भ्रम्य समझा जाता था जिनने लिए कानून की धाराका कानूनी पद्धति और पारुणिक दण्डविधान का पान आवश्यक हा।

शास्त्री अथवा पण्डित का प्रतिष्ठा हा उमने आदेश का लागू करने का पर्याप्त गारण्टी थी, क्योंकि जनमन अनिवाचन उमका साथ आया था।

न्याय-व्यवस्था (दीवानो लगभग पूरा तरह और फौजदारी जगत) ब्राह्मण का विषय था और जहा तक हिन्दू-समाज का सम्बन्ध है भारत में ब्रिटिश शासन का स्थापना तक यही स्थिति शायद रही। एक धर्मनन्त्र को अवस्थिति न सामान्य ज्ञानय सामान्य अथवा व्यक्तिगत अंगगर्भा पर विचार करने के लिए एक प्रतिनिधि अथवा नलाहवार समाज का आवश्यकता का सम्मान कर लिया। लेकिन धार्मिक भेदा और त्वाहारा—जैसे, हरिद्वार, प्रयाग जाति के महान् स्नान-पर्वों—के अवसर पर जातीय समझौता के लिए मौका मिलता था। यह भी सम्भावना रहती थी कि वनागन-जैम प्रसिद्ध धर्म-वेदा के प्रमुख विद्वानों को सम्मति ली जाए।

ब्राह्मणों का कथापर भारी जिम्मेदारी थी। वे समाज के आध्यात्मिक और नैतिक हितों के लिए हा उत्तरदायी नहीं थे बल्कि सामाजिक पद्धति का निरन्तरता और उमकी समृद्धि भी उन्हीं पर निर्भर थी। दुभाग्यवश, अपना कतव्य ठीक तरह निभाने में वे विफल रहे, यद्यपि दाप व्यक्तिगत पर उतना नहीं आता, जितना पद्धति पर आता है।

जाति की सवप्रमुख विशेषता है, उमकी अनयता। हिन्दू सामाजिक पद्धति के सिद्धान्तवादी और पक्षपोषक उमके समय में कुछ भी क्या न कहें, पर उमने एवता पर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना विच्छेद पर दिया। उमने समाज का वर्गों में बाँट दिया, जिससे सामाजिक सम्बन्ध में रकावट पड़ गई। हर अवयव अपनी आणविक अनयता का लक्षण जीवित रहा। जो सूत्र उन्हें परस्पर एक अटूट सम्पूर्णता में बाँध सकते थे, वे बहुत छोटे और कमजोर थे।

ब्राह्मण धार्मिक धर्म के मरणात्त थे, लेकिन अय धर्मों के मरकका के विपरीत, वे स्वयं को ही अपन धर्म का एकमात्र आचरणकर्ता और प्रचारक मानते थे। उमके सिद्धान्त, नियम और नीति शास्त्र के अध्ययन तथा उमके धर्माचारा और अनुष्ठानों के आचरण का दायित्व वे मात्र अपन ही ऊपर मानते थे—अय जानिया वैसा करना है या नहीं, उमकी विन्ता उन्हीं नहीं थी। उन्हीं धर्म क्रियाओं और अनुष्ठानों के आचरण और धार्मिक नियमों की शिक्षा का प्रयत्न भार जाति पर हा छाड़ दिया। पूजा और मस्कारा को सम्पन्न बनाने का पुराहिती कतव्य बड़ी करते थे। ब्राह्मण इतने कट्टरपथ थे कि सामाजिक नियमों अथवा उपासना-पद्धति में उरा-भा भा हेर-फेर महन नहीं करने थे। परिस्थितियाँ एव जनमन में आया परिवर्तन उनके विश्वासों और आचारा का रुढ़ता पर बहुत कम प्रभाव डाल पाता था। जाध्यात्मिक विकास तम के विद्वानों का विकास करने और विभिन्न ज्ञानिया के लिए अलग-अलग माध्यम बनाना कर के जनता के दबाव का मुकाबला करने थे।

वैदिक अनुष्ठान और धर्म ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थे। दूसरी जातियाँ के लिए पुण्य का ही धर्म काफी था। पहले बौद्ध धर्म और बाद में इस्लाम की चुनौती का सामना पाकर महान आचार्यों ने प्रेम और भक्ति के ज्ञान का विकसित किया। लेकिन उच्च जातियाँ के लिए भक्ति (प्रेम) रखा गई और निम्न वर्गों के लिए श्रुति (समय)। ब्राह्मण आचार्यों ने व्यक्तिगत शक्ति राम अथवा कृष्ण का भक्ति पर डार लिया। अय जातियाँ के सुधारकों और मन्त्रा—उपासनाय कबार, नानक और दादू ने—सिखाया कि भक्ति एक निगुण परमब्रह्म की कृपा चाहने में निहित है। पूर्वकी भाग उगमना और समाज-सगठन के क्षेत्रों में रुढ़िवादी थे और परस्परों काग जाति प्रथा के बहार आनाउर थे।



इस प्रकार उच्चतर धर्म और मान-भाग उन उच्च जातियाँ व एकाधिकार में आ गया था, जिनका वाम अध्ययन और अध्यापन था। लेकिन दूसरा को अन्धविश्वास और अज्ञान में ठोकर खाने के लिए छोड़ दिया गया था। नतिकता और धर्म के मामलों में एक समान मापदण्ड बनाए रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था।

इससे भी बुरी बात यह कि हिन्दू धर्म से अलग होनेवालों की समस्या के सामने ब्राह्मण ने पूरे दिवालियेपन का सबूत दिया। धर्म-परिवर्तन के कारणों की ओर इसने कोई ध्यान नहीं दिया। पतिता और पददलितता के प्रति इसने कोई सहानुभूति प्रकट नहीं की। सच्चे ज्ञान का प्रकाश फला कर अथवा जा लोग प्राचीन प्रणालियों को भूल गए थे, उनकी शिक्षा देकर भ्रातृत्व भाव को मजबूत करेवाले किसी आन्दोलन को इसने बढ़ावा नहीं दिया। अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने बश से बाहर की परिस्थितियों से बेबस होकर, अपना धर्म त्यागने पर जा लोग विवश हो गए थे और अब वापस आने का तैयार थे उन्हें भी इसने पुनः ग्रहण करने से इन्कार कर दिया।

लेकिन क्षत्रियों के बारे में क्या हुआ? निम्बदन्ती है कि ब्राह्मणों का नेता परशुराम ने इक्ष्वाकु वंश क्षत्रियों का पूण सहार किया। इस कथा का सिद्ध करने के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो उपलब्ध नहीं है किन्तु मौर्यों के पतन के बाद लगता है, प्राचीन क्षत्रिय-परिवार इतिहास में दिनानुदिन कम महत्वपूर्ण हिस्सा लेने लगे। तब अज्ञान का ही छठी शताब्दी में राष्ट्रता ने मंच पर प्रवेश किया और थोड़े समय में ही वे पूरे सिन्धु-गंगा व प्रदेश (बंगाल का छोड़ कर) और मध्यपूर्वी उच्च भूमि पर छा गए। इस हलचल के बाद भी तब कोई सन्तानपजनक स्पष्टीकरण नहीं किया जा सका है और यह कहना असम्भव है कि उनका मूल किम हो तब विदेशी और विराट्ट हृदयक स्वदेशी तत्वों में टूटा जाए। जाटा और गुजरात से उनके गहरे सम्बन्ध और उनके साथ उनकी जातीय समानता इस बाय को जरा भी सरल नहीं बना सकती है।

जाति प्रथा में राजपूत ठीक तरह नहीं बैठ पाते। परम्परागत रूप में वे छत्तीस कुला अथवा परिवारों में बँटे हैं जो तीन शाखाएँ—सूप-वंश चन्द्र-वंश और अग्नि कुल—से सम्बन्ध रखते हैं। सार राजपूतों का एक सगात विवाहवादी बग बनता है। लेकिन अथ हिन्दू-जातियाँ व विपरीत उनके विभाग गात्रान्तर विवाहवादी हैं और उनमें निम्न स्तर की लड़की से विवाह कर लेने की प्रथा प्रचलित है जिसके अनुसार लड़की का विवाह उसके माता पिता की अपेक्षा उच्चतर अथवा समान स्तर के घराने में किया जाना चाहिए।

हिन्दू-राज्य व अनुसार क्षत्रिय शासन का यह बतव्य है कि वह स्मृतियों के नियमों व अनुसार समाज के संगठन की रक्षा करे। जब भारत पर प्राचीन युग में हिन्दू-साम्राज्य और राजा शासन करने थे तब राजगता का प्रयोग करने जातीय नियमों का पालन करता सम्भव था। मुगलमानों के द्वारा भारत विजय के बाद भी स्वतंत्र हिन्दू राज्यों और रियासतों का गठन करने की क्षमता प्राप्त थी। लेकिन भारत के बड़े भाग पर मुस्लिम शासन का स्थापना न जाति प्रथा का राजनीतिक संरक्षण-बचाने में सक्षम बन गया। राजपूत राजा शासन अथवा जमीन्दार की स्थिति तब गिर गई और मुगलमान राजाओं की हिन्दू-जनता-पद्धति में काय रति था नग। संरक्षण और नियंत्रण में रति शासन अथवा और नृपताना व बीज पत्र कर तथा सामर्थ्य का स्वाभाविक प्रणाली से प्रतिन शासन का प्रयोग करने का सम्भव जान पर विचार था।

मुस्लिम-विजय न पूव ही समाज की जापविक इकाइया की निश्चलना और आम-निमरता नाम पूरी हा चुकी थी। एकात्मिक शक्तिया कम हाने-हात यूननम स्तर न पहुँच चुकी थी और प्रादक्षिणा, स्थानायता, मायावादी पयकता जीविका-सम्बन्धी अन्धाव, धगवाइ तथा विच्छेद और विखराव लानेवाली अन्य समी शक्तिया प्रभावकारी बन चुकी थी। अराजकता फैलने, उपजाति को सीमित खुदमुञ्जारी मिलने और हजार छोटे-छोटे वगों का आमनिमर इकाइया बनने के कारण इन इकाइया को पूरे समाज के सौभाग्य अथवा दुभाग्य में बहुत मामूली रचि रह गई थी। जाति प्रथा ने इस प्रकार समाज-वल्यांग के क्षेत्र का बहुत ही अधिक सीमित कर दिया था और दन तथा स्थान स बाहर क मामला के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा कर दिया था। विदेशी आक्रमण से समाज की ग्था बरने और जानरिक व्यवस्था को कामम रखने का काम थोडा जानिया की एक छोटी-सी मध्या तक सीमित हा गया था और एक बड़ी मध्या का इन महत्वपूर्ण मामला में कोई माय अथवा भवितव्य नहीं रह गया था।

### 5 कबीले

जाति प्रथा में निम्न सामाजिक अराजकता को कबीला के जस्तित्व न बढ़ावा दिया, नेकिन इन दाना में भेद करना सरल नहीं है।

जाति एक प्रकार का ऐसा षग है जिसमें परस्पर विवाह और माय छाने-रीने न सम्पाधित निश्मा पर और कुछ ह तक जीविका और समाज-स्तर पर जार दिया जाता है। दूसरी जाग कजायली सगठन यद्यपि रक्त-सम्बन्ध और समान पितृ-परम्परा (वास्तविक अथवा काल्पनिक) पर आधारित है तथापि वह राजनीतिक सक्रियता प्रगडी उदारता भूमि हयियान और प्राप्त करन, अपन राज्य और सम्पति की रक्षा करने, आदि से अधिक सम्बन्ध रखता प्रतीत होता है। कबीला जाति की अपेक्षा प्रदाग न अधिन सम्बद्ध है।

य कहना बग कठिन है कि आरम्भ में प्रयेव घाय-कवाने में चारा षग सम्मिलित थे या नहीं। लेकिन कबीले बाद के युगा में कितनी ही जानिया स मिल कर बनने से यह चार है। उग्रहरण के निरु, पजाव के जाटा में ये उपजातिया ह भारी, भटियारे जुनाहे नेवी चूहर, दबीं घाबी तरखान डोम रागपूत बहार, कुम्हार, बनार, गुजर, लुहार, मन्साह मोची मच्छी और नाई।<sup>1</sup> बम्बई में गुजर कबीले में दर्जी, मानी सुनार, बनार, डेट, कुम्हार और बनिया होजे हैं।<sup>2</sup> खानदेश के अहीर अवन उपविभागा में अहीर-शाहूरा, अहीर-भास अहीर-सुनार, अहीर-सुनार अहीर-नुहार, अहीर-शिम्पी, अहीर-गली, जहोर-गुगव और अहीर-बोनी<sup>3</sup> का सम्मिलित करते ह।

इ प्रकार कबीले एक अजीब चीज है। समय-नमय पर वे मच पर प्रकट होत्रे ह। फिर गायब हा जाने हैं और नए कबीले उनका स्थान से लेने हैं। वेदो में भरा पुग अनु यदु, तवन दुब्य तथा अतिन, पय्य भलन, गिव और विषाणीन का उिक है पर आज उनका चिह्न भी कठिनाई से हा मिलेगा।

1 डी० इचटसन, 'पजाव वास्ट्स', पृष्ठ 106-7

2 तार० ई० एषोवन, 'द ट्राइल ऐण्ड वास्टम घाठ बाम्बे', घट 2, पृष्ठ 21

3 यही, घट 1 पृष्ठ 24

आगे चढ़ कर उसकी सख्या बढ़ गई। चौदावीं जातक-क्याआ में उत्तर भारत में सात-महाजनपद अथवा बवापली राज्या का जित्त आया है। लेकिन बाद में उनका पृथक् व्यक्तित्व हा गया। पुराणा में अनगिनत विदेशी और भारतीय कबीलों का उल्लेख है। कुछ नाम अभी तक चले रहे ह पर अधिकांश लुप्त हो गए ह। कद का ता जाति प्रया में मिला गया। वास्तव में कबीला को जातिया म रूपान्तरित करने की एव निश्चित प्रवृत्ति रही ह क्योंकि जब भी राजनीतिक अवस्थाएं स्थिर हुईं और क्रांतिको महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के जवमर कम हुए, कबीला का जातीय कामो और जिम्मेदारिया से लाद दिया गया। इस क्रम में यह कहना सरल नहा रहता कि बिसा कम विशेष को जाति माना जाए अथवा कबीला।

कबीला में भी स्तर भेद है। कुछ को उच्च स्तर प्राप्त है—जसे राजपूता और मराठा का। जाट, गजर और खितने ही दूमरा का स्थान इनके बाद है। लेकिन इनके बांधा बहुत-तार ऐस लाग ह, जिन्हें कठिनाई स ही हिंदुआ की बाह्य जातियों से पथर बिया जा सता ह। कुछ कबीले सध्या में तने अधिक ह और भांगालिन दृष्टि स इतने पिछरे हुए ह कि समान नामा क हात हुए भी उनके विभाग कुल और घराने एक-दूमर स अलग हा गए हैं।

कबीला और कुता ने भारत क इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ह। य विभिन्न प्रदशा में कम गए और इन्होंने अपनी पृथक् रियासत सघटित कर ली। इनमें से कुछ राज्य बन गए और कबील-कबीला साम्राज्य तब में परिवर्तित हो गए। लेकिन ये राजनीतिक सघटन बड़े और छोट सरकारा क डीने-डाल समुच्चय-भात्र थे और आन्तरिक विघटन स निरन्तर आलकित रहने थ। प्रभुत्व-गम्पन का एव लघीनस्य वग के बीच सामुदायिक जावन की भावना बहुत ही कम थी। प्रत्येक अपने जिजी हिता के प्रति साध रहता था और अपन पथवनावाण का समाज हिन में लीन कर देने का कोई प्रयत्न नही करता था।

अठारहवीं शताब्दी में गजपुर के मछवाह जोषपुर क राठौर और उदयपुर क भीगानिया, से तीन प्रधान राजपूत-वंश इस बात क विशेष उदाहरण ह। इनके आपसी ईर्ष्या-द्वेष और अत्यन्त अदूरदर्शितापूर्ण विराध इनके उद्ग से कि राजस्था में शक्ति और सम्मानपूर्ण अवस्था पन्न करने के लिए एक हा जान क म्यान पर इन्हीं भुगत क अधीन रहना और मराठा को कर देना अधिक अच्छा समना। यद्यपि यह हिंदू भारत क दुष्ट कौटा माना जाना था तथापि राजपूता न अपने स्वामी दिल्ली के सम्राट को प्रसन्न करने के लिए जाटा और मराठा का कुचलने में एक-दूसरे से बड़ चढ़ कर हाय दियाए।

जाटा ने औरगडब के समय में दुआब के उत्तरी भाग में जोर पकडा। उसकी मृत्यु क बाद उनकी साम्राज्य की बढ़ती हुई कमजोरी का लाभ उठाया और भरतपुर का केंद्र बना कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। औरगडब उनके खतरे के प्रति सचेत था और उमन उनके विनाह को खाने के लिए राजा बिगुन सिंह मछवाह का निधुवा बिना था। परसतिपर क राजचराल में जयगिट मवारि न चूनामन क विरुद्ध युद्ध क्रिया था और क जाण को पोषी-बहुत अधीनता में स आया था। जब अहम शाह धब्बाली भारत को खाने क लिए आया तब मराठा न अफगाना की बाड़ को रोका के लिए एक सेना भेजी। जब तब मराठा-सना जाट राज्य क परता म रही, तब तब भरतपुर के जाट राजा मूरजमन न उनके साथ मित्रता सिधा पर जसे ही सेना न चमना पार थी,

उभय पक्ष-परिवर्तन कर दिया। प्रथम पक्ष जलानों व भाव जनने मन्त्रि कर लो जोर धमकी मराठों का विरोध किया। दुआब व जाटा को विरक्तिवा जो विरक्तिवा में पजाब में घने घने जनक जानों भद्रवा न नतिर मा मन्त्रि नग रिक्ता।

जैने जवमर मराठा का प्रायः १८, बने किनी भी अय वा का नग हुए। व एक ठोन जाति थे। मुगल उनक पक्ष में था और दहमना जववा मुगल गानका की पक्ष न उनकी का वाता था। नका एक भाषा था और नचताय जाबादी थी। राज पूनाके वे राजपूत बनमान जासादा क वेदन छ प्रतिगत ह और दुआब क जाट वहा की कुन जनमख्या क माडे-आठ प्रतिगत है। उनक विपरीत मराठ की वतमान सख्या महासष्ट की जनता का एक-तिहाई है और वे पूर प्राय में दू-दू तक विखर हुए है। उन प्राय की पूरा सम्भावना ह कि अतीत में भी उनकी अजाती का अनुयाय यही था। उनक धार्मिक सुधारका न उनमें नतिक उचा भग था जाग विवन्ना का श्रेष्ठतम नतिक जो गान्धीतिक प्रतिभा न रहे एक गान्य क रूप में मण्डित क दिया था। लेकिन ये लाभ व्यय हा गए क्योंकि मराठों क राज्य बहुत मनुचित रहे। मराठों की उनकी परिभाषा में एक माण्डि पूर भाग की कल्पना नहीं थी क्योंकि उनक मराठ की साम्राज्य न बाहर जा भी था उने वे विदेशी प्रजा मानते थ जाग अपन मुल्कीरी अभियाना के लिए उचित तय्य भमपते थे। इन प्रकार सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने के लिए जब वे मुगल-साम्राज्य न टकरा वे रह थे, तब उन्होंने उत्तर को हिन्दू जातिया जाटा राजपूता, बुन्देला वगैरिया उदिया आदि का भी अपना विरोधी बना लिया।

जाति और कमीने न वा आर का न बाव तथा न ननातिर राव में दुर्गम्य होकरे उनी कर दी थी। ये महया का विरक्त बना आर एकठा का पैवना था।

मध्य-युगल इमन्ड में भी चरवाणों का प्रयास सनन पुगाहित, सनन्त्र अगामी और कामगार। वेजिन व जलप्य छा-या-द्वारा एक-दूतर म एक नहीं कर लिए गए थे। सानन और उच्चतर पुरोहित नो एक नी व के थे। एक ही परिवार के मुख्य सनन को पुरोहित दातो हाव थे। सनन्त्र जसमी सम्पति मिलने पर सुनी-नता तक उठ सकत थे आर विरागी परिवर्तितता में कामगार की, नियति तक गिर सकत थ। प्राय म एक वर्ग-रूप कम उचीला था पर भारत क, जाति प्रया-तमा विन्वृत्त नहीं था।

इसमें भी प्राचान ब्रिटन के अर्थिक किन्न हा कसत—एक नसुन जूट डेन और सानन—आरर बन गए थे। ऐरिन सन 1066 में सानन विरक्त के गाम्न वाद हा एन जाति बन कर परम्पर पुन-मित ता आर दा न नया के वाद उनके पक्ष कल्पि व बाई बिह्ल बाकी न बना। प्राय नया सन जननी जोर उच पुरोहित देता में भा कबीर तमा प्रवार पुन मित कर एक न गये।

वेजिन सान में पट हुआ छि मिन नया में छटे फाय वा दस सि न के व उठ-समी नया के अन्त न और उनके वा मा ग-ज्यों मणित ह। नया नय सत्ता के विनने गी बाग्य थे। उनमें प्रयात है—सानन जय-सन्त्या का सनन। पूर-पूत-पाद-पू का निवा-वाय्य हृषि, अदन्त-न दसू उजा घान की सान निमरता जोर मानुना स्या-गित मन्त्रि-नये का अय-सन्त्या क प्रष्टन गणा थे। अय नये रत सानन में परिवर्तन नन की चरता कभता बना रही थी उन

तत् प्राचीन सामाजिक-आर्थिक ढांचा बना रहा सामाजिक एकाता की ओर प्रगति न हो गयी।

जाति और वर्गों के सिद्धांत-समाज के ही विभाजक तत्व रही हैं। भारतीय मुसलमानों पर भी ये लगभग समान रूप में लागू हुए हैं। यद्यपि रिस्ले के अनुसार इस्लाम एक ज्वानामुखी की तरह की शक्ति है जलान और एकरूप करनेवाली एक ताकत है जो आजू-काल परिस्थितियों में एक राष्ट्र का निर्माण भी कर सकती है। कबीला की एक पूरा शृंखला को पिघला कर वह एकरूप कर देती है और उनके आन्तरिक ढांचे को एक-सा रूप देती है जिसमें पहल की प्रथाओं का अस्तित्व भी उनमें नहीं बड़ा जा सकता।<sup>1</sup> फिर भी यह एक मचाई हुई विज्ञान का इस्लाम व्यवहार के इस्लाम से बहुत भिन्न था। पगम्बर की शिक्षाओं और मध्य-युगीन भारत के मुसलमानों की प्रथाओं और सम्प्रदायों के बीच हिन्दू धर्मशास्त्रों और व्यवहारबद्ध जाति प्रथा की अपेक्षा कम चौकी घाई बनाना नहीं थी। इवटसन ने कहा है कि लोग (मुसलमान) सामाजिक और वसायती प्रथाओं में किन्हीं भी धार्मिक नियमों की अपेक्षा कहीं अधिक बंधे हैं।

पंजाब में मुसलमान बहुसंख्या में थे। वे अधिकतर धर्म परिवर्तन करके हिन्दू से मुसलमान बने थे। लेकिन इवटसन के अनुसार हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम ग्रहण कर लेने में आवश्यक नहीं कि उस पर (जातीय प्रथा पर) बुरात भी प्रभाव पड़ा हो।<sup>2</sup> वह जाये निश्चय है मुसलमान राजपूत गुजर अमवा जाट, सामाजिक वसायती राजनैतिक और प्रशासनिक प्रयोजना के लिए ठीक उतना ही राजपूत गुजर या जाट है जितना कि उसका हिन्दू भाई। उसके सामाजिक रिवाज अपरिवर्तित हैं। उनमें वसायती बंधन बान नहीं पड़े<sup>3</sup> तथा विवाह और उत्तराधिकार के नियम जमाने-रथा हैं।

आगरा और जबलपुर में मुसलमानों की जनगणना रिपोर्ट में दृष्ट लिखता है कि सय्या, शेखा, मुगल और पठानों को छोड़ कर 'शय निदान्तत सिद्धुणा से धर्म परिवर्तित और विना तत्रा पचायता से सम्प्रचित प्रथाओं को उन्होंने बमानस सुरक्षित रखा है। ये प्रथाएँ उन जातियों की जगमूल हैं जिनसे वे पहले सम्बन्ध रखते थे। गारे-ने-गार मुसलमान राजपूत बठोरतापूजक सगोत्र विवाहवादी हैं और कभी-कभी निम्न स्तर का लटकी से विवाह कर लेने की राजपूत प्रथा को भी उन्होंने बनाए रखा है। पेशवर बगों की पचायतें हैं और वे उतनी ही शक्तिशाली हैं जितनी कि उनके हिन्दू भाइयों का पचायतें। बजारा कुम्हारों चुताहा बेहना बुज्जारा अमवा कासगारों (मुसलमान कुम्हारों) मुवेरिया तवायफों शेरो मेहतरों (भगियों) हलवाइया, कुज्जारा मनिगारा, चूँहारा नानवाइया कलदरो, घोधरा बन्मलियों और दूसरों के बीच ठीक रखा जाता है।<sup>4</sup>

पं० सी० टन्याग ने आगरा और उन्नाव की मुस्लिम जातियों की एक सूची

1 ए० रिस्ले, 'द पीपुल ऑफ इण्डिया', 1908 का संस्करण, पृष्ठ 208

2 डी० इवटसन, 'पंजाब का इतिहास', पृष्ठ 13

3 ई० ए० ए० इन्स, 'सेनाग ऑफ इण्डिया', 1911, पृष्ठ 15, आगरा-जबलपुर के मुसलमानों का, भाग 1, रिपोर्ट पृष्ठ 359

प्रस्तुत की है।<sup>1</sup> इसमें धनिया जुआहा गुजरा, पठान, मैसूर और गैब नाम भी सम्मिलित हैं। एन्सावन न गुजरात के बा में कहा है कि मामना धुनिया और मोनेस-साथों न धम के रूप में इस्लाम का अपनाया था और सामाजिक डांच के रूप में हिन्दुत्व की।<sup>2</sup> निघ व बार में यह बताया है 'मद्वान्ति रूप में मुसलमान हात के गले तक उपजातिया कराव है आर उनम दिवाल्-मन्व्य श्रुत रूप में हा सने है लेकिन व्यवहार में विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति का बतून महत्व दिया जाता है और विवाह-मन्व्य कबाले की सामाजिक क्रयवा समान सामाजिक स्तर के कबाला के मदत्या तक सीमित रहता है।'<sup>3</sup>

रिचर्ड वन न हिन्दू-जातिप्रथा की सभा विशेषताएँ मुसलमाना न पाई हैं—ब्रैस संगोत्र विवाह प्रथा, पंगे का विधीकरण, पूवता के नियम और सामाजिक प्रतिबंध। जे० एच० हट्टन न भारत-भ्रमणर व इस निगम पर स्पष्ट प्रकट किया है कि जाति का नाम तथा लिखा जाए, जब वह स्वच्छता बनाए जाए। उनम सक्त किया है कि कुछ मुसलमान-वर्गों (जातिया) में जातिप्रथा न ग्रहण की गई कायात्मक और सामाजिक विशेषताएँ स्पष्टन दीवनी है इनीतिग उनका उल्लंघन जाति नाम देकर किया गया है। वह आगे लिखता है 'हिन्दू जातिया व धाधार पर बने मुसलमान-वर्गों में अन्तर्वर्गिक विवाहा पर रोक लगना बतून स्वाभाविक है।'<sup>4</sup>

मन् 1931 का पहर की सभा जनगणना रिपोर्टे मुसलमान जातिया की लम्बी सूचिया प्रस्तुत करती है और इसमें काई मन्द नहीं कि अठारहवीं शताब्दी के मुसलमान भारतीय हिन्दू-समाज-मद्वानि का हा अनुकरण करत थे। लेकिन एक मूलभूत अन्तर विद्यमान था। पवित्र तीनिगान्त्र म व्यवहार म जितनी ही दूरा करत न पड गई हा हिन्दु जाति प्रथा की तात्त्विक दृष्टि में साम्प्र का अनुमोदन प्राप्त था। पवित्र आगाथो और वास्तविक व्यवहार के बाव कोई मूलभूत अन्तर नहीं था।

दूसरा अंतर, मुसलमाना में जातिया का उपस्थिति इस्लामी सिद्धान्त व स्पष्ट विरुद्ध थी। धार्मिक दृष्टिकोण में जाति इस्लाम विरोधी है और जब जिनी सन्ने मुसलमान की अन्तरात्मा जागनी व उन प्रथा का प्रतिबन्धन नाप जानता। लेकिन अठारहवीं शताब्दी में ऐसा आप्रति का बन्ध माचा ना नीनी ता सनेता था।

मुस्लिम कबालाया न हिन्दुआ न कहा अधिव उन्हें हा गति पदुवार। पठान और बनूच बतून उनक अनगिनत का आर परिवार पश्चिमा इलाक में मिथु व दोता आर इकठे रग गए थे। हिन्दू बताना न धर्म-परिवर्तन व बा में अन्न सफाई और अनन्दता की काम रग्या था। मुसलमान राज्दूत जोट आर पूजर ऐसे ही लोता थे। मैसूर दरवा के बाज होन का दावा करत है आर मुगल मन्व्य-नीतिया कबालों के। मोरी-या के शासन-काल में पठारवी शताब्दी म तिनन हा अफगान भागन में आकर बने

1 पी० सी० टसेल्म, 'सैन्सत आर इण्डिया', 1921, पृष्ठ 7, बिहार और उडुप्या, रिपोर्ट, पृष्ठ 247-48

2 थार० ई० एचोवन, 'सैन्सत आर इण्डिया', 1901, पृष्ठ 9, बम्बई, भाग 1, रिपोर्ट पृष्ठ 177

3 वही, पृष्ठ 204

4 जे० एच० हट्टन, 'सैन्सत आर इण्डिया', 1931, रिपोर्ट, पृष्ठ 430

गए थे। इम मूर जा मुगला का बानर निकान दन मे लगमग गफा हा गए थे और रुहा जिन्ही अगारहवी सदा पे बान मरुव प्राप्त कर लिया था, उल्लेखनीय है। एक प्राचिन जाग दुदध वनीना मना का था जा दिल्ली र दक्षिण पश्चिम मे बसे थे।

मुगलमाना म सैयदा को विगोर सामान और मरुव दिया जाता था। किसी समय वी थोट पहुचाना यहा तक क उगे गाली देना भा, पाप था। औरगजेब ने अनुमार उच्च कोरि व मयदा के प्रति मरुवा प्रम हमारे धम का एज अग है। इसमे भी बड़ कर वट अध्याम नान का मान-नत्य है। दस कबील व प्रति गजना नरक को जग्नि में प्रवेश पाने और गगन क वायु का जगान का कारण है।<sup>1</sup>

मुगल जीग पठान लडाकू-यग थे। मुगल शासका के विश्वागपास थे। उन्हें सनिक और गगरिक जिम्मदारिया गापा जाती थी। पर पठाना की साम्राज्यमन्त्रि में मरुह किया जाता था। व अक्सर विग उठन थे और सत्ता का विरोध कर बैठने थे।

अच्छ वग व हिन्दू धम-परिवर्तन के बान नौ मुगलमान कहलात थे और उन्हें श्रेष्ठ का दर्जा दिया जाता था। वे अपन मूल वग जाति नाम पसे और रिवाजा से बिकवे रहने थे। भारत म पग हग मुसलमाना को चाह व नौ मुसलमान हा अथवा उहुन पहा स्थानान्तरित नापा के वगज हा, विशेष सम्मान का दष्टि सं नर्ती देपा जाता था। साम्राज्य अपना कषाण और उगाजिया विदेशिया की प्रदान करत थे, जा अपन को श्रेष्ठतर गमजत व। री और पायर ने बरुपा का इस भावना का अनुभव किया था और लिया था कि र (मुगल) अपने को गरा कहवान म गव मानने थे और काने भारतीय पर गार भी तिनोस्त थे।

मुगलमान भी सिन्धुआ की नी तरह दा यगों को मायता देने थे। जो उच्च वग री थे और राय की बारबाइयो म भाग लन के आवासी थे वे शरीफ (श्रेष्ठ) कहलात थे। दूसर माग जा अधिकतर निम्न हिन्दू गानिया मे मुगलमान बने थे रधील (नीर) गनान थे।

इस प्रकार मुगलमान भी प्राग्भिक कत्रायली वशीय वगीय और जातीय विभेदों म उनसे हग थे। तुरानी इरानिया व विरोधी थे। अपना उन मुगलो व शत्रु थे, जिग्ने उनग सिन्हा री साम्राज्य छान लिया था। हिन्दुस्ताना मुसलमान विलायतीया (इरान द्राग शक्तिगतात के दशा मरुआए हग लोगा) व घमड और आत्मबनाषा री चिडत थे। गिया पगज तान खलीफाभा का भलगना करन, व पर मुग्री उन्हें मुसलमाना न वादगिण रता (मन्व-ग रशीग) मानत थे। मुग्री सिपाभा का नास्तिर (रफीगी) गमाने थे।

मुसलमाना में अनगिनत पशरर जानिया भा थां—उगहरणस्वभा जुताहे बानर जिगा मगी (वाजगा) रतीं।

समाज में थगा ही विघटनामक प्रवनिया रीर राजवातिर मामला मरुव ही उच्च मुसलमाना एताधिवातरता स्वय मत्तमाना में भा वतमान थे जन नि हिन्दुआ में थे।

जाति और वनीन भारत म सामाजिक जीवा का आधार प्रस्नुत वगी ह। इन

1 'अहमम-आमगारा', सख्या 32, मूर पाठ, पष्ठ 36, अनूवित घप, पष्ठ 88

2 मर टामम रो तथा डा० जान प्रगयर, 'दुबेला इन इगिया इन इ सोवष्टी व सेन्पूरी (तउन 1873) पष्ठ 447

दाना में ही रक्त-सम्बन्ध का निदान निहित है। रक्तिन रक्त-सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य तत्व भी हैं जो मानवीय दान-जीवन का आधार बनते हैं। इनमें प्रथम महत्त्वपूर्ण है। यह म्यान की सन्निकृता अथवा पडासोपन का निदान है। मूनि मानव का कुछ मूलमूल आवृत्ताओं का पूरा करती है और इनके उन्मा के बीच कुछ सम्बन्ध पनप उठते हैं जो वा जीवन के तब बन जाते हैं।

जाति और कन्नाने अनिवायन अनादिक है। रक्तिन भाग में उनका बहुमूला निवृत्त-स्वायत्तता और आन्तरिक ठोसपन पेश नव है जो उन्हें विद्यान इकाइयों में माशिन होन के गन्ध है। इसनिर् एक मधुमिनि सिद्ध-ममात्र की चतना कभी विरहित नहीं हुई। एक ही प्रथम में रहनवान आर एव हा भाग वाचनवाल लामा में भा प्रादक्षिण ममान का चतना पण न हा पाई। वामनी पत्रामा जाग्र तमिन अथवा पुनरुत्ती गण्युपना कभी नही पनती। मगठा का बाढ इना एक अन्वाद ना मकती है रक्तिन बाल्यव में यह वमा थी नही क्वाकि कान्तिगरी सामाजिक शक्तिप्रा-शारा जो पाडा-बहुन एकतापन की गई थी उसे ममाल म्कव ब्राह्मण पावाभा के शासन-काय में परम्परानिष्ठता ने फिर से पैर जमा लिया है।

गण्युवाद के निरोधात्मक और मन्त्रागमव दोना पण है। कुछ ममान विरोधन करने लोगों को वर अपने में शामिल करना है पर जय मबवा निवान फेंकता है। निवारण-द्वारा रच गण राजनीतिक ढाव में जिम उनके उत्तराधिकारिया न भा ग्रहण किया राष्ट्रीय आर नैतिक मूला में दये राना मराग इका उनके कन्याग और उनकी स्वतन्त्रता का रणा के लिए मन्त्रपिन एक अनय मराठा जाति का विचार कभी भी प्रमुख नहीं बन मरा।

जाति प्रथा ने अविश्व विस्तन सामाजिक वारों अथवा पणों अथवा राना क मही भारद्वाज को कभी नहीं पनने दिया। ब्राह्मण धर्मिया अथवा अय जानिया न अखित भारतीय अथवा प्राथमिक आघार पर कमा भा मद्यो नही किया और न हा वृषि व्यापार अथवा उद्योग-सम्बन्धी प्रथामा न ममान पगा के मया का जन्म लिया। विभिन्न रानों के बैंगना नीरा अथवा म्कता न अय म्याना में रहनवाने ममान वारों के अन्तिमव क प्रति बहून हा कम उत्तमा दिमाई। नाक कवीर चलय गमनाम और दूनरो ढाव चलाए ना जन्मान भी दृष्टिकोण म ममूलापवादी हान के बावजूद पकतामादी भी रहे।

बर्बाती न भा मिन कर काम करन के प्रति बहुत भारी रचि प्रदर्शन का। चिन्तनाय राजन्धान और उत्तरप्रदेश—इन मय जगू के जाट अथवा अलग-अलग विषयी म्कते रहे। ऐसा ना पनाब, राजस्थान अन्तरप्रथ और मध्य भारत के राजपूतों न विना। कम उत्तर क्कोरों में कोई लगाव नगी या। अफगान पठान बालू और अय म्क ही घम के अनुधाना ये, फिर भी उनका बाई ममान राजनीतिक तथ्य अथवा मण्डल नहीं था।

इन प्रकार न ता मर हिन्दुआ ने और न ही मर मुसलमाना न मिन कर एक कलेले ममान या निर्माण किया। उन समय की अवस्थाओं में उनके लिए यह सम्भव हा नहीं था कि वे धार्मिक मतभेदों में ऊपर उठ कर एक प्रादक्षिण समुदाय के रूप में मण्डित होतें। इन बहुगमिन अवस्थाओं में निवाय मधुमनरक एवना के तब बहुत ही कम थे और ये मगातर विविधताओं क, आट मचेन करने रहे।



## 6 ग्राम

जाति एक सामाजिक धार्मिक संस्था था, लेकिन बहुत ज़ारी आर्थिक मसाले भा उगमें निहित थी। यदि सामाजिक धार्मिक दृष्टि में समाज छिन्न रूप में जुड़ा जातियों का एक समूह था तो राजनीतिक आर्थिक पक्ष में वह उन गावा का एक पक्ष था जो उसका आधिन और प्रादमिक इकाइया थे। जो स्थिति आरम्भिक मध्य-युगीन यूरोप में अंग्रेजी मार अथवा फामीसी सिग्निफ़ूरी की था, वही अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में ग्राम की रही। लेकिन भारतीय ग्राम अपने उद्भव, वाय और सघटन में अपने यूरोपीय प्रतिरूप से भिन्न था। यूरोपीय मनर एक सावदेशिक युद्ध और हिंसा की चुनौती का सामना करने के लिए अस्तित्व में आया था। गांव एक जीवन पद्धति वर्णाश्रम धर्म को लागू करने के प्रयास में निर्मित हुआ था। पर वास्तविकता मून धारणा में बहुत दूर पड़ गई यह कहना अतर्निहित बल्लना को नज़रअंदाज़ करने के लिए उपयुक्त तक नहीं है। इस तथ्य से भी इसका खण्डन नहीं होता कि अठारहवीं शताब्दी का अराजक परिस्थितिया में गावों ने दावारों बुजिया और मीनारों से घिरे किनादन्द गढा का रूप धारण कर लिया था। यूरोप का गाव एक इतात्मक सगठन था। वह मालिक और गुलाम लाल और कामगार की एक सम्बद्धता था। आर्थिक व्यापार और रानिक ढांचा दोनों ही उसके युद्धपरक उद्देश्य का घोषणा करने थे।

तथा तक भारतीय ग्राम का सम्बन्ध ही धरती और मालिक में बंधे कामगार अथवा गुलाम का वहा कोई स्थान नहीं था। न ही भारतीय ग्राम लटाइया में बोई सीधा भाग लेते थे। युद्ध छोट-बड़े रानाओं और उन जाति का काम था, जिनका धर्मा ही लडना था। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से पहले युद्ध के निरन्तर कशाघाता से जितना भारत पीटिन रहा, उनका मद्यपि अय कोई देश नहीं रहा तथापि भागत के लोग कभी भा सनिक जाति नहीं बने। ये विचार हनरो मन ने प्रकट किए हैं। भारतीय गाव की प्रधान चिन्ता थी—धरतीमाता की पोसना जिनसे यह मानव-जाति के पोषण के लिए पयाप्य अन्न द सकें। इस पवित्र वाय में ममा जानिया को सहयोग देना चाहिए। ब्राह्मण का दानी पूजा, भविष्यवाणां और धार्मिक अनुष्ठानों तथा उत्सवों के सचालन-द्वारा, दानियों की सुरक्षा और सरभण-द्वारा विसाय को अपने धन-द्वारा, और कारागर का अपना भवा-द्वारा। धरती की उपज में से प्रत्येक को उमवा पाश्चिमिक मिलना चाहिए। प्रत्येक को इस साम्राज्य उद्देश्य के प्रति अपना वाय अर्पित करना चाहिए और फल में से अपने अनादान के मूल्य के अनुसार हिस्सा लेना चाहिए।

जो मुसलमान गावा में बस गए थे, वे भी उमी रग में रग गए। हिन्दू-सघटन की प्रन्मा उनके मा पर हावी थी। धर्म उपासना, उपवास और त्योहारों में ता मुसलमान भिन्न थे पर उन्हें मनाने के तरीकों में हिन्दुओं की बहुत मा बिनपताण उन्होंने पता कर ली थी। गाव के साम्राज्य मला धार उत्सवों में दोनों ही मित कर भाग लेते थे। एह अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लिए जो त्योहार पराए थे उनमें भी दाता हिस्सा लेते थे।

उन समय की अवस्थाओं में ग्राम पद्धति एक एमा आन्तरिक सघटनता प्राप्त कर था था जो उते स्थिरता और सुरक्षा प्रदान करता थी और जो प्रत्येक को उत्तरा

स्थिति के अनुकूल कृत्या में नियुक्त करता था। लेकिन इनके माय ही वह सामाजिक अवस्थाओं को पूरा तरह उड़ीभूत भी करता था। ममाज का स्वरूपण प्राप्त बना दिया गया था। व्यक्ति जम से अपन का के मनाजन्तर से बधा था और अपनी अवस्था में परिवर्तन जान का उस कोई अवसर प्राप्त नथा था। गाव रुट विभागा म बटा था। एग छोटी-सा अल्पमध्या को ही वह जीवन की मुविधाए, प्रतिष्ठा और आराम प्रदान करता था और विशान वसुधला कठोर श्रम पूर पादन और वर्तनिक अपमान का दण्ड भुगतता था।

## 7 गाव और वस्वा

गाव आधिक बत्र का घुरी था। कृषि उद्योग और व्यापार, मय उसी के चारा ओर घूमन थे। इस दृष्टि से भारत उन मध्य-युगीन युरान म मिन्न या जहा का आधिक जीवन दो स्रष्टा में विभाजित था, अपान कृषि गाव का वाम था और व्यापार एव उद्योग वस्त्रे था। भारत में नगर ये स्या पर वे मात्र पणजीवी थे। कुछ राजनीतिक सत्ता के गठ ये कुछ घम के केंद्र थे, कुछ उदिया अथवा नडको व मगम पर स्थित थे लेकिन उनमें से बहुत कम ऐसे थे जिनकी सम्पन्नता का अथवा आबादी का कारण कोई स्वतन्त्र उद्योग अथवा वाणिज्य था। बनियर ने गामय का उद्योग व फनस्वरूप नगरो का उभटन दखा था। उगगरा के निग राहोग उजाड हानत म था क्वाकि दहा का शासन तिल्लो अथवा आराम में रहता था। उनत दखा कि दिल्ली अथवा आगरा की अधिराज आबादी मेना का उपस्थिति पर निर्भर करती थी।<sup>1</sup> वान्धव में, दिल्ली के निवासी शाहा सेना के अग थे। उनके मामूली उद्योगो का अधिकतर भाग प्रभुत्वमम्पन्न और अल्पसंख्यक राजनीतिक सामन्ता सम्पन्न कुलाना तथा उनके तबका का उरूना को पूरा करने में व्यस्त रहता था। नगर कारीगर-परिवारों का अथवा बाजार में मान भाव करनेवाले व्यापारियों का जागली भौंड और उनका उत्तमता में व्यस्त नहा रहत थे। वहा नागरिक मभाए नहीं था जो उनकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करनेवाले लाड अथवा निश्चय को चुनौती दे मरतीं। अठारहवां शताब्दी के ममाना गाव और उना मनाज व अरुद। गाव में कोई तुनना नहीं था क्वाकि इगण्ड म कम्बा व बाहर का आबादी का एक सडा भाग खेना में नहीं बलि पूजन अथवा आन औद्योगिक वाना म अपनी जीविका चताना था। -

भारतीय गाव में कृषि प्रमुख था और जा जतिया मून रूप में दूरर धधे करती थी वे भा गीग वम क रूप में कृषि को अपनाती थीं।

## 8 गाव सामाजिक जीवन का केंद्र

भारतीय गाव समाज की सक्रियता का केंद्रस्थित था। वर ग्रामाज का पर प्रदान कना था जहा वह रहता विवाह करता और बच्चपन करता था। वह अपने दत्ताज्य शम-देयनाज्य और कुन-वनाओं तथा उनक मदिग का मदान था। वह उनका जादिका

1 एड० बनियर, 'ट्रैवल्स इन द मुगल एंपायर' (बान्स्बन एंड स्थिथ, 1934 का संस्करण) पृष्ठ 384, 282

2 एग एण्ड पोस्टग्रेट 'द बामन पीजुल', पृष्ठ 123-24

सम्बन्धी हलवना का रगमच था। वह उस भूमि प्रदान करता था जिम पर वह छाने-बपडे और घर का अपना आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फसल उगाता था। यह उसके मास्त्रिज और गाम्प्रत्यिक जावन का भा केन्द्र था।

गाव म घर मून रूप म ता आश्रय के लिए ही बनाए छात थे, लेकिन प्रदेश प्रवेश म बहुत अधिक मिश्रता रखनेवाला जलवायुगत अवस्थाए उत्तरी मरचना का स्वरूप निर्धारित करती था। प्रमुख अंतर छत डालन म था छपर अथवा छपरैल पडी डालू छत जयवा लगने का कडिया पर सजो चपटा छने। गारे की दीवारें और कुटा हुआ काग पत्र गमामाय था। सनिन घनो जमीनदारा उच्च बग के सदस्यो निनाना बारीररा आर अशुद्ध धारा करनेवाली जातियो आदि के समान-स्तर के अनुसार घर कितने ही प्रकार के होते थे। उमादार के घर के सिवाय दूसरे घर पत्नी घुमानदार गनिया के लोको योग विच विच करके बन्द बन होते थे। माप्य और पगु एकदम गाम्प्रत्यिक रूप म और स्वास्व्यजनक अवस्थाया की पूरी उन्क्षा का जानी थी।

एक गाव का आबादी म सामान्यत कामगार अथवा श्रमिक जातिया उच्च जातिया और अधकारा होते थे। श्रमिक जातिया में किसान और बारीगर सम्मिलित थे। बारीररो म या ता साफ धये करनेवाले लोग थे या अछूत। उच्च जातियो में ब्राह्मण धनिय (जमाना-बग) और बश्य (ब वाग जा व्यापार महानो आदि म लगे होते थे) शामिल थे। इस प्रकार गाव के मुसलमान भी हिन्दू उच्च जातियो के समानान्तर उच्च बग (गणप) अथवा नान धधा म लगे तीव बग (रघील) से सम्बन्ध रखने थे।

जातिया का सम्या निश्चित नहीं था। पर औसत आकार के गावों में पन्द्रह से बाग तक जातिया रता था। गाव का ठान-ठीक काय-मचालन इही के परम्पर-मर्योग पर निर्भर करता था बराबि ये ग्राम रूपा शरीर के अंग थे।

## 9 ग्राम के षाय

ग्राम का मर्यादा गमष्टन मुख्यत तान प्रकार के कामा म निवृत्त होगा या (1) सामाजिक धार्मिक तथा मास्त्रुतिक (2) आर्थिक और (3) प्रशासनिक तथा राजनातिक।

### (1) सांस्कृतिक

सामाजिक धार्मिक और मास्त्रुतिक काम का अर्थ था जाति के आन्तरिक मामलों का प्रबन्ध जिसम गहमोज विवाह तथा मर्यादा के परस्पर-सम्बन्धों के नियमन से सम्बन्धित थे। अन्तर्जातीय मान्य सामाजिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक और अनुष्ठान मताया गिना मनोरञ्जन और मन्त्र-मन्त्र भा इसम क्षेत्राधिकार म जान रहे। इस काय के उचित विधान के लिए जातीय मर्यादा जाति-मचायत।

### (2) धार्मिक

(क) धार्मिक जग तक धार्मिक कार्यों का सम्बन्ध है, ग्राम एक आत्मनिर्भर गाँव था। इसका प्रभाव उत्पादन-नाय था कृषि। कृषि और वागावरी गौण काय थे। मर्यादा मर्यादा आदि काय विभिन्न प्रकार की फसतें उगाते उनके विवरण एवं उपयोग का प्रथम करने के प्रधान काम में गहायक थे। गावों में जीवा स्वर बहुत नीचा था और धार्मिक अर्थ-व्ययस्था गुजार के स्तर से ऊपर कठिनाई म हा पदुब पाती थी।



और पटमन पाड़े रगा के लिए नील और मजाठ उस वानस्पतिक रंग, चवाने के लिए पान शरवत तथा गे के बीजा और मय जादि की माग का पूरा करने के लिए ताजा अफाम भाग और तम्बाकू वह पत्र करता था। नगद रुपये पान के लिए वही नोन गन्ना गरमा रू और जमा उगाता था।

विस्तृत बजर उमगा आर जगला के रूप में उसे उन पापुजा के लिए लगभग अतीत चरागाह प्राप्त थे जो कृषि-कार्यों में उमकें ताम आन के तथा जो दुग्ध मक्खन और चमक के प्रचुर स्रोत थे। उमके पास खाने का काफी था। आज का पश्चिमा अवरयात्रा की तुलना में उसका जीवन-स्तर नाचा जरूर था पर अग्रणी गसन-वाल के अपन वशगा के कुवाबले उसकी अवस्था सुविधापूर्ण और खडिया था। अठारहवीं शताब्दी में चूनि भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं इसलिए घटिया धरती जोतने की कोई आवश्यकता नहीं थी। भारत की जायादी जपगाहृत कम था—दल और चौदह करा के बाव। मनुष्य का वास्तविक मूल्य वहा ऊंचा था और अधिक अच्छा जानन बिनाने के लक्ष्यर उसके लिए काफी थे।

मध्य-युगीन भारतीय कृषि की कुछ अनोखा विशेषताएँ थीं। उत्पादन के साधनों में दो विशेष रूप से महत्वपूर्ण थे—भूमि और श्रम। जहा तक भूमि का सम्बन्ध है, वह इतना बहुतायत में थी कि उसके लिए कोई प्रतियोगिता नहीं थी। गणना करके यह मान्य किया गया है कि भारत में एक प्रदेश का जो आज का अपना बवल आधी भूमि पर ही लागू न अधिकार किया था। अथगोत्रा में दो तिहाई के ताज चौथाई तक भूमि लागू न बन्द म थी। एसा ता प्रश्न गी था, जहा किमी भा जाह भूमि पर दबाव चरम सीमा तक पहुँचा था। यदि कोई व्यक्ति भूमि चाहता, तो ताज माफ करता और शेना के लिए उम पर अधिकार जमा लेता।

मुगल साम्राज्य का सर्वाधिक केंद्रीय भाग था, आगरा से डावा तट का मका और यमुना का तटवर्ती प्रदेश। लेकिन इस सम्पूर्ण विशाल पाटी में जगला की बहुतायत थी। मबुरा उम समय तक प्रसिद्ध बरमाना जान के बीच अस्थिर था और अवरक परा शरा का शिपार किया करता था। उमीनवीं शताब्दी के आरम्भ तक अष्ट्र घटु मध्यत जगला का एक पट्टी बना रहा। इनाहारा में बनारस और गौतपुर तक का कर्णित दल आज के मुवाबले में एक चौथाई का जोर घापरा के लिए दू परिमाण मानके से आठवें हिस्से के लगभग था। वारा में जगला हाथा घूमा गन थे। जालमगद गात्रापुर, गार्यपुर आर ब्रता के अजिनाश भाग में खना गही होता था। आर हाथा तथा गड-जरो मय पनु दल जिता में भू हुए थे। जिहार में आज कर्णित भूमि कुन क्षेत्र का जो तिहाई है लेकिन अठारहवीं शताब्दी में पाचवें हिस्से से अधिक परफता नहीं उगाई जाती थी। उत्तर बिहार में तिट्टून चम्पारा मुजफ्फरपुर और दरमगा धाता में बक थे। पश्चिम-बंगाल में पनी आवाही थी पर पुन-बंगाल दनदना और उजाड क्षत्री म भरा था।

मुगला के अधिन कर्णित क्षत्र में कुछ बढि हुए विशपकर गगा की पाटा में। दिल्ली आगरा, अवाध्या प्रयाग गौतपुर, बनारस पटना राजमहल बंवावा, बिहमपुर और टिगा एक महत्पूर्ण क्षेत्रों में आवाग और धेना दाता बर्दी। पर उन्नामर्वा गताग के अवरयात्रा की मुता में आबाद, शिप था और बरर तथा अनन शत का अनुगात बदा बदा था।

इन प्रवस्थाओं का स्वामित्व परिणाम यह था कि कृषि-योग्य भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी और भूमि को जब तक नामांकित कोई मूल्य प्रदान नहीं किया गया था।<sup>1</sup> भूमि को कायम नगर्य थी। सन 1807 में सर टामस मनरो लिखा है 'इसने अधिक माफ वात और कुछ नहीं है कि भारत में, मालाबार-तट व अनिखित भूमि-सम्पत्ति अभी अस्तित्व में नहीं रही।<sup>2</sup> पंजाब में "अंग्रेजों की विजय से पहले भूमि की किसी बजाज थी।"<sup>3</sup> सर जान स्ट्रेचो ने लिखा है 'जब कि हमारी नीति निजी भूमि सम्पत्ति की वृद्धि का प्रोत्साहित करती रही है पहले की सरकारी ऐसी सम्पत्ति के अस्तित्व को बढिनाई व ही भावना देती थी।<sup>4</sup> एलफिंस्टन सकेन करता है 'व्यवहारत प्रसन्न यह नहीं है कि सम्पत्ति किममें निर्मित है बल्कि यह है कि उभय का कितना अनपात किस पदा की तरफ बाजिव है।<sup>5</sup> गान्धर्वेशन रिपोर्ट में बनेट कहता है 'अभी तक चाहे व्यक्तिगत हो या सामुदायिक निजी सम्पत्ति का यहाँ कोई चिह्न नहीं है।<sup>6</sup> सर जाब वेम्बेच के उद्घरण से भी यही पता लगता है 'हम यह बात प्रायः भव जान है कि चल सम्पत्ति की तरह एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुचनेवाली पूरी तरह अधिष्ठत हस्तांतरणीय एवं विश्व-योग्य वस्तु के रूप में भूमि-सम्पत्ति यहाँ एक प्राचीन सम्पत्ति नहीं है बल्कि एक आधुनिक विशिष्टता है।<sup>7</sup> एक लम्बे बाद विवाद के बाद बेडेन-भावल ने अन्तिम बात यह कही है 'स्वामि-व धरती में नही उभय के हिस्सा में कृषि-कारों में जयवा राजस्व की अदायगी में है।

प्रचुरता के ये कारण भूमि अथ सम्पत्तियाँ की तरह नहीं बन सकीं। वह बढिनाई से ही बेचा जाती था और यहाँ लागू है कि इन युग में भूमि का गिरवी रखने, उसे बेचने और हस्तान्तरित करने के बार में इतना कम मुता जाता है। दक्कन में अठारहवीं शताब्दी के दिनपत्रों का गणनावली इस प्रकार है कि म्यामों ने खरीदार से प्रापता की कि वह उनकी भूमि लेंगे आदि। फलतः उनके स्वामि-व के प्रश्न का निणय करना व्ययन्न नहीं होगया है। बाम्बव में कजा करना और इस्तेमाल करना सम्पत्ति के बेचन इती दो तरगा से लोग का अलग परिचय था। इनसे व अधिकार उदभूत होते थे, जो वगतानुगत थे और सिद्ध-बातुन व अनुसार उत्तराधिकार में प्राप्त किए जाते थे। लेकिन इनके साथ कुछ शर्तें लगी थी। एक विमान और उनके बाज धरती के एक टुकड़े जयवा टुन्ना का तब तक अपने अधिकार में रखे और उनका फलोपयोग कर सकते थे जब तक उनका उभय हाथ आ वे राज्य का अदा करने रहते थे। उन्हें बेदखल करने का कोई प्रसन्न हा पना नहीं होना था। लेकिन यदि वे छेन जानने में उभय मौनता दिखाते थे, तो उन्हें दनाम न्याया जा सकता था।

1 'बंगाल रेंवेन्यू कालटेरा', 20 जून, 1808 (सकथी कायम ऐण्ड टकर की रिपोट, पृष्ठा 67)

2 मनरो का पत्र, दिनांक 15 अगस्त, 1807, पृष्ठा 2

3 एल० एम० थानटन, 'भूमि-सम्पत्ति ऐण्ड मनी-लेण्डिंग इन द पंजाब', पृष्ठा 66

4 सर जान स्ट्रेचो, 'इण्डिया' (1880 का संस्करण), पृष्ठा 80

5 एलफिंस्टन 'हिस्टरी ऑफ इण्डिया' (1916), पृष्ठा 80

6 टम्प्ले सो० बनेट, 'सेटलमेण्ट रिपोट ऑफ गॉंडा (अपघ)', 1878, पृष्ठा 48-49

7 बेडेन-भावल, 'सग्ड मिस्टमस ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' 1882, खण्ड 1, पृष्ठा 219

इस प्रकार वास्तविक सम्पत्ति की भारताय परिभाषा एवम् अनाधी और समकालीन पुरातन की भावनाओं का पूणत भिन्न थी। अठारहवां शताब्दी में यूरोपीय समाज का अपने सामन्त नगणों का त्याग दिया था और चरमरूप में स्वामित्व तथा व्यक्तिवाद का प्रवृत्तिया का ग्रहण कर लिया था। उसमें साम्राज्य जपरिहाय अविच्छेद्य, नित्य-असंगम पवित्र अधिकार सिद्ध हो गए थे और उन्हें स्वतन्त्रता व्यक्तित्व सम्पन्नता और सम्पत्ति का आधार समझा जाने लगा था। स्वायत्तता न स्वामित्व का अनिश्चित तत्व को विशिष्ट अधिकारों सुविधाओं शक्तियों और उम्मितियों के रूप में निर्दिष्ट कर दिया था तथा इन्हें विशिष्ट व्यक्तियों में निहित करने विशिष्ट तरीकों से प्राप्त करना दिया था। सम्पत्ति में भूमि का चरम स्वामित्व का विचार अंग्रेजों से पहले के युग में भारत के लिए पराया था।

दूसरा तत्व अर्थात् 'मम वम मात्रा म उत्पद्यथा। इतिहास' मन्त्रा महत्त्व और मन्व्य अधिक था। राजा का वृषि-शक्त का दान का विधि उत्पन्न करने थे और अपने सुवर्णों तथा अन्य अधिकारियों का समय-समय पर निदण्डन करने थे कि जिसका वास्तविकता ही उनका प्राथमिक कर्तव्य है। असाध्य प्रकृतियों और अत्याचारों के विरुद्ध विद्वानों के पास सर्वोच्च प्रभावशाली हथियार था कि वह अत्याचार करके गांव छोड़ दे और यदि आवश्यकता पड़े तो जंगल साफ करके नया बसना बसाने के लिए पशुओं के बनों में आश्रय लेते।

इन अवस्थाओं में परिवर्तन देग का सुझाव अथवा कामगारों की आवाज से ही सम्भव थी। लेकिन विच्छेद का यह चरम निदान प्रायः प्रयास में नहीं जाता जा सकता था। भारताय विमान धर्मदान और न्यायशास्त्र का इतिहास एक बल-मण्डल और अत्याचारों का यह चरमकाण्ड कहना था (जिनमें बचा जा सकता था)।

(क) सामोद्योग गांव के निवासियों का प्रधान धंधा बनता था। इससे उनका प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरा हो जाती थी। लेकिन वृषि-वायु शिल्पकारों की सेवाओं के बिना नहीं चलाए जा सकते थे और कुछ अन्य आवश्यकताओं का भी पूरा विद्या जाना पड़ता था। इस प्रकार हर गांव कितना ही बड़ा और बारीकिया का घर था। लेकिन उस समय सामाजिक व मूल सिद्धान्त आज में बहुत भिन्न थे। उसमें राजा के अत्याचारों का गांव का ही सामर्थ्य था। अधिकतर स्थानों पर प्रायः वृषि-वस्तु का बर्तन बना जाता था। अधिकतर मूल और बर्तन गांव के लोग ही बनाते और बूटा जाता था। तब निवास जाना था और शस्त्र बनाई जाता था। बाजारगण—बुलारे, बुलार बर्तन बुलार बर्तन और अन्य—गांव का आवश्यकताओं का पूरा करण का विधि ही काम करने थे। उनका अधिकतर उलाहना का मन्व्य वस्तु के बदले पद कीमत का रूप में नही बरिच प्रदानकृत विधि का रूप में चलाया जाता था। बाजारगण का पार करने के समय उपद्रव का एक निश्चित विद्या दे दिया जाता था। अधिकतर बाजारगण का जाना छोटी छोटी उमातेहानाया जा विमानों में भिन्न भिन्न का बर्तन पूर्ण कर जाता था। यहाँ अत्याचारों का भाग और अत्याचार इतिहास और अत्याचारों का मूल अर्थ, सामर्थ्य का विद्या कठिनाई तथा लागू पाते थे।

(ग) व्यापार गांव के भीतर और बाहर बाजार व्यापार का चलता था। व्यापारियों का एक दुकान होती थी और बाजार का प्रकार का मन्व्य भी होता था। बाजार में एक निश्चित विधि बरिच गांव में हाट चलायी थी। बाजारगणों का अत्याचार

बन्धुएँ खरादा जा सकती थीं। निवट और दूर में व्यापारी दम हाट में आन घे और मृन्म सक् के दोना और अपनी चाँजे पैना रहे थे। कुछ प्रमुख ग्रामाज-वन्दा में पशु-मैने नगद घे और व गाव बँल तथा साह म्हरा-न-वचने के अवन्त प्रान्त करत थे।

दिन अपना गान नगद चुकाना हाता था वह किन्नन राना र्निर्दिक्त उन का स्थानाज गत-व्यापारी के पान अथवा पानक व गजार म न जान का बाध्य था। दम सौँ में उनकी अनिवाये आवरणकता दूमर पम का हाय ऊपर कर दती था। इत प्रकार गाव का उजन का एन छोटा-ना भाग बाहर निकल कर उन नागरिक क्षेत्रा में पहुच जाता था जहा उनकी माग होती थी। लकिन यह र्मावेण एक-पा काग्वाइ ह्य था। राजन्व के रूप में निव-नेवाने घन के बन्ध में कुछ नहा मिलता था जोर दन प्रकार ग्रामाज पक्ष को प्रतिदान गुन्व नियान की हाँन उठाना पडती थी।

एन ओर ग्राम का जात्मनिभरता और दूमरा गार नारा व नागरिक र्निष्ट व पिछानपन व्यापार के विन्ना में गतिरात्र पना करणदान तव थ।

गाव बाहर स बहुत कम चीजें मगाता था जोर जा चाउ उन वाह-न-वन्दा पडता थी व प्राय भाग भरकन और कम मून्व को हाँन थी। इमतिग नवा दूरी का अन्तर्-व्य व्यापार कभा भी विगेय व्यापक ही रहा। लेकिन वस्तुआ का कुछ सचरण प्रान्त स प्रान्त में अवश्य हाता था—उत्तरप्राय बगाउ मून गहू शक्कर अफोम और नमक मगाता था और अपना रेशम तथा चावन भारत के विभिन्न भाग का मरना था। गुन्वान अन्न मगाता था और नाद कफा का पनवें दाहर भेजता था। पूर्वी-पश्चिमा ततीय प्रदेण चावन शक्कर तथा मरखन मगात थ और नमक र्ना मिच बचने थे। दुनव दवाना जोर नरखेइ ते नाव इकटठा किना जाला वा जोर वन्तरगाहा का भज र्गिया जाता था।

कुन मिता कर दन के आकार और उनका जावादा का तुचना स मान का जावा गमन पर्याप्त नहीं था। इसके बहुत-स कारण थ यानादान-नाप्रता का सराबी म्यतीय यानापात का कठिन और महंगा हाता धामजनक जन्तर्-व्य प्रयावा को अधिकता अठारहवा शताब्दी की जराइक राजनातिक अवस्थाएँ व्यापार में स्वतरा और ग्रामीण जावादा का निम्न स्तर। पकती न-कें या नहीं आर जावाामन भारवाही पाना व हा द्वारा हाता था।<sup>1</sup>

## (2) ग्राम-प्रशासन

गाव का तासरा महत्वपूर्ण काय था प्रशासन। दमक दा पम थ जान्तरिक जोर बाह्य। ग्राम-सम्या शान्ति धार मुग्गा कायम रखता था और पुनिम, मजिस्ट्रेट तथा पामपातिका के वनव्य पूर कती थी। दस दष्टि स यह एक स्वायत्त इकाई थी और इसके लिए ग्राम-सचायत उसका माधन था।

धाम-सचायत जानि-सचायत स पुयक् या जोर मध्य-पुगा में उसका परम्पराएँ उतर में यदि पूरा तरा गष्ट नहीं हो गई था ता धुधना अवरन ए गड थी। इनका धार स्वतन आर गुदर दक्षिण में धाम-सचायतें अठारहवा शताब्दी वन्त तक दिष्ट मान रहा दक्षिण उत समय तक उनकी प्राधान गति तुल्य हा चुका था। उनका प्रान्त

1 गाहन के 'रेवेन्यू म-पुत्रत' के अनुसार, दकरन में बन्तगाओ अप्रेजों-द्वारा सन 1835 में चानू की गई





कार में अपना-अपना पग प्रस्तुत करते थे। फिर गवाह बुलाए जाने थे और यदि आवश्यकता पड़ती थी, तो वे शपथ लेते थे। यदि किसी स्थान पर स्पष्टीकरण की जरूरत पड़ती थी तो गांव के पटवारी की स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा जाता था। पचायत का निर्णय उचित विचार-विमर्श के बाद ही दिया जाता था। अभियोग में जीतनेवाले को ही भाधारणतया डिग्री लागू करने का भाग सौंपा जाता था। यदि वह विफल रहता तो स्थानीय कमचारियां की सहायता ले सकता था। वकीलों का कोई रिवाज नहीं था। चांदी प्रतिवादी के बीच समझौते के तथा निर्णय-मत्र अथवा आदेश-पत्र के सिवाय ज्ञापनवाहियां का कोई लिखित विवरण नहीं रखा जाता था।

पीडित पग का उच्चतर अधिकारी के पाम—पटेल में (मव डिवाइजन) के शिक्षदार अथवा परपने (जिला) के मामलातदार के पास—अपील ले जाने का अधिकार था। यदि वे अपील के औचित्य से मन्तुष्ट होते, तो पगडे का निर्णय करने के लिए दूसरी पचायत नियुक्त कर देने थे। जब कभी आदेश अथवा दण्ड भ्रष्टाचार अथवा मदम्यो के दुर्व्यवहार में प्रेरित होना था अथवा उसमें याय अथवा प्रया की कोई गम्भीर उपद्रव निहित रहती थी तब एक नई पचायत का आदेश दे दिया जाता था।

हर गांव एक स्वशासी इकाई था जो सकेन्द्रित सम्यात्रा के एक मोपानिक क्रम के माध्यम में सर्वोच्च केन्द्रीय सत्ता से जुड़ा रहता था। गांव वह नींव था जिस पर राज्य का पूरा ढांचा आश्रित था। यह धन देता था जिस पर सरकार की सक्रियता निर्भर करती थी। राज्य को राजस्व की मांग उसके प्रमुख सभर्ता गांव के सम्पत्त में लाती थी।

भूमि राजस्व का संगठन मध्य-युगीन सरकारों के राजनीतिक निर्माण में स्वभावतः ही सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता था क्योंकि इस मस्या की मजबूती और कुशलता पर ही राज्य का जीवन और उसकी शक्ति निर्भर थी।

भारत के विभिन्न भागों में भूमि राजस्व की पद्धति में भारी विषमता थी लेकिन यह विषमता सामान्य मूलभूत योजना का प्रभावित नहीं करती थी। प्रमुख अन्तर किस्मान और राज्य के बीच वर्तमान विचौलियों में सम्बन्धित था।

मोटे रूप में दो प्रकार के गांव थे उत्तर के और दक्षिण के। उत्तर की विस्म में जा मिथुनामा के मैदान में पाई जाती थी, गांव की उपज के तीन प्रधान हिस्सेदार थे उत्पादक, विचौलिये (जमींदार और जागीरदार) तथा राज्य। दक्षिणी विस्म अथवा केन्द्रीय पठार, बरकन और तटीय प्रदेशों के गांवों में उपज मुख्यतः दो पक्षा में बाटी जाती थी किमान और राज्य। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि यह विभाजन मन्विम विजय का परिणाम था।

लेकिन इन दोनों प्रकार के ग्रामों में दा तरफ के लोग रहते थे। वे, जो राजस्व देना प्य और वे जो नहीं देना प्ये। दूसरे वर्ग में वे लोग थे जो गांव की आवश्यकताओं को पूरा करते थे (1) दान लेनेवाले—पुजारी विद्वान् ज्योतिषी तथा मन्त्रिदा मन्दिरा और गुरुवरों के सेवक, (2) विद्यवाए और पेगन पानेवाले (3) गांव के सवक—हुरकारे चौकीदार, फसल के रक्षक, भिन्नी, सीमा के रखवाले (4) गांव के कारीगर और संवक—कुम्हार ठंडे चमार, बड़ई घोवी नाई दुवानदार ननविया महतर, आदि (5) भूमिहीन श्रमिक और दरिद्र लोग जैसे कि फकीर और भिक्षु। दक्षिणी ग्रामों में खेपक और कारीगर धाराबन्ता (अन्न में हिस्सा लेनेवाले बारह वर्ग) कहलाते थे।

राजस्व जदा करनवाल लोगो में ब्राह्मण स अछत तक विभिन्न जातिया के काश्त करतया वहां न रहनेवाले किसान—जिनका घर एक गाव में लेविन खेती के लिए ठेके पर ली हुई जमीन दूमरे गाव में होरी था—मम्मिलित थे। फिर इनमें जमींदार भी हो सकते थे—वे छोट जमींदार जो अपनी जमीनें स्वयं जातते थे और वे बड जमादार जो अपन छत असामिया से जनवाने थे। यह वग उतर के प्रामा में मामाय था, पर दमिण मे अपवाद रूप में था। इहे उतर मे जमींदार गुजरात में गिरासिया कोवण में खोट और बरार म मालगुजार कहा जाता था।

इन दा वगों क अतिग्रिन याम और राज्य के कुछ अधिकारी भा गावो म रहते थे।

इन सबमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण था धरता का जोतनेवाला यह किसान जिसके श्रम और पसाने से यह विशाल समाज-यन्त्र गतिशाल रहता था। एटनस की तरह वह राज्य क असह्य भार को अपनी पीठ पर ढोता था। समस्या यही थी कि सदा बढ़ने रहनेवाले इस बोव को ढोल के लिए उसे तत्पर कैसे रखा जाए।

आज के युग में अनुशासन और व्यवस्था कायम करने के लिए अन्तिम उपाय के रूप में ही शक्ति का प्रयोग किया जाता है। उस युग की अवस्थाओं में शक्ति प्रयोग सरकार का सामाय शस्त्र था। अपनी मत्ता को बनाए रखने के लिए आन्तरिक शान्ति भंग करनेवाला और उद्वत लोगो क विरुद्ध निरन्तर मतकता शासक के लिए बहुत आवश्यक थी। गतवना उन लालची पडोमिया के विरुद्ध भी जरूरी थी जो उसकी दुबलताबा और कठिनाइयो का लाभ उठाने के लिए सदा तयार रहते थे। शक्ति और सम्मान मत्ता के परिचायक थे। चमचमाते शम्भो और आतक पैदा करनेवाली साज-सज्जा म युक्त सेना का काम ही शक्ति प्रदर्शन था। और, सम्मान उन सावजनिक कार्यों मे बड महत्ता था जिनसे शान शौहन प्रचुरता बभव और शक्ति टपकती हा।

युद्ध और शान्ति के इन स्तम्भा का ठोम आधार था गाव का किसान।

दाना (ग्रामीण) और प्रापक (राज्य), दोनो के ही लिए स्थिति गृहियो स भरी थी। सरकार की कठिनाइया दुहरी थी (1) किसान से अधिकतम धन कैसे खीचा जाए, (2) सकडा हजारों झापडा और विशाल महाद्वीप म बिखरे गावा में रहने वाले एक-एक किसान से आय की नन्ही नन्ही बूदो को कैसे इकटठा किया जाए।

आदिम कालान तरीकों से काम करनेवाला किसान इतना बठोर श्रम करने पर विवश था, जिसका प्रतिफल बहुत ही नगण्य था। अपनी उपज से उसे कृषि क निश्चित देय तथा सरकार क कर चुकाने पन्ते थे। जो बचता था वही उसके कष्टो का पारिश्रमिक था। हिसाब लगाने पर पता चला है कि कुल उपज का पन्चीस प्रतिशत भाग खेती के व्यय में और पाच से पन्ध्र प्रतिशत तक निर्दिष्ट देनदारियो में चला जाता था और किसान एव उसने परिवार के वर्ष भर के भरण-पोषण के लिए तथा राज्य की भाग को पूरा करन के लिए साठ प्रतिशत बच रहता था। किसान की उपज की अल्प मात्रा का ध्यान में रखते हुए उमका कौन-सा अंश सरकार को अर्पित किया जाता है यह बात भारी महत्त्व रखती थी।

स्थिति का सबसे अधिक उत्तेजक पक्ष यह था कि गरीब करदाता जो धन देता था, उसने प्रयोग के बारे म पूरी तरह भ्रमरे में रहता था। अदायगी के औचित्य के विषय में जो बात उसे ज्ञात थी, वह थी प्रथा परम्परा और एक रहस्यमय विश्वास कि उसका

देय उसके जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा का आश्वासन है। वास्तव में उसकी अनगिनत पीढ़ियाँ अपनी इस पत्र में मेरा राजा का हिस्सा बन की अभ्यन्त हो गई थीं। ऋषियाँ ने उन विश्वास दिलाया था कि राजा 'प्रजा की सम्पत्ति का लिए उपन का अंग उसी प्रकार से बना है जिस मूल द्वारा-मुना करके धरती को लौटा देन के लिए उसका पत्र सोच बना है।<sup>1</sup> अबुन पत्रन, जो ममाज के चार भागों में से एक विमान को मानना है, निखना है उनके धर्म से जीवन-बैल में परिपूर्णता आती है और उनके कार्य में शक्ति और मुख्य निम्न होता है।<sup>2</sup> उनका विचार में, सरकार का वही "प्रतिनिधि श्रेष्ठ है जो किमान की रक्षा करता है प्रजा की देखभाल करता है, देश का विकास करता है और राजस्व को बढ़ाता है। -

इन भावनाओं की उच्चता के बावजूद तब यह है कि अठारहवीं शताब्दी में भारतीय किसान का जीवन दरिद्र पिनीना, बृष्टप्रद और अनिश्चित था।

राज्य और ग्राम के बीच जुवा छिपी का एक खेल निरन्तर चलना रहता था। एक ओर सत्ता वृद्धिशील मार्ग थीं और दूसरी ओर अन्वर्तन टाल-मटान। राज्य चाहता था कि इतना आर्थिक कर बसूल कर लिया जाए कि विमान के पास मात्र गुजारे-नायक ही बच सके। औरगजेब के आदेश इस प्रकार थे, "जो भी व्यक्ति अपने श्वेत जोतता है उसके लिए उतना छोटा लिया जाए, जितना अगली पसल बटने के समय तक उसके और उसके परिवार के भरण-पोषण तथा बीजों के लिए आवश्यक हो। बाकी सब भूमि-भर है जो सरकारी खजाने में चला जाएगा।"<sup>3</sup>

यह नीति आत्मघाती थी क्योंकि यह उस मुर्गों को ही मार डालनेवाली थी, जो साने के अण्डे देती थी। उपज को चपाने अथवा ऋषि के तरीका का सुधारने के लिए यह कोई प्रोत्साहन बाकी नहीं छोड़ती थी।

वार्थिक व्यय की राशि को जानते हुए सरकार को समस्या यह रहती थी कि उसके लिए आवश्यक पर्याप्त राजस्व राशि कैसे जुटाई जाए। एक निश्चित म्यर और कमीशन न घटने-बढ़नेवाली राशि ही अमीष्ट थी। भूमि-भर ही वह प्रधान स्रोत था जिससे वह पूरी होती थी। भूमि की उपज में हिस्सा लेने के राज्य के अधिकार पर कोई उगली नहीं उठाना था। राज्य का अंग कितना ही यह समय-समय पर और गाय-गास के अनुसार बन जाना था। हिन्दू धर्मग्रन्थों के अनुसार राज्य को चार-पाँच जयवा आठवा और सबके के समय चायाई अथवा तब तक के अधिकार था। लेकिन माघारण दर छटा भाग प्रतीत होती है। मानवी शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इसी की पुष्टि की है। तेरहवीं शताब्दी में अनाउद्दौल खानजी ने उपज का आधा भाग तक उठाया है। शेरशाह ने इसे कम करके प्रति बीघा औसत उपज का एक तिहाई कर लिया था। अब्दुर न खेरशाह का ही दर का अनुसरण किया। लेकिन औरगजेब के समय में इसे बढ़ा कर फिर आधा कर लिया गया और मुगल-शासन के अन्त तक यही दर लागू रही।

उस जमाने में यह जानना आवश्यक था कि कुन पत्र क्या है ताकि उतना निश्चित

1 वात्सिदास, 'रघुवशा', सर्ग 1, 18

2 'आइने-अकबरी' (स्नाचमन-द्वारा अनूदित), कलकत्ता 1927, पृष्ठ 4 और 7

3 'इण्डिया, इटम ऐडमिनिस्ट्रेशन ऐण्ड प्रोप्रेट' (सासरा सस्करण) पृष्ठ 126, सर आन स्ट्रेची-द्वारा उद्धृत। एमिंगर की 'डिपय रिपोर्ट' के पृष्ठ 38 पर भी उद्धृत

प्रतिबन्धित सरकारी कोष में अतिवायत जमा हो सके। इस समस्या के तकसम्मत् उत्तर में यह बातें सम्मिलित थीं (1) हर किसान के खेतों की अलग-अलग नपाई, (2) धरती और फसल के मूल्य का ध्यान रखते हुए खेतों की हर इकाई (बीघा) की उपज का औसत अनुमान, (3) प्रति बीघा की हर फसल के कुछ वर्षों के औसत मूल्य के आधार पर उपज के मूल्य का निर्धारण, (4) बीघे हुए खेतों की विपणनाधीनता के लिए तथा प्रतिकूल प्राकृतिक अवस्थाओं अथवा सूखे के लिए आवश्यक छूट देने हुए इन दरों और गणनाओं के आधार पर हर किसान से प्रति वर्ष लगान की वसूली।

सार-रूप में यही तरीका था, जिसे अकबर ने सिन्धु-गंगा के मैदानों और वैदिक उच्च भूमि के हिस्सों में फैले अपने साम्राज्य के कितने ही प्रान्तों में लागू किया। बाद में जात गए बंगाल को इस पद्धति से बाहर रखा गया और दक्कन भी इससे बाहर रहा, क्योंकि वह साम्राज्य में नहीं था। अकबर के तरीके के अनुसार, भूमि-कर का अनुमान लगाने के मापदण्ड कुछ ऐसे थे, जो सरकार और किसान, दोनों के अनिश्चय को कम कर देते थे और दोनों के हिस्सों की गणना के लिए एक स्थायी नगद आधार प्रस्तुत करते थे। ये इस तरह बनाए गए थे कि इनसे किसानों के मौसमी उतार-चढ़ाव तथा जल की समतुल्य नगरी में परिवर्तित करने में होनेवाला कष्टकर विलम्ब नहीं हो पाता था। मूल्यांकन की पद्धति और इसके अनुसार तयार किए गए भाग के चिट्ठे सभी जमीनों पर लागू होते थे। खालसा अथवा बादशाह की सरसित जमीनों, जो सरकारी अधिकारियों-द्वारा सीधे प्रशासित होती थी, और वे सावजनिक जमीनों, जो जागीर अथवा नगद के रूप में दान और अनुदान भागियाँ को उपहार तथा बतन बांटने के लिए धन राशि जुटाती थी, इनमें शामिल नहीं थीं। इन दूसरी प्रकार की जमीनों का प्रबंध निजी कारिन्दों-द्वारा किया जाता था।

भूमि-कर के अनुमान और संप्रह के लिए एक विशद संगठन तयार किया गया था। राजस्व-मन्त्रालय के अधीन उच्चतम स्तर पर दो दीवान थे—दीवाने खालसा जो शाही जमीनों का प्रबंधक था और दीवाने-तान जा जागीरी जमीनों की देखभाल करता था। दीवाने के अधीन प्रादेशिक अथवा प्रान्तीय दीवाने होते थे जिनसे सलग्न कमचारी तान विभागों में बटे होते थे—एक राजस्व का निर्धारण करनेवाला दूसरा संप्रह करने-वाला और तीसरा राज्य-कोष से सम्बन्धित। प्रान्त सरकारों में विभक्त थे जो छोटे अधिकारियों के अधीन थीं। एक सरकार में कितने ही परगने होते थे, जिनमें से प्रत्येक में कानूनगो, चौधरी और वारकून नामक अधिकारी होते थे। एक परगने में सम्मिलित गावों के ऊपर एक मुकद्दम होता था, जो राजस्व इकट्ठा करता था, और एक पटवारी हाजिर था, जो उसका व्योरा रखता था।

गावों की उत्तर की किस्म में मुकद्दम अथवा ग्राम-प्रमुख, जो स्वयं एक किसान होता था, सरकार और ग्राम के बीच मध्यस्थ का काम करता था। वह किसानों से राजस्व इकट्ठा करने और ग्राम पर लगी माग की अदायगी के लिए उत्तरदायी होता था। उसका पद वशानुगत होता था और वह अपनी सेवाओं के बदले में संप्रह का ढाई प्रतिशत भाग का अधिकारी था।

जागीरी जमीनों में यदि जागीर बड़ी होती थी, तो जागीरदार का कारिन्दा भूमि-कर संप्रह करता था अन्यथा जागीरदार किसी किसान को नियुक्त कर देता था।

जागीरदारों के अधिकार जमींदार से जा भूमि पर दान-दान अधिकार मोक्ष दे। कुछ स्थानों पर जमींदार एक बड़े-बड़े व्यक्ति हो या और दूसरे स्थानों पर एक दल, जिनका प्रतिनिधित्व एक प्रबन्ध करता था। जमींदारों में प्रचलित दानों के वसूल में से जो जमीन्दार और प्रभुत्वदारों से लेकिन अब विदेश के स्थानिक को स्वीकार करते व लिए दिया करण दे। उनमें सम्बन्धित भूमि-कर, दान-कर के विवेक मन-की-द्वारा निश्चित एक श्रेष्ठ होता था। लेकिन जितने ही जमींदार ऐसे के जिनका कानून व अन्य विधानों को तर्क ही निर्दिष्ट होता था।

दक्षिण को जिनमें, यहाँ जमींदार का अधिकार नहीं था जो जमींदार एक नहतस्वतन्त्र स्थिति रखते थे, उदाहरण में मद्रास में मन्निन अम्बर (1605 में 1626) ने भूमि-कर-प्रणाली में जमींदारों को अपने जमीनों के वारिसों के लिए एक-नियत को नरुवाई भाग निरत करने का पद्धति लागू की थी। उक्त जागीरों को 'खाला' और 'इनाम' में बाँट दिया था। इनाम से प्राप्त कर-दान और सेवा (बतन) के पारित्यजिक के लिए प्रयुक्त होता था। पटेल और कुम्हारों आदीय जमींदारों का प्रबन्ध करने से।

विधानों ने इन पद्धति में बड़े सुधार किए। लेकिन मन्निन को जिन जमीनों के वारिसों में प्रतिष्ठित एक बड़ा किया—नाथ ही कई बुनियादी भाग कर दी। आता काम तीसरे पाँच बरसों के बच्चे (1740-61) ने उठाया था। उक्त नया सुधारण तथा फसल एवं धरती का नया वारिसण कराना था और नई दरें निश्चित की थीं। उक्त प्रबन्ध काल (मानक) कहा जाता है।

मराठा प्रान्तों में दो प्रकार के विधान थे मिरासदार और उतारी। प्रथम का भूमि पर दान-दान अधिकार था। ये अधिकार हिन्दू-जातुन के अनुसार उत्ताधिकार में प्राप्त किए जाते थे और शून्य अथवा राजस्व न देने की दशा में भी इन्हें मराना नहीं बिना जा सकता था। सरकार को मांग सन्तान-वडा व लिए निश्चित थी। मन्निन बुनियाद का जान के कारण छूट निरपेक्ष बन गई थी।

उतारा सरकार ने ऐच्छिन आत्तानी से और वष के अन्त में उनके समन्वित का मराना बिना जा सकता था।

मराठा दान-अधिकारी—पटेल, कुम्हारों, चौधुरे (पटेल का सहायक) और महरार अथवा गाव का चौकीदार—उत्तर के ग्राम-अधिकारियों के समन्वय तथा रखते थे। लेकिन उत्तर क मुबद्दम के प्रतिकूल पटेल का सम्मान और उमरी गता अधिक थी। वह गाव का प्रमुख अधिकारी और सरकार का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। या ग्राम-समाज में विदेश सम्मान का उपभोग करता था। वह धेती की देखरेख करता था और उपत्र के स्वर का बानस रखने तथा बजर उमरी को श्रेती-योग्य बनाने के लिए उत्तरदायी था। पन्निन और मन्निन के भी कठोर उसे निभान पड़ते थे। वह शान्ति स्थापित करता था और अन्वय का दमन करता था। गाव की मुग्धा के समय वह गोल प्रहण करता था। उसे सरकारी अपमर्तों का स्थापन तथा धानाग त्योहारों में भाग और मनोरंजनों का भी प्राधान्य करता पड़ता था।

दक्षिण-पूर्वी प्रदेश—नेतृ और मन्निन प्रदेश—ये भाग गाव समाज आधारित एक मराना लिए जाते थे। उनमें स अधिकतर में जगमिया की भी श्रेणियाँ होती थी (1) बिगात (बलन वगैरे) जो पृथक रूप में अपनी उमराना के स्थायी से उठे जाते थे,

और सरकारी कर (मेजावरम) अग्न करते थे, (2) मेवा का पट्टा रखनेव ली (भाग वक्ति वाणि), जो या तो बलूतेदार अर्थात् ग्राम-सर्वक थे या सनिव, धार्मिक, शैक्षणिक अथवा अय प्रकार की मवाओ के बदल में भूमि पाते थे, और (3) मिश्राथ दी हुई भूमि वाले (ब्रह्मदय देवदान, शालिभाग), अर्थात् ब्राह्मण धार्मिक सम्थाए आदि।

जमींदार (मिरासी) ग्रामा की भी पट्टिया थी, लेकिन अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक पोलीगर और जमादार-जैसे प्रमुखा की कुछ विशाल रियासतों के अतिरिक्त उनका पतन हो चुका था।<sup>1</sup>

इन ग्रामा में खेतिहर कुछ तो स्वामी किसान थे, जो अपनी जमीनें बेच सकत और उपहार म द सकत थे कुछ छोटे किसान (उलकूडि) थे, और शेष सामयिक खेतिहर (पारकूडि) थे जिनका सहभागी भूमिदारों की सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं होता था।

अठारहवीं शताब्दी में इन दक्षिणी ग्रामा का सगठन देश के अय भागा की तुलना में बहुत कम भिन्न था। वशानुगत ग्राममेवक, जिनमें सनिव और कारीगर, दाना शामिल थे, गाव व अधिवारी जिनमें पटेल, नट्टमवार मनियाकरण, नायडू, रेड्डी, पट्टावायू, आदि नामा स प्रसिद्ध ग्राम प्रमुख हात थे और गाव का हिमाव किताब रखनेवाला कारुणम—इन सबसे ग्राम-संस्था का निर्माण होता था। इनके कतव्य वही थे, जो उत्तर में उनका प्रतिरूप अधिकारियों क थे। सेवक और कारीगर अन्न की उपज (मेरा अथवा स्वतन्त्रम) में से अपना अन्न प्राप्त करते थे और अधिकारियों का करमुक्त अथवा इनाम भूमिया मिली होती थी तथा ग्रामाणा-द्वारा दिया गया धन भी उन्हें वेतन के रूप में मिलता था।

उपज को तीन भागा में बाटा जाता था—सेवको और कारीगरो का भाग, जो लगभग पाच प्रतिशत होता था और सरकार का तथा किसान का हिस्सा, जो शेष का आधा-आधा भाग होता था।

अकबर की ज़ांती प्रणाली और इसी के मामानान्तर मराठा की कमाल प्रणाली अठारहवीं शताब्दी में तेजी से अस्त-व्यस्त हा गई। इस प्रणाली के वास्तविक गुण इस तथ्य में निहित था कि इसने किमान को व्यक्तिगत रूप से राज्याधिकारियों के सीधे सम्पर्क में ला दिया मनमान तौर पर घुस आनेवाले विचौलियों की अनियमितता को सीमित किया और सरकार-द्वारा निर्दिष्ट तरीका और सूचिया का अनुसरण करने के लिए उन्हें विवश किया चुगिया को समाप्त किया दर में स्थिरता पदा की, किसानों के भार का हल्का किया तथा फसला के विस्तार और उनमें सुधार के लिए अवसर पदा दिए।

लेकिन यह व्यवस्था बहुत महंगी थी और तथा काम दे सकती थी, जब कड म अविच्छिन्न सतकता हा और भूमि राजस्व के कमचारियों में इमानदारी और कुशलता हो। दुर्भाग्यवश अठारहवीं शताब्दी के मुगल-सम्राट निधन थे, उनके सज्जाने खाली पड़े थे और उनके अधिकारियों क वेतन सदा बढ़ाया रहत थे। गद्दी पर बैठनेवाले सम्राट असमथ सुस्त और निकम्म तथा सबक राजद्रोही स्वार्थी और अयोग्य थे।

अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन अवस्थाओं में प्रशासन टूट कर बिखर गया। अकबर का लक्ष्य था कि हर किसान के साथ भूमि कर के बारे में एक पृथक ममज्ञाना (पट्टा और कबलियात) किया जाए और रसीदें बढ़ लागू का इकट्ठी दे दा जाए। लेकिन

1. बेडेन-वावेल, 'सड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इण्डिया', 1892 खण्ड 3, पृष्ठ 133-38

उदाहरणों गतात्मी में गाव और राज्य के बीच का यह सम्बन्ध टूट गया यद्यपि गाव एक महत्वागी इकाई के रूप में बना रहा। राज्य ने समूचे गाव के साथ व्यवहार करना और ग्रामपति के साथ सम्बन्धित करने व्यक्तिगत करों के माह को उप पर छात्रना शुरू कर दिया। इस प्रकार ग्रामों की आत्मनिर्भरता और उनकी पृथक्ता निश्चित हो गई और एक राजनियंत्रित गणकन में ग्रामों का परस्पर बाधनेवाला सूत्र दुबल पड़ गया।

दूसरी, भयंकर बाढ़ आ पानी, वह ही जमींदारी प्रथा का विकास। अकबर ने ठाक ही इसमें अन्तर्गत प्रकट किया था। लेकिन उनके उत्तराधिकारियों के अधीन यह प्रथा विपाकत पौरा की तरह घटता वा ठकता और उसकी सासा की अवरुद्ध करती हुई थी। किन्तु ही कारणों ने इस बड़ावा देने का पदयन्त्र रचा। इनमें प्रधान था शासक का अपरिमित विस्तार। जन-जन जागोरे बनीं, उनका मुख्य घटता गया। उन पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखने में अममय जागीरदारों ने भी जमींदार नियुक्त कर दिए, जो अपाचारपूर्ण तरीका से राजस्व वसूल करते थे। वे एक निर्दिष्ट राशि जागीरदार का दन थे और शेष अपने पास रख लेते थे। अब अन्य विचौलिये और उनके जमींदार तथा अधिकारों तक गाववालों के वशानुगत स्वामी बन बटे। इस प्रकार ताल्कनेदारों और जमींदारों का एक षण बन गया, जिनमें स्वामित्व के अधिकारों को हथिया लिया और जो लगभग प्रामुखतात्मक सुविधाओं का दावा करने लगे। उदाहरण के लिए ताल्कनेदारों जमीनों का उत्तराधिकार उन नियमों से प्रभासित होने लगा जो साधारण व्यक्तियों पर नहीं, राजाओं पर लागू होते थे, ताकि स्वामी की मृत्यु के बाद जायदाद उत्तराधिकारियों में बांटी न जा सक, जैसा कि हिन्दू और मुस्लिम उत्तराधिकार नियमों के अनुसार होना चाहिए था। इन झूठे कथनपूर्ण प्रयासों ने केंद्रीय सत्ता की आघात पहुंचाया और अराजकता को बड़ावा दिया।



## भारत की राजनीतिक प्रणालियाँ

### 1 राज्य-व्यवस्था

यह सत्य है कि पूरे मध्य-काल में भारत का राज्याध्यक्ष मुसलमान ही रहा,<sup>1</sup> परन्तु राज्य-व्यवस्था इस्लामी नहीं, रही। राज्य ने, न तो अपने सरचनात्मक सिद्धान्तों में और न ही अपनी बुनियादी मान्यताओं, उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों में इस्लामी धर्म प्रयोग 'कुरान' हदीस अथवा मुनी विधिशास्त्र के चारों सम्प्रदायों-द्वारा वर्णित नियमों में दिगमग निदेशों का पालन किया। भारत की मध्य-कालीन राज्य-व्यवस्था को धर्मतान्त्रिक कहना भूल है, क्योंकि उसमें मुस्लिम धर्मभेदाभा के निदेशों के अनुसार काम नहीं होता था। शासक व व्यक्तिगत धर्म का उसकी सरकारी नीतियों के साथ कोई सम्बन्ध न था।

तरहवी शताब्दी से ही भारत के प्रायः प्रत्येक मुसलमान बादशाह ने 'शरीयत' के निदेशानुसार शासन-काय चलाने की असम्भवता का सबेन करते हुए उक्त रीति से राज-काज चलाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। भारत के मुगल-सूब शाहों में अलमग, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तगलक ऐसे व्यक्ति रहे जिन्होंने भारत में मुस्लिम विधि-व्यवस्था लागू करने व औचित्य पर सन्देह प्रकट किया। आशय की बात है कि उनका प्रतिनिधित्व करनेवाला व्यक्ति-एक उलमा—इतिहासकार जिमाउद्दीन बरनी—था। अपनी पुस्तक 'फतवाए जहादारी' में जिसमें राजनीति के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है उसने कहा है 'सच्चे धर्म का अर्थ है पगम्बर के वरण विह्वल पर चलना परन्तु इसके विपरीत, शाही शासन केवल खुरसरा परवेज़ और ईरान के महान बादशाहों की नीतियों का अनुगमन करने ही चलाया जा सकता है।' उसने स्वीकार किया कि पगम्बर मुहम्मद की परम्पराओं (सुन्नत) तथा जीवन-यापन के उनके ढंग और ईराना बादशाहों के तौर-तरीका तथा जीवन-यापन के ढंग के बीच पूर्ण असंगति और विरोध है। उसने यह उल्लेख अवश्य किया है कि 'शरीयत'—परमात्मा के आदेश—का पालन राज्य के मामलों में केवल अपवादतुल्य अवसरों पर किया जा सकता है। मुहम्मद शरा' को इसलिए लागू कर भके कि वह परमात्मा से प्रत्यक्ष प्रेरित थे और पहले चार खलीफा ऐसा करने में इसलिए समर्थ हो गए कि वे पगम्बर के साथी थे। परन्तु उनसे उत्तराधिकारियों व सामने ऐसे दो विकल्प आ उपस्थित हुए जिनके बीच समझौता ही नहीं सकता था। वे विज्ञाप्य थे—पगम्बर की परम्पराएँ और ईरानी बादशाहों की नीति। वास्तविक स्थिति यह है कि पगम्बरों के परिपूर्णता की खोज है और शाहूत सांसारिक ऐश्वर्य की परिपूर्णता का। ये दोनों परिपूर्णताएँ प्रतिबन्ध तथा परस्पर विरोधी हैं और उनका समग सम्भावना की सीमा न पने है।<sup>1</sup>

1 देखिए, 'फतवाए जहादारी', 'मिडीवल इण्डिया क्याटरी' के खण्ड 3, अंक 1 और 2, जुलाई-अक्टूबर 1957, में प्रोफेसर ह्यूब और डा० अफसर बेगम-द्वारा किया गया अनुवाद, पृष्ठ 55

निर्मा उन्मा न अन्तमा क पात्र जावरुं कहा या कि हिन्दू बहुलैकितान' नहीं है और इन्हींके उन्हें 'जिम्मेदार' की भाँति इन्मान के सम्मेलन में नहीं लिया जा सकता उन, उन्हें इन्मान प्रदान करने के लिए कहा जाना चाहिए और उनके ऐसा न करने पर उन्हें तत्वार के साथ उत्तर देना चाहिए। जल्दबाजी न इन प्रस्ताव के सम्बन्ध में अलग बजौर का उत्तर जानना चाहिए। बजौर न बतल कि इस प्राप्ति की आवश्यकता क्या अनभव है। अन्ततः बनबन का सम्बन्ध है इतिहासकार विद्वानुद्दीन न कहा है 'वह (घम विषयक मामला की अपेक्षा) राज्य विषयक मामलों का तरकीब देना था।' बरनी का कथन है दण्ड देने और शाही अधिकार का प्रयोग करने में वह परमात्मा का भय छाडकर काम चलाता था और जिस बात का शासन के लिए हितकर समझता था, चाहे वह गरा' के अनुकूल हो या नहीं उसे आवश्यक दे दिया करता था।<sup>1</sup> बजौर मुग़ोलतदीन के साथ हुआ अन्तानुद्दीन का वाद-विवाद प्रसिद्ध ही है। बजौर म विदा होते समय उसने कहा था 'मैं तिम बात का शासन के लिए हितकर और समय की आवश्यकता समझता हूँ उसी के लिए आदेश देता हूँ। म नहीं जानता कि बजौर के तिन वह तबसेवर मर माप क्या मनुक करेगा।

मुहम्मद तुगलक के वा' में शब्द जम्बुन हकन जार देकर कहा है कि 'उसने प्राधिकार का तर्क के आश्रित कर लिया था और मुनी जानेवानी बात को मुक्ति मागति के अर्थात्। दण्ड 'प्राधिकार' का प्रयोग 'दुखान' और 'हदीस' के लिए और मुनी जानेवानी बात' का प्रमाण त्रिक के लिए किया गया है। बरनी न त्रिकादत मरे स्वर में कहा है, 'लुक्की (मुहम्मद तुगलक की) राजधानी न पैगम्बरों और गलतनी दाना तरह के आदेश जारी किए जान थे और उत्तन (अनन व्यक्तिव में) बागाह तथा पैगम्बर, दानों के आदेश को एवाकार कर लिया था।'

प्रादेमर हबीब न विषय-स्वरुप कहा है 'वह मय है कि मुमलमान आदेशाह त्रिनमें मे अधिकतर विदेशी बन्ध के बाइ छ-नात सौ मान तक भारत के राज-मिहानों पर बडे पर के इमानिण ऐसा कर पाए कि उनके राज्याभिषेक का अर्थ 'मुन्निम शासन' का राज्याभिषेक नहीं था। यदि ऐसा न हुना ता उनका शासन एक पीढी तक भी न चल पाता।'<sup>2</sup>

मुगल आदेशाह में से बाबर का बहुत पाए समय तक हुनून करने के कारण और हुमायू का बहुत अधिक बख्शाशा में फन रहने का कारण प्राणिक बातों की आर ध्यान देने का अवसर बन गी मिला। अक्बर न एक ऐसा राज-नाति का उदाहरण किया जा इन्मान व आदेश पर आश्रित नहा था। सभी घनों व प्रति लक्षी मनशुष्टि की और घन व आजार पर अनन प्रभावना में किमी प्रकार का भेदभाव न करना वर अरना कठव्य मनसता था। गन्धानमानों व लिए लुनन-न्यनम ए' सुनम लिए। उत्तन त्रिन् राजकुमारिया व माय विशाह किए और

1 विद्वानुद्दीन अन्वद, 'तबकते अकबरों' (बो० द-दारा सम्पादित मूल पाठ) पृष्ठ 1, पृष्ठ 82

2 विद्या बरनी, 'तारीखे किलोहगारी' (मूल पाठ)

3 बरिगु, अरर उद्दत 'मिहोयन इच्छिदा काउंटता', पृष्ठ 5

उन्हें अपना धर्म बनाए रखने तथा राजमहल में हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन करने की छूट दी। उनके पुत्र मुगल राज-सिंहासन के उत्तराधिकारी बने। जिन बाता-क-सम्बन्ध में मुजतहिदा (मुस्लिम धर्माचार्यों) में मतभेद सम्भव हो उन पर अन्तिम निणय देने का प्राधिकार स्वयं ग्रहण करने अकबर ने उलमाओं का इम्नभेष समाप्त कर दिया। अनेक सामाजिक तथा अन्य बाताओं में उसने अपने गैर-मुस्लिम प्रजाजन की भावनाओं तथा परम्पराओं के प्रति आदर-भाव व्यक्त किया। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, उसने द्वारा किया गया जज़िये का अन्त। अबुल फज़ल ने कहा है बादशाहत खुदा ही की देन है और इस ऊँचे और शानदार स्तंभ पर पहुँच कर जो व्यक्ति विश्व-शान्ति (सहिष्णुता) का समारम्भ नहीं करता और सभी दर्जों के मनुष्यों तथा सभी प्रकार के धर्मों के प्रति कृपादृष्टि और आदर-भाव नहीं रखता—ऐसा नहीं कि विभी के प्रति अपनी माँ का व्यवहार करे और दूसरों के प्रति सौतेली माँ का—ता वह उस ऊँचे और शानदार स्तंभ के वाकिल नहीं है।<sup>1</sup> उसने आगे चल कर यह भी कहा है धर्मगत अन्तरों के कारण उसे संरक्षण के अपन कर्तव्य से विरत नहीं होना चाहिए और सभी वर्गों के मनुष्यों का सन्तान बनना चाहिए, ताकि खुदा का वह प्रतिबिम्ब ज्योति की वर्षा कर सके।<sup>2</sup> अतः 'इम्न हसन के शब्दों में इस्लामी विधि-व्यवस्था और इदीश, जनों ही शासन-महिता नहीं बन रहे सके।'<sup>3</sup>

जहांगीर अपने पिता के शौच-साधे में तो नहीं डला था, फिर भी वह इन्हीं सिद्धान्तों की मूल-भावना के अनुसार काम करता रहा। शाहजहाँ ने अपने प्रारम्भिक वर्षों में एक भिन्न पथ अपनाया और वह धमाधम की कुछ बुरी-से-बुरी बातों को फिर चालू कर बड़ा पर-त्राद के वर्षों में वह केमन-चित्त हो गया और उसका मूर्ति ध्वंसक उत्साह फीका पड़ गया।

दुर्भाग्यवश औरंगजेब ने अकबर की नीति को उलट दिया, पर इच्छा करने पर भी वह शंग (तलवागी बानून) की सर्वोच्चता स्थापित करने में सफल नहीं सका। उसने चाहीम वर्षों के मिथ्यानिर्देशन प्रयत्नों का अन्त पूरा विफलता में हुआ। अन्तिम दिना में निराशा और घेद ने उसकी आत्मा पर अधिकार कर लिया और उसने अपना मस्तिष्क में उपलब्ध-गुणल-महानी-विनाश की पूर्वकल्पनाओं के साथ प्राण त्यागे। उसने परचान् उसने उत्तराधिकारियों ने बहु-घातक माग छोड़ दिया पर उस समय तक साम्राज्य के विशाल भवन का अगाध्य क्षति पहुँच चुकी थी।

भारत के मुसलमान बादशाहों और मुल्तानों ने इस्लाम की राज्य-विषयक धारणाओं की आर-बद्धत रम ध्यान दिया। इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार सभी मुसलमान मिल कर एक अविभक्त समाज (मिल्लत) बनाते हैं और उस समाज के लिए एक ही मुसलमान सरकार आवश्यक है। दिव्य विधि-व्यवस्था पर आधारित एक गावभीम समाज और एक सावभीम राज्य इस्लामी राजनीति का सार रहा है।

1 अबुल फज़ल 'अकबरनामा' (बीवरिज-द्वारा अनूदित), छण्ड 2 (कलकता, 1912) पृष्ठ 421

2 वही, पृष्ठ 680

3 इम्न हसन, 'द रोप्युल स्ट्रक्चर आफ द मुगल एम्पायर' पृष्ठ 61

उसके अलग-अलग निर्वाचित राज्याध्यक्ष का आवश्यकता था जिस अमात्यमोक्षितान या खलीफा' कहते थे। इस उच्च पद के लिए चुने जानेवाले व्यक्ति का कुछ शर्तें पूरी करनी हनी थीं और चुन जाने पर उसे कुछ विशेषाधिकार मिलते थे। उसके काम थे—धर्म की रक्षा करना और पवित्र विधि-व्यवस्था के अनुस्यू मुस्लिम सम्राज्य के मानसिक मामला का प्रशासन करना।

समय के बहाव के साथ-साथ इस धारणा का प्रभाव-व्यापकता क्रम-क्रम-से कम-से-कम हो गई। उदाहरण-स्वरूप खलीफा का एक निर्वाच्य पद का बुनानुगत बना दिया। जब-कि-पि-इस-क-समय में खलीफा का नाममात्र की प्रभुसत्ता तो मानी जाती रही पर-प्र-स्ता-के-सम-का-न-उ-ल्ल-ज-न-अ-र-स-य-म-स्वान्त-रि-या-म-त-क-अ-य-म-कर-ली। सन् 1258 में मंगोल-द्वारा अल-अमिदा के उच्छेदन के उपरान्त खलीफा के प्रति दिग्भावेन निष्ठा का भी अन्त हुआ।

दूसरे प्रकार इस्लाम—समाज राज्य और विधि-व्यवस्था की सावभौमिकता के अपने मूलमूल सिद्धान्तों के बावजूद—अमात्य ठहराया गया। जिस शासक ने अपने को अतः अपने प्रदशा का सम्राट बना लिया व बसुन उन राजा के रति-रिवाज तथा प्रवाच-रम्पराओं पर आधारित विधि-व्यवस्था का ही मर्याद बने, जिन पर व अपने प्राधिकार का प्रयोग करते थे।

कुछ प्रारम्भिक भारतीय शासक खलीफा के प्रति नाममात्र का आदरभाव व्यक्त करते रहे पर-ने-र-ह-वी-ग-ना-र-के-स-म-य-के-बाद-ज-ब-कि-ख-लि-फ-ा-का-प्रधान-म-न्-त्र-ब-ग-दा-द-म-ग-ना-क-हाथ-में-आ-ग-या-और-ख-लि-फ-ा-का-म-ि-स-त्र-में-जा-कर-ग-र-भ-से-न-प-ने, तब इस्लाम समाज-रूप, घरे-बा-र-क-ल-नि-व-र-त-ग-ई-और-परिणाम-त-इ-स्-ल-ाम-ी-ग-र-न-त-र-म-वि-ल-ी-न-ह-ा-ग-या।

बाबर द्वारा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किए जाने के समय शिवाफत उद्यमन के घरात में पहुँच चुकी थी। चंगनाई तुक हाने के नात बाबर के हृदय में अनानोननी तुक के राजा के प्रति काँट जास्या न था। उधर मराठिया ने ईरान का एक मिया-ना-स-म-य-में-परिणत-कर-ल-िया-था-मु-ना-शि-वा-फ-त-के-दा-वा-को-अ-स्वी-कार-कर-ल-िया-था-और-ल-ग-भ-ग-ख-ि-व-य-आ-द-र-भा-व-के-वे-दा-वे-त-र-ब-न-ब-ट-े-थे। यह स्थिति सवमुच चिन्ताकषक था। मध्य-अ-र-ब-में-आ-न-और-मा-न-य-ग-में-च-गे-ज-या-का-बा-ज-ह-ान-के-कार-ण-बा-र-क-क-अ-र-ई-र-ान-का-उ-त्-ा-ह-र-ण-और-दू-म-र-ा-अ-र-म-ग-ना-क-बा-ग-ा-ही-पर-म्प-रा-ए-प्रा-प्त-थ-ी। उन्हा-के-प्र-भा-व-में-मु-ग-ल-बा-द-शा-ही-व-्य-व-स-था-का-व-ि-का-म-हू-आ।

अपन-प-र-के-स-म-य-के-स-म-य-में-मु-ग-ल-बा-द-शा-हों-की-धा-र-णा-ई-र-ान-ी-और-ग-र-इ-स्-ल-ाम-ी-थ-ी। बा-ग-ा-ह-अ-प-न-अ-प-का-न-ता-मु-स्लि-म-स-मा-ज-का-नि-र्वा-च-ित-मु-घ-ि-या-स-म-स-त-ता-था-और-न-ब-फ-ा-ग-रा-के-ख-ली-फ-ा-का-प्र-ति-नि-धि-और-आ-ध-ित-ब-ह-त-ो-अ-प-न-को-पर-मा-मा-का-प्र-ति-वि-म-य-('डि-प्ले-अ-न्-स-ा-ह')-मा-न-ता-था। इस-की-व-्या-ख्या-कर-ते-स-क-अ-द-त-प-र-न-न-लि-खा-है- 'रा-ज-स-त्ता-पर-मा-ना-की-आ-र-म-आ-न-वा-ली-रा-ज-नी-के-आ-धु-नि-क-ग-ल-ा-व-ली-में-इ-स-प्र-भा-व-का-‘क-र-ई-दी-नी-(दि-व-्य-ज-्या-ति)

1. देखिए, ई० जी० बाउन, हिस्टरी ऑफ परसिदन लिटरचर इन माइन टाइम्स', 1924, पृष्ठ 494 तथा लेवी, 'द सोरान स्टुडर ऑफ इस्लाम', पृष्ठ 373

कहते हैं और प्राचीन काल में इसे 'वियान घुरा' (भव्य प्रभामण्डल) कहा जाता था। परमात्मा किसी दूसरे व्यक्ति की मध्यस्थता के बिना यह प्रकाश बादशाहा को प्रदान करता है और इसके सामने जाने पर मनुष्य विनीत भाव से नतमस्तक हो जाते हैं।<sup>1</sup>

जहागीर मानता था कि प्रभुमत्ता और विश्वशासन व काम ऐसे नहीं हों, जो कुछ दूषित बुद्धिवाले व्यक्तियों के निरर्थक प्रयासों के आधार पर चलाए जा सकें। वे काम तो सबस्रष्टा परमात्मा कृपापूर्वक उन व्यक्तियों को सौंप देता है जिन्हें वह इस गरिमामय तथा उच्च दायित्व के निर्वाह-योग्य समझता है।<sup>2</sup>

और गजब अपने आपको परमात्मा का प्रतिबिम्ब, अपने समय का खलीफा तथा पृथ्वी पर परमात्मा का वकील मानता था और आलमगीर जिलापार के नाम से विख्यात था।

ये उपाधियाँ तथा उपनाम ईरान तथा बाइजेंटियम के प्राचीन शासकों (किसरा और बैसर) के दावों तथा हिन्दू मन्नाटा की उपाधियों का स्मरण दिात हैं, पर वे खिलाफत अथवा मुल्तानी की उन इस्लामी मायनाओं के साथ बिल्कुल मेल नहीं खाते जहाँ उन पर निर्वाचन के आधार पर मिन्नत (ममाज) द्वारा दिए जाते थे। पृथ्वीनी पादशाह-अस किसी व्यक्ति का अस्तित्व मुस्लिम विधि-व्यवस्था में नहीं है।

मध्य-कालीन भारतीय राज्य-व्यवस्था का तुलना मध्य-कालीन यूरोप का सामन्ता राज्य-व्यवस्था के साथ की गई है। वस्तुतः इन दोनों में बहुत कम समानता है। यूरोपीय राज्य-व्यवस्था वास्तव में एक विशेष प्रकार का सैनिक भू-पट्टेदारी पर आधारित कुलीनतन्त्रा संरचना थी। सामन्ती सरदारों में वंशगत भू-सम्पत्तिधारियों की ऐसी शृंखला बन गई थी, जिसके ऊपरी सिरे पर बादशाह था और निचले सिरे पर नाइट (Knight)। इनके विपरीत मुगलों का कुलीनतन्त्र एक ऐसी अधिकारतन्त्र था जो पूणत मन्नाटा की मदाशयता पर आधारित था। उन कुलीनों का यहाँ की धरती के साथ महज सम्बन्ध तथा, वे लग वंशानुगत भूसवामी नहीं थे। इस तन्त्र में सम्पत्ति के आधार पर नहीं मुख्यतः जन्म के आधार पर पदा पर नियुक्तियाँ की जाती थीं। यहाँ की शासन-व्यवस्था आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र तथा उसे तो नगदी अथवा भूराजस्व के हिस्से के रूप में रकमें शाहा खजाने से प्राप्त होता था। इन हिस्सों में प्रायः फर वदल हो जाता था और कुलीनों का सम्पत्ति उनकी मृत्यु होने पर शासन-द्वारा जल की जा सता थी। उक्त पर पुस्तना नहीं थे यद्यपि बाद में पुस्तनी नियुक्तियाँ की प्रवृत्ति हो गई थी। यहाँ का कुलीनतन्त्र सामन्ता कुलीनतन्त्र होने का अपेक्षा एक स्वल्पतन्त्रात्मक वंश अधिक था।

गम्भार अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्य-कालीन भारत की राज्य-व्यवस्था में सामन्त शक्तियों और व्यापक उत्तरदायित्वों का विचित्र संगम था। यदि उसका भीमाका पर ध्यान दिया जाए तो उस आधुनिक जहाँ में प्रभुमत्ता सम्पन्न राज्य-व्यवस्था कहना कठिन हो जाता है। आधुनिक प्रभुमत्ता अपने-आपना

1 अणुत फजल, 'आईने अकबरी' (प्रो० ब्लोचमन-द्वारा अनुदित), छण्ड 1 (कसबता, 1927), पृष्ठ 3

2 'तुलने जहांगीरा' (रोजर-कृत अनुवाद) छण्ड 1, पृष्ठ 51

नियम बने—विधाना कायाग और यायाग—ने माध्यम न अभिव्यक्त करती है। सर्वोच्च मना व काय है—वानून बनाना और उनका परिपालन करना तथा याय करना।

मध्य-काल भाग्याय राय-व्यवस्था का वानून बनान का प्राधिनाग प्राप्त नहा था। जहा नव मुसलमाना का सम्बन्ध था, यह अधिकार उनके अन्तिम पैगम्बर मुहम्मद साहब व माय हो समाप्त हा गया, जिनका माध्यम न परमात्मा न अपनी इच्छाए और आश मदा-सवदा के लिए व्यक्त कर दिए थे। दिव्य वानून में जोड-ता या फेर-बस्त की आवश्यकता नहीं हाती। लागी नी नित्यप्रति का आवश्यकताओं में उनका प्रयोग-उपयोग राज्याभ्यक्ष का काम न होकर उनमात्रा का काम है। वे ही वानून प्रस्तुत करते ह और जीवन का परिवर्तनशील स्थितिया तथा परि-स्थितियों के अनुरूप उनकी व्याख्या करत हैं।

हिन्दुआ का भा किसी विधि निमाप की आवश्यकता न थी। जावन व तमा पया का नियन्त्रण करत के लिए उन् अपना प्राचीन विधि-सहिताए प्राप्त थी। जार मित्र मिश्र नया रघुनन्दन-जम विद्वाना न उनके ऐम भाष्य प्रस्तुत कर लिए थे, जो राज्य न नवया स्वतन्त्र रह कर याय-काम करत में हिन्दू यायाधीना (शास्त्रिया) का मागदशन करत थे।

इस्लामी विधि-व्यवस्था (फिक ) में उन दिव्य नियमा की जानकारा सत्रि-हित थी, जिनका सम्बन्ध मनुष्या के काम व साथ था और जिनम बताया गया था कि कौन-न काम जवय करणाय ह जार कौन-स काम निषिद्ध क्या काम उचित अथवा प्रस्तावित ह क्या अनुचित अथवा अनुमादित और किन कामा के लिए छूट मात्र दा गई है। यह व्यवस्था 'कुरान आ हदीस' में न उद्भूत है। इन प्रकार, स्पष्ट है कि मुस्लिम विधि-व्यवस्था अत्यन्त व्यापक है और उमम व्यक्ति तथा ममाद के जवन न सम्बन्धित मभा जाना—व्यक्तिगत आर निजा तथा माव-जनिक (दीवानी, फौजदारी और सर्वधानिक) जाना-सहित)—का ममावज है। मनुष्य के पूणत व्यक्तिगत और निजी मामला में उनके विश्वास, श्रद्धा तथा पूजन विधि का समावेश है, जिस 'इबादन' की सजा दी गई है। मुस्लिम विधि-सहिता में उन बावो व सम्बन्ध में बहुत ही बडे नियम निधारित ह। दीवानी विधि-व्यवस्था व अउपत मामला का विवचन दा मुख्य शीर्षों में किया गया है (1) विवाह, और (2) सम्पत्ति। इनमें न पहन गाथ व जतगत गगोत्रना और पात्रता विधवा-विवाह तथा विवाह विच्छेद व प्रश्न जात ह और दूमर व अन्तान उत्तराधिनाग श्य विषय, ब्याज और भाडे के। सावजनिक वानूना का सम्बन्ध राजनीतिक मामला—थिनाफत और शासन, गर-मुस्लिम प्रजादन व साथ मुस्लिम सरकार के सम्बन्धा, मुसलमानों के प्रति भग्भार के बतव्या और अपराध तथा दण्ड-व्यवस्था—में है।

यहा उक्त 'इबादन' का सम्बन्ध है, 'जरा' के नियमों का पालन करना प्रयेक मुसलमान का कतव्य है। उनमें सकुछ विशेषत रस्यवादिया (सूफिया) न उन नियमों की दन्तनुस्य तथा औपचारिक माना जाग इसीलिए उन्हीने, उनकी बधता का बख्शाकार किए बिना भी, उन्हें रहस्य-गडति-द्वारा परमात्मा का प्राप्ति के लिए किए जानेवाले ग्यान का आश्रित बना दिया। भारत में उनमात्रा और सूफियो

में बगबर दाग बन रहे ह। उनमें से एक शरीर पर जार र्ना जोर उभसे हूने का निम्न वाय ठहराता रहा है और दूसरा विचार रहा है कि प्रभु के प्रति जाग्रत शीत बन रहने की अपेक्षा रहस्य माधना जगित श्रेयस्कर है। मरगजेव और दाग शिवाह इन दो प्रतिस्पर्धी वर्गों का उत्कृष्ट प्रतिनिधि रहे ह।

जहा तक विवाह और सम्पत्ति सम्बन्धित कानूनों का जान है, उनका आम तौर से पालन तो किया जाता था पर उनमें से प्रत्येक के क्षेत्र में गहरा अनिश्चय होते रहते थे। मुसलमानों ने हिन्दुओं की गहन-सी वैवाहिक प्रथा अपना ली थी और वे ऐसी अनक बातों—उदाहरणतः विवाह के लिए पावनता निर्धारण वरत समय रक्त-सम्बन्ध की मात्रा निर्धारित करने, जाति आर श्रेणा विभाजना के आधार पर मगोत्र अथवा बहिर्गोत्र विवाह का मीमांसा निर्धारित करने, विवाह विषयक इतरा से सम्बद्ध प्रथाओं के पालन में सम्बन्धित बातों—का पालन करने लगे थे, जा इस्लामी विधि-व्यवस्था के प्रतिकूल था। भारत के अनक भागों में उत्तराधिकार विषयक कानूनों का स्थान पथा (उफ) न न दिया था। विधवा विवाह आर विवाह विच्छेद हिन्दुओं की ही भांति पुरा नगर से दखे जात थे।<sup>1</sup>

मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच विवाह सम्बन्ध बहुत कम होने से पर शासन परिवारों में इस प्रकार होनेवाले विवाहों को पर्याप्त मायना प्राप्त थी। मुगल बादशाह इस भाति पर चलनेवाले पहल व्यक्ति न थे। उनमें गृह पहुँचे बर्माँर में हिन्दू-मुस्लिम विवाह हा चुके थ। जैनुन आबेदीन (1420-70) ने जम्मू के राजा मानकदेव का दो पुत्रियाँ विवाह किया था।<sup>2</sup> मानकदेव की एक पुत्रा का विवाह मुस्लिम गन्धर नरदार राजा जमरथ के साथ हुआ था।<sup>3</sup>

दकता के बहमनी शासकों ने हिन्दु परिवारों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। ताजउद्दीन फिरोज (1397-1422) ने विजयनगर के देवराय आर खेरला के नरामह राव की पुत्रियों के साथ विवाह किया।<sup>4</sup> नार्वे बहमनी शासक, अहमद शाह बली, ने मोखड के राजा की पुत्रा से विवाह किया। बाजापुर के मुल्तान यूसुफ आदिलशाह (देहात सन 1510) ने एक ब्राह्मण मुकुट राव की गहन को पत्ना बनाया और वही उसका प्रधान रानी थी। बिस्तर के अमार गरिद (देहान्त सन 1359) ने भा एमा हा किया।<sup>5</sup>

1 देखिए, सी० एल० टुम्पर, 'पजाय कस्टमरा लाज', आर० बन सँसल आफ इण्डिया, 1901, खण्ड 16, भाग 1, पृष्ठ 92 और आगे

2 देखिए जोनराज-कृत 'राजतरंगिणी' (जे० सी० दत्त-द्वारा अनूदित), पृष्ठ 86, धीवर-कृत 'जन राजतरंगिणी' (जे० सी० दत्त-द्वारा अनूदित), पृष्ठ 194

3 'द इण्डियन एटिक्वेरी', खण्ड 36, 1907, पृष्ठ 8

4 एच० ए० शरयानी, 'द बहमनीय आफ द इक्वन्' (1953 का संस्करण), पृष्ठ 144 और आगे

5 एम० जी० रानडे, 'द राइड आफ मराठा पावर', पृष्ठ 31, जान रिग्न, 'रिस्टरी आफ द राइड आफ द मोहमदन पावर इन इण्डिया, खण्ड 3, (कलकत्ता, 1910), पृष्ठ 495-6

भारत की राजनीतिक प्रणालियाँ

जम्हूर, जहांगीर फर्रुखियर मुनिमान निकोह आर निपिट्ट निकोह ने/ राजकुमारियों की पत्नी बनाया। कन्न के हिन्दू गाहा घराना नमुनमाना के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किए।  
 इसने विपरीत हिन्दू जातिगत बाधाओं में इतना अधिक प्रभु से कि व मुस्लिम महिलाओं को अपन मन्त्र व अनुचर में स्थान न दे सक। फिर भा, हिन्दुओं और मुसलमानों के विवाह अतिरिक्त नगह। राजौरा नद्वार और बान्ति स्थान में जहांगीर को इन दोनों जातियों व पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध का पता चला था। पता बाजौराव प्रथम का मन्तानी के साथ प्रथम-सम्बन्ध विधवाय है। वह एक नन्की थी, जो वेगवा का स्थायी महुवरा बनी और "बाजौराव के अभिषेक में बराबर उसके साथ रहा तथा खाद-म खाद बिना भर उसके साथ पुढमवारा बरती रही।" सन् 1734 में उसने पता के पुत्र गमदीर बहादुर का जन्म दिया, जिसका नामन-मानन एक मुसलमान बतौर पर हुआ, क्योंकि ब्राह्मण न उस हिन्दू-समाज में सराए देन मन्त्रा कर दिया। सन् 1753 में गमदीर बहादुर राधोवा के साथ उत्तर में गया और कुम्भेर तथा दिल्ली के आगे होनेवाली लड़ाइयों में उसने भाग लिया। सन् 1755 में उसने विवाहा मरदार तुराजी अगरीय व विरह अमियाय का सहायक किया। सन् 1761 में वह पानीपत में मारा गया। उसका पुत्र अली बहादुर जामौर का उत्तराधिकारी बना। सन् 1787 में जब महादजी गिरीय को हार खानी पड़ी तब उसका महायना के लिए वेगवा के घराने के प्रतिनिधि-रूप में अली बहादुर व नायकत्व में दक्षिण में सैन्य भेजा गई। अली बहादुर को, निष्पत्ती की बीच में लाए बिना, राधोवा के साथ बातचीत करने का गुप्त हिन्सा दी गई थी।  
 यहा यह उल्लेख करना रोचक होगा कि बहुत-से परिवारों का दा, अथवा हिन्दू और मुस्लिम शाखाएँ थी और वे कई पीढ़ियों तक अपना यह परिवार-जन्म सम्बन्ध बनाए रहे।  
 रिवा अथवा ब्याज देने-पान पर रोक लगानेवाले धर्मद्वारा व सम्प्रदाय में भाषेनी ही नियतना रहा। उस नायक-रूप लाना जाना अगम्य जान पडा। कुछ धर्मप्राण मुसलमानों ने तो ब्याज बना स्विकार नहा किया, दुबल आचारवाक नो धर्म तथा धर्म के बीच मोटा कर दिखान व लिए चतुराईपूर्ण हथकण्डा म काम ले रहे।  
 मुस्लिम फौजदारी विधि-सम्बन्धों को नायक रूप देना तो कल्पना ही कठिन था। अरराय मिद करने के लिए जाते रहनेवाले-अन्तर मामलों में ऐसी था, निन्दा प्रति गम्भय ही उभरी। हिन्सा के तौर पर बलात्कार के अराय में मजा देन, के लिए चार गणेशों या सातों आबरमा थी। दण्ड बहुत ही निमगताप्य थे—चौरा व निजग माय पर देना अविचार के लिए पत्थरों अथवा बाणों की मार और

1 यदुनाथ सरकार, 'हिस्टरी ऑफ़ औराखंड', पृष्ठ 2, पृष्ठ 163 पर लिखी  
 2 'मुमुके जहांगीरों' (रोबर-रूप अनुवाद), पृष्ठ 2, पृष्ठ 181  
 3 'तारीखे मुहम्मद शाहों', जी० एस० सल्लेमाई द्वारा 'पू हिस्टरी ऑफ़ इ  
 मरालाद' के पृष्ठ 2 में पृष्ठ 178 पर उद्धृत



अमविमुखता के लिए मृत्युदण्ड। आश्वय की बात यह है कि हत्या को समाज व प्रति अपराध न मान कर स्वयं उस व्यक्ति तथा उसके परिवार व प्रति किया गया बुरा काम माना जाता था। अतः, उक्त अपराध का तथ्य-निर्धारण तो चायाधीश कर देता था, पर उसके दण्ड निर्धारण का कार्य सतिप्रस्त व्यक्ति के सम्बन्धियों का इच्छा पर छोड़ दिया गया था। वे चाहते तो हत्यारे को प्राणदण्ड दिला सकते थे अथवा उस सून के बदले उन ले सकते थे।

भारत में यह अनुभव किया गया कि वानून की शर्तें पूरी करना बठिन है। अतः, फौजदारा प्रणामन का बहून-भा काम बाजा के हाथ स निराल कर सरकारी अधिकारियों के हाथ में चला गया।

सरकार की मरचना और उसके कामों का व्याख्या करनवाले नियमों का भारत में कोई मायता प्राप्त न थी। विधिवेत्ताओं और व्यवहार प्रधान राजममना न यह मान लिया था कि शरीयत विधि-व्यवस्था भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं है और कर अथवा भूराजस्व लगान अथवा सरकारी सेवाओं तथा सेना व गठन-असे मामला में पुनीतचरित खलीफाजा की परम्पराओं का पालन करना सम्भव नहीं है।

प्रारम्भिक खलीफाओं-द्वारा स्थापित मुस्लिम पद्धति के अन्तगत राज्य व राजस्व के प्रधान स्रोत दो भागों में विभक्त थे। मुसलमानों को 'जकात' (धर्म दान-कर) और 'खराज' (भूमि कर) देने पड़ते थे और सरकारी सरण प्राप्त करनेवाले गर-मूसलमानों को 'जजिया' और 'खराज' देने होते थे।

भारत में सरकारी तौर पर 'जकात' प्रायः नहीं इकट्ठा किया गया और इसीलिए सरकारी राजस्व की दृष्टि से इसका अस्तित्व नहीं के बराबर रहा। भराजस्व राज्य के सभी प्रजाजनों पर समान रूप से लागू था और उसका भार भा सब पर समान था। हाँ उसके निर्धारण और वसूला के लिए भारत में अपनाए जानेवाले तरीके खिलाफत के मातहत आनेवाली जमान व लिए अपनाए गए तरीकों से स्वभावतः भिन्न थे। भारतीय पद्धति मूलतः हिन्दू थी, जिसमें भारत में प्राप्त अनुभव के आधार पर सशोधन कर लिए गए थे।

'जजिया' कभी-कभी लगाया गया। मुगलों से पहले के समय में फिरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी ने यह कर लगाया। सन 1569 से 1763 तक यह हटा रहा। औरंगजेब ने 14-वीं और 15-वीं शताब्दी की पुरानी प्रथाएँ फिर आरम्भ कर दीं। परन्तु उसने यह अनुभव नहीं किया कि 'जजिया' केवल कानून के नाते ही नहीं, अपशास्त्र तथा नीतिशास्त्र के नाते भी बुरा था।

औरंगजेब-द्वारा 'जजिया' का लगाया जाना कानून के नाते बुरा था, क्योंकि ऐसा करना भारत में मुस्लिम परम्पराओं के प्रतिवृत्त था और इसने उन परिस्थितियों का भी प्रतिवाद किया, जिनमें इसे लगाया जाना चाहिए था। मुस्लिम विधि व्यवस्था के अनुसार, यह दो दलों के बीच होनेवाले इक्तरार के कर भार की अदायगी है और इसी शर्त पर चुकाया जाता है कि दोनों पक्ष इक्तरार की शर्तें पूरी कर दें। प्रस्तुत प्रसंग में एक ओर था मुसलमानों का नायक और दूसरी ओर गर मुसलमान प्रजा। 'जजिया' के लिए 'दुखन' का अनुमोदन प्राप्त है जिगमें कहा गया है कि मुसलमानों का कतब्य है "उन लोगों से मुद्ध करना जो परमात्मा को नहीं

मानते सच्चे धर्म का नहीं। अपनाते और जिनके अपने धर्मशास्त्र हैं, बसते कि वे दासना में रहते हुए व्यक्तिगत रूप से 'जिजिया' न चुकाए।<sup>1</sup>

पैगम्बर और उनके एवदम बाद के उत्तराधिवाग्या अयान चारा पुनीत-परित्त खलीफाआ, न यहूदिया ईसाइयों और आगे चल कर पारसिया के साथ बरार किए और कुरान के आदम को काय-रूप दिया। इस विषय में टन्ही पूर्वोक्तहरणा ने मुस्लिम विधि-व्यवस्था का आधार प्रदान किया।

विधि-व्यवस्था यह है कि जो गैर-मुसलमान मुस्लिम शासन का स्वीकार कर लेते हैं वे 'धिमिया' हैं। 'धिमिया' शब्द का जय है एक इकरार, जिनके प्रति आम्ना बान रहना ममतमान स्वीकार कर लेता है जो जिसका उल्लमन उसे धम्म' (निन्दा) का पात्र बना लेता है। इस इकरार से गैर-मुसलमानों का ऐम कुछ अधिकार मिल जाते हैं जिनकी रक्षा करना मुस्लिम शासक का कर्तव्य हो जाता है। इन अधि-कारों में जन और मान का रक्षा और एक जनिचिन अमान' (गारंटी) शामिल है। इसके बदले में 'धिमिया' उक्त सुरक्षण का मूल्य का रूप में 'जिजिया' अदा करन और मुसलमानों के हितों का हानि पहुँचानेवाले काम में बचन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है। इस इकरार में 'धिमिया' का लड़ाई में भाग लेने से छूट भी दे दा जाता है। जिजिया का खम बदलता रहता था पर जन्म में यह निश्चित कर दिया गया कि इस का रूप में 'धिमिया' का जना कर नकन की क्षमता का देखने का बार्द चौपान जो जन्मालीस निरहम तक बरूल कर लिए जाए। लडन में असमय व्यक्तियों का कर नहीं देना पड़ता था। इस प्रकार बूडा म्त्रिया और बच्चा का समय छूट मिल गई था। मुहम्मद दिन कामिम न इस बग में ब्राह्मणों का भी शामिल किया था पर फिराद तुराक न उन्हें इस का म जला कर लिया।

मुहम्मद न यहूदिया के साथ जा समझौता किया था उसमें यहूदियों की आर से युद्ध-व्ययम अशान्त न की ही व्यवस्था था उन्हें युद्ध के समय सेना में शामिल नहीं होने दिया जाता था। उसमें ऐम ही फरमान अरब देश के विभिन्न भागों के धम-शास्त्रियों के नाम जारी कर लिए। 'जिजिया' की अदायगी के बदले में नजरा के दस्तावेज का यह भरना जनाया गया था कि उनकी जान, मान, जमीन धर्म, उपस्थित-अनुपस्थित उनके परिवारों, उनके गिरजाघरों और उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का रक्षा का जाएगा। बिना पादरों का अपना धर्म-जीवन छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। उन्हें किसी प्रकार दुष्टा या अपमानित नहीं किया जाएगा।<sup>2</sup>

अबू बक्र और उमर न ईराक और मारिया के ईसाइयों के साथ ऐम ही समझौते किए। ऐस मामला का प्रमाण मिलन है जब खलीफा ने इसलिए जिजिया माफ कर लिया और धन लौटा दिया कि वह 'धिमिया' का रक्षा का गारंटी नहीं दे सकता था। ऐसी भी कुछ स्थितियाँ रही हैं जब 'धिमिया' का इस कारण इस अदायगी से छूट दे दा गई कि उनके लिए लड़ाई में भाग लेना आवश्यक हो गया।<sup>3</sup>

बाद के धर्मशास्त्रियों ने 'जिजिया' संगान में निहित मूल भावना में अन्त

1 रारा, 9-29

2 अबू यमुन, 'सिनाबल खराज', पृष्ठ 72-73

3 बन्नाउरी, 'फुतुह बन्ग'

हट गए और उन्होंने इस सम्बन्ध में विस्तृत नियम बना लिए। उन नियमों को बारह शीर्षों के अंतर्गत रखा गया, जिनमें से छह के अन्तर्गत का गड़ व्ययस्थाएँ अनिवार्य थीं, अतः उनमें से किमी के भी उल्लंघन से बरार घण्टित हो जाता था। बाकी छह शीर्षों में उन बातों का जो उत्तरदायित्वों को म्यान दिया गया था, जिन्हें वाछनाय माना गया था। इस दूसरे बग में ऐस नियम शामिल थे, जिनका सम्बन्ध विभिन्ना द्वारा विशेष प्रकार के कपडे पहन जाने, धुडसवारी करने, गिन्जा घर की घटिया बार-बार से बजाने और मुस्लिम बकिम्नान में मुर्ते दफनाने के साथ था। आगे चल कर इनमें और अनेक दुखदायक बातें जोड़ दी गईं। मिसाल के तौर पर, नए धर्म-स्थान बनाने अथवा पुराने स्थानों को मरम्मत पर रोक लगा दी गई और यह आवश्यक कर दिया गया कि 'जजिया' व्यक्तिगत रूप से और पूरा विनम्रता पूर्वक जदा किया जाए। इन असहनीय मांगों के समर्थन के लिए उमर का फरमान जारी किया गया पर उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लोगों को सन्देह है।<sup>1</sup>

औरंगजेब ने जो बरम उठाया वह उस प्रच्छन्न समझौते का उल्लंघन था जो अन्वय के समय से चला आ रहा था। कानूनी तौर पर यह कर्म इसलिए अवध था कि उसने हिन्दुओं से 'जजिया' भी लिया और उन्हें अपने मुस्लिम और हिन्दू शत्रुओं—मध्य-एशिया, अफगानिस्तान और दक्खन के मुसलमानों तथा हिन्दू मराठा—के साथ लड़वाया भी।

जयशास्त्र की दृष्टि से भी 'जजिया' उपयुक्त नहीं था, क्योंकि उससे सबसे अधिक भार उन्हीं पर पड़ता था, जिनमें इसे सहन करने की क्षमता सबसे कम थी। 52 रुपये वार्षिक से 1 मरतब की सम्पत्ति रखनेवाले व्यक्तियों के निधननम बग को प्रति बर 3 रुपये 2 आने देने पड़ते थे, 52 रुपये से 2500 रुपये तक कमानेवालों अर्थात् मध्यम वर्गवालों को 6 रुपये 4 आने प्रति बर देने पड़ते थे, परन्तु 2,500 रुपये से अधिक आयवाले व्यक्तियों को प्रति बर केवल 12 रुपये 8 आने दान पड़ते थे। यह बात उचित वित्त-व्यवस्था के सभी सिद्धान्तों के प्रतिकूल थी।

राजनीति की दृष्टि से भी यह ठीक नहीं था। इससे निधनों के साथ निदयता का व्यवहार होता था और अमीरों पर कम बोझ पड़ता था। इन निधनों में वे 'शाम बासा' होते थे, जिनके लिए 'जजिया' उन बहुत-से बरों में से एक था जो उन्हें हर हाल में अदा करने ही हूँते थे। उसका सम्बन्ध अय देनदारियों के साथ किया जाता था। हिन्दू मुख्तम और जमींदार इसे हिन्दू अमीरों से वसूल करके शाही अधिकारियों को सौंप देते थे। इस प्रकार इसकी अदायगी विपत्तिजनक होकर भी अपमानजनक नहीं होता थी। दूसरी ओर यद्यपि 'जजिया' शहरों में आर्थिक दृष्टि से क्षति अधिक असुविधाजनक तो न था, परन्तु इसके साथ होनेवाला छाप सहन रूप से लगा था और कमानेवाले इसके कारण विद्वेषपूर्ण धर्माघातों की ओर से अपमान भी सहने पड़ जाते थे। इसने उच्च वर्ग में विद्वानों और गृही, निराशा का भाव उत्पन्न कर दिया।

मुसलमानों और बर मुसलमानों के बीच विभक्त करनेवाले अय बर भी इन ही अनुचित और गैर-कानूनी थे। हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों में न करनेवाले व्यापार विपय कर और 'गुल्' नाम का बर के अन्तर्गत आते हैं।

1. देविए मनीर पादुरी, 'दर एण्ड पीस इन द ला आक इस्लाम', पृष्ठ 194

## 2 न्याय-प्रणामन

मरुत का राज विषयक विनियमि बहूत हा सीमित थी। गै-भूतमाना पर इमका प्रभाव बहूत हा सीमित क्षत्र में पटना था। औरगजय ने अनुभव निमा कि राज मुन्निन प्रणामन जस्य 'धिम्मिया प' इन्नाम क कानन तागू नहीं हान, उनक सामन्त उनक ज्यत धम विद्वान्ता क हा ज्ञान पर निरन्दिन निए जान गणि।<sup>1</sup> हिन्दू बजत फौजगरी क सामन्ता में काजिया क सामन्त पग हा ये। परन्तु उनक तब अपराध का सम्बन्ध था 'सायायशा का वाम कवन सम्बद्ध व्यक्ति का अपराध घापित करना था, उन दिए जानेवाले दण्ड का निगम मुद्द की इला पर निभय हाता था। इमके अलावा उन बहूत-स हिन्दुता और मुसलमाना का ता गावो म उन ध, गाव में हा निए जानवाने उम रन्नास स मनुष्य र्हना पटना था जहा वाता म-कारा तीर पर निपुक्त अधिवासा नहीं हाता थे।

उन समय का 'न्याय-व्यवस्था मूरान अपवा आन क भारत की परिचित व्यवस्था में सदमा भिन्न थी। अजलता की काई ऐसी शमबद्ध शूद्रता नहीं थी जितने प्रभुद्ध क्षेत्राधिकार हा। प्रथम काता का अज्ञान में पहले-पहन मुकदमा भी पेश हा तबता था और बहा उसकी अपाल भा दायर की जा सक्ती था। सचता यह है कि उन समय मुरा अय में अपाला क्षेत्राधिकार से ताता परिचित हा नहीं थे यद्यपि मूल अज्ञान म भिन्न दूसरी अज्ञान में मुकदमा चलाया जा सक्ता था। 'सायायशा का ताच 'दनात करन का भा अधिवासा था और सज देने का भी। प्रत्येक काता छोटे पा दटे नमी तरह क दावानी और फाजगरी सामन्ता की मुनवाद कर सरता था और उन पर अपराध या सम्पत्ति के क्षेत्राधिकार का काई बंधन न था। उनक नामन धार्मिक विधि-व्यवस्था और सामान्य विधि-व्यवस्था दाना के ही सामने आते थे।

'धार्मिक अधिवासा का प्रणामन मूरत और दटे-बटे नगरा—सायाय्य का राजधाना, प्रान्ता क मुख्य नगरा, सरकार (जिला) और परगना—उन सीमित था। सायाय्य क प्रधान काता ( काता-उर-बुजान) और प्रान्तीय काजिया का नियुक्ति न्यय सादागह करता था। सरकार और परगना के काजी शाहा उनक क रधीन नियुक्त निए जाते थे तथा प्रधान काता का विभाज उनके नाम नियुक्तिपत्र करत करता था। एक बार नियुक्त हो जाने पर काजी का प्राम तथात्ता नहीं हाता था और दग प्रभर उसका बहू पद जावन मर बना र्हता था। उन्हें पारिधमिक क नोर पर साधारण मुक्त जमीनें द दी जाती थी।

इस काय-मदति का उल्लेखनीय बात यह था कि नियुक्तिपा करन के अतिरिक्त, सरकार का 'न्याय प्रणामन क साथ काई सम्बन्ध नहीं था। यद्यपि बादशाह 'न्याय का मूल था मना जाना था और बहू तथा उसक प्रान्तीय प्रतिनिधि विवायक मुनता गौर अज्ञान का दमन करता करता बहू न्य मानन थे, तथापि उस समय काय-विनियम तथा 'न्याय-विनियम में पूरा पापन ही दृष्टिगोचर हाता है।

ऐसा परिस्थिति में प्रभुमता का अधिष्ठाति गवने अधिग्र प्रत्यय न्य म सायाय्य काता म हा नहीं था। यह 'सायाय्य भी था। परन्तु प्रभुमता क चारा

1 इतिहास, 'एकदम आननगारी', एन० भा० अन्तर-द्वारा 'एशियाटिकस आर-एशिया इतिहास इतिहास' (1940 का संस्करण) क पृष्ठ 101 पर उक्त

और अराजकता का छाया विद्यमान रहती है। एशियायी देशों में यह छाया गहरी रही है और सदा ही अतिशय पर फल जान का प्रयास करती रही है। किंचिन्मा सहारा पार करके पूरे देश में फल कर सबल अपना तमोराज्य फलाने का उपक्रम करती रही है। ऐसा स्थिति में सनकता, तत्परता निष्पत्त-मामध्य कायगत स्थिरता, आदि गुणों का आवश्यकता थी। कायपालिका को सशक्त बना कर ही इन आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव था। शासन की स्थिरता—नहीं, उसका अस्तित्व—को सदैव खतरा बना रहना था। तरहवां शताब्दी के आरम्भ में तुर्की शासन के आरम्भ से लेकर लोदी सुल्तानों के पराभव तक भारत पर पांच वंशों का शासन किया, जिनमें से प्रत्येक का शासन-काल औसतन साठ वर्ष रहा। इस अवधि में उद्देग-आतंक के बड़े-बड़े अन्तराल—मगल अभिशाप और तमूर के विघ्न-तुल्य आक्रमण—गामने आए।

अतः यह आवश्यक हो गया कि कायपालिका को पूरा शक्तियाँ प्रदान की जाएँ और अधिक-से-अधिक साधन सुलभ किए जाएँ। परन्तु मानव भस्तिष्क केवल उपयोगितामूलक औचित्यो से सन्तुष्ट नहीं होता। कायपालिका की सत्ता को उचित ठहराने के लिए नैतिक कारणों की धाज का गई। एक बात यह भी है कि प्रचुर शक्ति का प्रदर्शन सदा ही जत्यन्त प्रभावशाली होता है। उसमें आतंक तथा आदर का भाव का उदय होता है। अतः अनिवाय रूप से राजतन्त्र का एक दिव्य आभा से आलोकित कर दिया गया। यह आवश्यक हो गया कि सत्ताधारी व्यक्ति तक्ष्य सिद्धि की भावना से अनुप्राणित हो ताकि उस सत्ताधारी के प्रजाजन अपने भीतर के पशुत्व के दमन और बर्पादारा के भावों का रक्षा के लिए अभीष्ट प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

सत्ता के गुणधर्म अपनी व्याप्ति तथा सीमाओं में सत्ताधारी के व्यक्तिगत पक्ष पर हैं, जोर देने से। उस शक्ति का बहन करनेवाला व्यक्ति शिष्टता-सम्पन्न माना जाता था। वह शक्ति राजनीतिक अधिकार की बाह्य प्रतीक और राज्य की प्रभुसत्ता तथा ताकत की मन अभिव्यक्ति थी। सत्ताधारी अपने प्रजाजन का निष्ठा का आधार और अपने राज्य-संगठन का प्रधान केन्द्र बिन्दु था। मैनाओं के नायक, सैनिकी अधिकारी कुलान विद्वान कलाकार और कवि, सभी उस सत्ताधारी के व्यक्तित्व की झार संधे से और उसका अनुकम्पा के अधीन थे।

देश के सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में नरेश अथवा सम्राट और उसके राज-दरबार का योगदान अधिक महत्वपूर्ण था। दुर्भाग्यवश, सम्राट के व्यक्तित्व के उन्नयन में चाटुकारिता का बढ़ावा दिया और विचार तथा कायगत स्वाधीनता का न्यून कर दिया। दरबार की साज-सज्जा और वहाँ प्रचलित आचार व्यवहार विज्ञान भक्ति तथा बहा हानिवाले पूजन-जागृयना से विश्रय भिन्न नहीं था। सम्राट का रत्नजल्पि सिंहासन पर बठाया जाता था जिसके ऊपर गाँटे विनारों से बड़ा सजा रेशमा वितान तना होता था। वह सिंहासन एक ऐत मंच पर रखा जाता था जो दरबारियों अभ्यर्थियों और कृपावाशियों का भाउ से बड़ा ऊँचा हो। आनानारिता और चाटुकारिता का वातावरण सब ओर व्याप्त होता था। इस प्रकार के दरबार स्वयं अपनेवाले धनिधर न उस अवसर का वर्णन किया है जब सम्राट हर्षा भय्य व्यक्ति के हाँडी से निवृत्तना त प्रत्येक शक्ति के प्रति साधुवात् प्रवृत्त करत हुए दरबारों अपने हाथ आवाश का आर

उठा उठा कर बल्लार-बल्लार चिल्ला उठने थे। चाटुकारिता का यह प्रवृत्ति समाज में इनका अधिक धर कर गई थी कि चिन्तित्वा के लिए बनिबर स प्रायना करते समय सामन्त उस युग का अरम्भ हिप्पानेटोस और एविमन तब क चउते थे। इस प्रकार मध्य-कालान भारतीय सामन्त शक्ति का साधार स्वरूप माना जाने लगा। शक्ति में सत्ता और राजस्व का सम्मिश्रण तत्कालत था हा। यही दाता तत्त्व कायकार प्राधिकार के अनिवार्य अंग थे। उनका अतिरिक्त कुछ भाभावदन तय भी थे अर्थात् शक्ति का नगना छिपाववाल कुछ आहम्बर भी थे। मत्ता और मनोविनोय धम और दानपालना साहित्य और विज्ञान तथा ललित कलाया और कला-वीजन का प्रोसाहन इसी क कुछ उन्मत्त है।

मध्य-कालान सामन्त-व्यवस्था न व्यापार और उद्योग तथा लागू क सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में द्युत शक्तिवस्था सिद्धात। हा, मुननमाना पर इन्तामी धम-व्यवस्था-द्वारा निर्धारित विधि-निषेध लागू करना मुननमान शासन का धम रहा।

सम्राट क चारो आर पात्र गौरव का ता प्राचुर था, परन्तु उसका कायधर बहुत ही सामान था। उनका प्राधिकार में कोई पात्राण न था। उन सम्राट सबक अलग-अलग ही बना रहता था। बहुत अधिक व्यक्ति उनका कभव में रचि नहीं न पाते थे और उनका अनुगमिया वा एव गून में बाधनवाले बधन कभा अत्यन्त तुड नही रहे। सम्राट विद्वेषा प्रतिद्वन्द्विया स पिण रहता था। क सांग उसका निरदतम सम्बन्धिया और सांग-साधिया में स हात थे। बागहा और बधुता पयक बातें बन गई थी। एसा स्थितिमा में कवन अमाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति जाना गना महता बाग रच सनत थ। चग्नि जयना मघा क। दष्टि म दुनक शासन शासक। परन्तु ही जान थे। बागशाही पुनना क सिन्धु बागानुक्रम क आधार पर हा प्रतिभा प्रमाणित कर सिध्याने का काद उपाय न होने के कारण प्रत्यक सम्राट ता सिहाला गने क लिए अपना शक्ति-नामम्य सिद्ध करनी हाता थी। शासक राज्य म अस्थिरता जा जाता था आर उत्तराधिकार विषयक दुडा तथा सांग कभा क द्युत परिवर्तता क कारण उपस्थित हा जाने थ।

### सरकार और प्रशासन

मुगल प्रशासन-व्यवस्था का विरासतान तत्त्वा क आधार पर दृष्टा था। इनम स दा विन्नेसा थे और एव देना। विन्नेसा तत्त्व मुगल शासन न अपना मानमनि अर्थात् मध्य-युगिना स दृष्टक लिए थे उहा मगोना की यादापरय सभ्यता और ईरान का सिन्धु-नता प्रधान सभ्यता का मा दृष्टा था। माता न ये देना धाराए दृष्टा की। शासन और उसका दृष्टक की स्थिति स सम्बन्धित उनका विचार ईरान से उद्भूत थ। उहा सस्टुति—भाषा साहित्य दान और बौद्धि तथा सौन्दर बाधात्मक दृष्टिकाना—पर भा इरान का प्रभाव अधिष्ठ था। परन्तु अपनी सैनिक सगटा म उहोंने उहा प्रकार माता का परम्पराया का पालना किना नैसा कि उहोंने अना ममाभा थे सगरी, का रचना परत समय किया था।

भारत न उहा मूलाव-व्यवस्था और विचार व्यक्त्या क लिए आधार प्रदान किया।

मुगल सरकार का आधार सना था। बादशाह उसका प्रधान सनापति था और उसके मन्त्री सना व अधिकारी थे। सभा सेवाएँ भनिक् थीं, कर्मोक् सनिक् और असनिक् धमचारियो मे बाई भेदनही रखा गया था। सभी अधिकारी एक् ही एकीकृत सनिक् सवग के थे। शाही मुक्यालय—चाहे वह राजधाना मे हो अथवा अभियान की स्थिति मे—उद् ए-मुअल्ला' अर्थात् उच्च शिविर' कहलाता था।

पूरी व्यवस्था मगोला के ढंग पर की गई थी। मगोला की सेना दशमिक् पद्धति पर विभक्त थी। उसमें सबसे छोटा आहदा दस अश्वारोहिया के नायक का था और उससे ऊपर सौ अश्वारोहिया एक हजार, दस हजार और एक लाख अश्वारोहियो के नायक का था। मगोल यायावर थे। इसीलिए वे कृषि भूमियां से दूरे न रहे। उनके भवशा—भेड-बकरिया और घोड़े—हैं उनकी सम्पत्ति थे और उनकी घगगाहा तक ही उाका क्षेत्राधिकार था। अधिकारी और अनुचर उसी पर निर्वाह करते थे परन्तु वे आक्रमणा से प्राप्त होनेवाला उपलब्धि से अपने साधन बढ़ा भी लिया करते थे।

भारत मे परिस्थितिया इससे भिन्न थी। अतः यहा सना की उग यायावरीय धारणा का उस कृषिमुलक अथ-व्यवस्था के साथ समजन करना आवश्यक हो गया, जो यहा प्रचलित थी। सेना मगोला के ही नमूने पर दशमिक् क्रमाना के आधार पर संगठित की गई, जिन्हें 'मनसब' कहा गया। इन्हें तर्तीस वर्गों में विभक्त किया गया। ये वर्ग कुलीनों के लिए दस से लेकर पाच हजार तक के थे। शहजादों के लिए इनसे उच्चतर वर्ग भी थे। मनसबदार का वेतन इतना रखा जाता था कि वह अपने व्यक्तिगत धर्मसे वा खच पूरा कर सके, अपने अधीन सनिको का वेतन चुका सके और यातायात प्रबंध कर सके। यह वेतन या तो सरकारी खजाने से नकद दे दिया जाता था अथवा उसके बदले जागीरो से मिलनेवाले राजस्व का अंश निर्धारित कर दिया जाता था।

साम्राज्य की अधिकतर सेना जुटाने का भार मनसबदारा पर था। प्रत्येक मनसबदार इतने सनिक भर्ती करने और बनाए रखने के लिए उत्तरदाया था जितने उसके लिए निर्धारित थे। ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था कि मनसबदार अश्वारोहिया का चुनाव करत समय जानाबू भावनाआ से प्रभावित हों। उदाहरण के लिए मुगल अधिकारी मुगला में से ही अपन अनुगामी चुनना पसन्द करते थे ईरानी ईरानिया की ही सनिक टुकडियां भरते थे और पठान मालद्वार पठान टुकडियां को ही अपन शष्ट के नाचे एक्त्र किया करते थे। किरा, हदतन मिना जुली भर्ती भ कर जाता थी।

सनिका के लिए यह अनिवाय नहीं था कि वे उस मनसब के साथ जागीरा के अगामा हों। उनमें से बहुत-से साग नगर के निवासि हात के और सिंधु नदी के पार से भ, ऐसे बहान-स साग आउर भर्ती हो जात थे जिन्हें शांतिन करना मशह। पसन्द किया जाता था। मुद्ध की व्यूह रचना में प्रत्येक वर्ग अपने कबीले के सरदार के ह। शष्ट के नाचे एक्त्र होना था।

दश प्रकार संगठित सेना का बुराया स्पष्ट हैं। उसमें एक्ता का स्थापना नहीं हो पाती थी और वह किरा एक व्यक्ति की इच्छा और आदेश के अन्तगत काम करीवाले संगठित समूह का भाति काम नहीं कर पाती थी। 1757 ई.

सालुपा और नन्दक जातिया के लागे अथवा ऐसी जातिया अथवा परिवारों की ही पौज हाता था, जा बचत इमलिए हथियार प्रहण करते थे कि इस प्रकार उन्हें नौकरी और सूट-मार करन के अवसर सुलभ हा जाते थे। वे लाग किन्ही उच्च सिद्धान्ता से प्रेरित नही होत थे। उनका गति-माहिस नेता पर ही निर्भर रहता था।

मुगल मेना सामंती आधार पर संगठित नही था। उसके सेनानायक वे पुश्तना भूस्वामी नही थे जिनके अर्थान उनके माभन्त और अनुचर जमीना के मालिक होत और सेवा करन थे। वे ता व्यक्तिगत योग्यता अथवा बादशाह अथवा किसी ऊचे अधिकारी का सिफारिश के आधार पर ही नियुक्त किए जाते थे और ऐसा करते समय पारिवारिक परम्पराया का ही मुख्य रूप से ध्यान में रखा जाता था। उन्हें केवल नगदी के रूप में अथवा भूपजस्व के अक्षरूप में सरकार से अपना वेतन प्राप्त करन का अधिकार था। अत जब तक मुगल सरकार अपना शक्ति शीघ्र बनाए रहा, तब तक एक पुश्तना भू-सम्पत्तिधारी मुलानन्दन का विकास न हा सका।

जो एकमात्र पुश्तनी कुलान-वा विद्यमान था, उसमें हिन्दुओं का बहुतायत था। उसमें वे जमींदार शामिल थे, जा प्राचीन हिन्दू राज-परिवारों के वंशज थे। उन्होंने विजेता के सम्मुख घुटन टेक लिए थे, उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली थी और उसे राज-कर चुवान का शत्रु स्वीकार करके अपनी जागिरें कायम रखी थीं। वे तो नगदी के इस सूत्र में ही राज्य के साथ जुड़े थे, अन्यथा उसके विभव-पराभव में उनका कोई रचि न थी।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में उत्तरप्रदेश में जमींदारियों के विभाजन से हिन्दू जमींदारों की यह बहुतायत स्पष्ट हो जाती है। इन बावजूद से पता चलता है कि साम्राज्य के मध्य में स्थित प्रदेश बहुत ही तब राजपूत जमींदारों के हाथ में था। सोलहवीं शताब्दी में सम्पूर्ण जिले उन्हीं के नियन्त्रण में थे परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते उनका स्थान प्रधान बने रहने पर भी जाटा गूजरों अहीरा मुसलमानों और अन्य जातिवाला ने भा जागिरें प्राप्त कर ली थीं।

यह अवधि का बत है कि उपर्युक्त अवधि के आरम्भ में भा मुसलमान जमींदारों का राज्य बन थी और उनके अवधि के अन्त में भा। जिन गिने-चुने मुस्लिम परिवारों ने जमीनें प्राप्त कर ली थी, वे या तो मुल-भूव हुसूना के अधिकारियों के वंशज थे अथवा वे स्वतन्त्र व्यक्ति थे जिन्होंने बतपूर्वक जमीना हथिया ली थी। बाबर के साथ आनेवाले मुगल सेनानायकों में से कई भा इन देशों में नए बसा। परन्तु अठारहवीं शताब्दी और बाराहवीं शताब्दी में बनी आद असे-वेजे पद पुश्तना बनन गए और जमींदारों के तबादले कम होन लगे। 18-वीं शताब्दी में अठारहवीं शताब्दी के मुनिधारियों का उदय हुआ था, जो उन जमानों पर स्वामिक का दावा करते लगे। पुराने जमींदारों का अन्त जागिरें बदा ला विगादा अथवा इजारागरी न बनन का स्थापना रूपसे राज्य प्राधिकार बना दिया और जागिरदार अवन-माने निर्धारित भा। पर जन कर बट गए।

1. बघिए, इतिहास और साम्य-द्वारा लिखित 'मिस्बायत मान द हिस्टरी, फीरुलोर एण्ड इतिहास आरु रेगेज आरु नार्थ-वेस्टन प्राविन्सेज,' पृष्ठ 2 1596 और 1844 के अर्थों से सम्बन्धित बनते, पृष्ठ 202 3



बंगाल की दीवानी जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंपी गई उस समय की उस प्रांत की स्थिति एक बार फिर हिन्दू जमींदारों की बहुलता प्रकट करती है। यह निष्पक्ष निकायना उचित ही है कि पश्चिमी पंजाब के अनिश्चित पूरे भारत में भूमि विषयक श्रेष्ठाधिकार हिन्दुओं के ही हाथ में थे।

मुगल कुर्तानतंत्रता मानव वननभागा अधिकारियों का एक शृंखला-मात्र थे। भारत में इंग्लैंड जैसा सामुहिक तान्त्रिकेदारी नहीं था। पुस्तकाना कुर्तानतन्त्र के अभाव ने सरकार को गणिका के स्थायी और दलताता प्रचार से हाथ चिन्न कर दिया। न तो तन्त्राण पास चचा चित्त और उद्धत सम्राट के अयाचार से बचने का कोई गाधन या और न सम्राट के पास मुसलमानों के दिना के लिए कोई निश्चिन्न सहायता अवकाश गुंठ मत्तारा। गानन का आव पनवार विन्न न या—आधिया और तूफाना अधीन।

#### 4 जाता

साम्राज्य के प्रजाजन दो वर्गों में विभक्त, थे। उच्च वर्ग जिसमें शासक भी सम्मिलित थे, मुसलमानों और हिन्दुओं की श्रेष्ठतर जातियों से बना था। सयद मुगल ईरानी पठान या अफगान और शोख मुसलमानों के उच्च वर्ग में आते थे और राजपूत ब्राह्मण खत्री तथा कायस्थ हिन्दुओं के उच्च वर्ग में। शासक-वर्ग की सैनिकेतर शाखा में सैयद और ब्राह्मण थे। मुगल सरकार एक ऐसी उच्च वर्गीय सरकार थी जिसका दो स्तम्भ थे—सेना और सेवाए। इन दोनों पर उच्च वर्गों की सैनिक शाखा—मुगल ईरानी पठान और राजपूत—या एकाधिकार था। साम्राज्य के मनसबदारों की सूची के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। 'मासिरत उमरा में अरब के शासन-काल से लेकर शाह आलम के समय तक के ऊंचे ओहदे के मनसबदारों की सूची दी हुई है। इस सूची में 636 मुस्लिम अधिकारी हैं और 87 हिन्दू। मुसलमानों में मुगलों और पठानों की संख्या बहुत अधिक (570) है। सयद कम (33) हैं और शख उनसे भी कम (25)। इसी प्रकार हिन्दुओं में लगभग आध दजन व्यक्तियों को छोड़ कर सभी महाराष्ट्र बुन्देलखण्ड मध्यदेश और राजपूताना के राजपूत हैं। स्पष्ट है कि मुगल शाशाहों ने पहले से ही यह समझ लिया था कि उन्हें सेना में केवल युद्ध प्रिय जातियों को ही नियुक्त करने की नानि अपनानी चाहिए और यही वह नीति है जो भारत में अरबों के सच संगठन की आधारशिला बनी।

सैयदों को अन्तर्गती विभाग में नियुक्त किया गया था, क्योंकि वे एक ऐसे वर्ग के थे जिसका व्यवसाय हा अध्यायन-अध्यापन था। इसी प्रकार इन्फान्टेरी के काम में पश्चिमों की सहायता के लिए ब्राह्मण नियुक्त किए गए थे। भूराजस्व और वित्त विभागों ने कायस्थों का प्रथम दिमा जो हिन्दुओं के शिक्षित वर्गों में सम्मिलित थे।

जब हिन्दू तथा मुस्लिम जातियां जा आवादी या बन्दूक बण भाग थी एक व्यवसाय—शृंगि उद्योग और व्यापार—में लगी थी जो उच्चतर वर्गों के लिए अनुपयुक्त समझ जाते थे। वे ता वास्तव में राज्य के विशेषाधिकारहीन प्रजाजन थे, जिनका प्रशासन में कोई भाग या दखल न था। स्वभावन ही सरकारी

सामना] में उनका कार्य रचित न हो और सरकार का लाभ हानि के प्रति भी उनमें उदासी भाव हो या।

सम्यक् हिन्दू-समाज-व्यवस्था में निहित भावना न सम्राज्य व पुर काय व्यापार पर व्यापक प्रभाव डालता हो बल्कि जाति की भावना न मुक्तमाना में न गहरी उठे जमा ली थी और वह साम्राज्य के प्रशासनपन्त्र का आधार बन बैठे या। हिन्दू-व्यवस्था के अन्तर्गत शरिया का समाज-व्यवस्था का पाषण-संरक्षण माना जाता था और अस्तिविष्टि पहा तत्र पण्डित गद वि वे अपन का उच्च जातिवा के स्तर निर्धारण व्यवस्था स्तर-परिवर्तन व भी अधिपतरी मानने ला। एत वृत्त-न तवा आए, तव पत्राव का पत्राव विधानका व सामूहिक नृणा और महाराष्ट्र व नरे न व्यक्तिता और वर्गों के स्तर उदा या गिरा दिग। इहाहा धर्मवचन के सामाजिक परिचय व संरक्षण। उक्त समाज में स एत का उक्त मराठा सरकार व्यवस्था व्यक्तित्व के लिए उपयुक्त वातावरण का खाज करना ता अपन-आपक गणतंत्रों का वचन बनाना चाहते थे।

मुगत बादशाह उन शक्तिप नृणा के समान व विपका वन्य सामाजिक अनुशासन बनाए रखना था। अतः पत्रल के कथनानुसार समाज के चार वग थे—  
 दाढा व्यापार तथा कारागार विद्वान और विज्ञान। 'अन मन्त्रत का मह वक्तव्य हा जाता है कि वह इनमें से प्रत्येक का क्यामान बनाए रखे और अपनी व्यक्तिगत साम्यता तथा दूरता के प्रति व्यापक भाव-द्वारा इन शक्ति का पूजने-पूजने व। जिस प्रकार राजनीति-पक्षी विरुद्ध परत मनुष्य के उपयुक्त चार वर्गों की महात्मता से अपन गन्तुन बनाए रखता है उसा प्रकार साम्राज्य के अन्तिम मन्त्रत में भी एत ही चारों तर्ग (कुलाना साम्ब-अधिपतरीया वद्विर्वाविता व्यवस्था प्राप्तता, और कर्मचारिया) का सम्भाव जाता है।<sup>1</sup>

अतः पत्रल न तिन चार वर्गों का उक्त शक्ति उनमें से मात्र तप व मूलाधार व। महत्त्व का दृष्टि न विद्वान का स्थान उक्त बाद था। इनका में विद्वान विधिपेता धर्मप्रवृत्ता, अध्यापक गण और कवि शामिल व। उक्त पोषण संरक्षण का कर्तव्य था। शासन करना साम्राज्य का पान के कर्तव्य बनाने में यह अतुभव करत थे। कलाशा और विज्ञानों के संस्था कहना उचित था और पूजन नाग का मान्यता तथा पुरस्कार देने के लिए अतुल्य रखे व जा शक्ति, धन-स्थान शक्ति सामाजिक व्यवस्था विज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान हा बन थे। इस संस्था का अधिपत स्वभावतः हा मुक्तमान उक्तमात्रा की प्राप्त होता था, परन्तु हिन्दू का भी भा उक्त गहा का पना था। प्रचेर साम्राज्य के दरबार में विज्ञान संस्था विद्वान और हिन्दू-वर्ग होते थे ता मन्त्रत के उक्तता से। हिन्दू जातिपक्षी और विधिपेता का साथ ता दरबार का उक्त था।

विज्ञान-व्य के साथ का साथ अज्ञान नृणा के कारण उक्त प्रभाव अतुल्य व। सत्य-वचन पुरत व पत्रिका की भाति उक्त पत्रिका और मन्त्रित तथा हिन्दू नृणा का अतुल्य अज्ञान उक्त का अतुल्य पत्रिका प्रवृत्त का भाति उक्त का अज्ञान उक्त नृणा था। इनका अपन हिन्दू

1 ('आदि प्रवृत्त' का अन्त-भाग अतुल्य, इतता एतता), पृष्ठ 1, पृष्ठ 4

बंगाल की दावानी जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंपा गई, उस समय की उस प्रांत की स्थिति एक बार फिर हिन्दू जमींदारों का बहुलता प्रकट करती है। यह निष्पत्ति निश्चलता उचित ही है कि पश्चिमी पंजाब के अनिश्चित पूरे भारत में भूमि विषयक श्रेष्ठाधिकार हिन्दुओं के ही हाथ में थे।

मुगल कुलीनतंत्र का मतान् वेतनमार्गी अधिकारियों का एक श्रृंखला-मात्र थे। भारत में इस्लाम के आगमन के तत्काल बाद ही तास्लुकेदारों का उदय था। मुगल कुलीनतंत्र के अभाव में सरकार का शासन के स्थायी और दृढ़ता का आधार भी ही बचिंत कर दिया। न तो जानाब पास चबल वित्त और उद्धत गमाट के अत्याचार से बचने का कोई साधन था और न सम्राट के पास मर्मवत के दिना के लिए कोई निश्चित सहायता प्रयत्न मुहं सहायता का मन का नाच पनवार विना था—आधिया और तूफाना के अधीन।

#### 4 जाता

साम्राज्य के प्रजाजन दो वर्गों में विभक्त थे। उच्च वर्ग, जिसमें शासक भी सम्मिलित थे, मुसलमानों और हिन्दुओं की श्रेष्ठतर जातियों से बना था। सयद, मुगल, ईरानी, पठान या अफगान और शेर मुसलमानों के उच्च वर्ग में आते थे और राजपूत ब्राह्मण पठान तथा वायस्य हिन्दुओं के उच्च वर्ग में। शासक-वर्ग की संनिधेतर शाखा में सयद और ब्राह्मण थे। मुगल सरकार एक ऐसी उच्च वर्गीय सरकार था, जिसके दो स्तम्भ थे—सेना और सेवाए। इन दोनों पर उच्च वर्गों की सन्निधे शाखा—मुगल ईरानी पठान और राजपूत—का एकाधिकार था। साम्राज्य के मनसबदारों की सूची के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। 'मासिरत उमरा' में अरब के शासन-काल में लेजर शाह आलम के समय तक के ऊंचे ओहदे के मनसबदारों की सूची दी हुई है। इस सूची में 636 मुस्लिम अधिकारी हैं और 87 हिन्दू। मुसलमानों में मुगल और पठानों की संख्या बहुत अधिक (570) है। सयद कम (33) हैं और गैर उनसे भी कम (25)। इसी प्रकार हिन्दुओं में लगभग आधे दान व्यक्तियों को छोड़ कर सभी महाराष्ट्र बुंदेलखण्ड, मध्यदेश और राजपूताने के राजपूत हैं। स्पष्ट है कि मुगल बादशाहों ने पहले से ही यह समय लिया था कि उन्हें सेना में केवल युद्ध प्रिय जातियों को ही नियुक्त कराने की शक्ति अपनानी-चाहिए और यही वह नीति है जो भारत में अंग्रेजों के राज्य संगठन की आधारशिला बनी।

सयदों को अदालती विभाग में नियुक्त किया गया था क्योंकि वे एक ऐसे वर्ग के थे जिसका व्यवसाय हा अध्यापन-अध्यापन था। इसी प्रकार इन्फान्टरी के काम में पात्रियों का सहायता के लिए ब्राह्मण नियुक्त किए गए थे। भूराजस्व और वित्त विभागों में वायस्यों को प्रथम दिया जा हिन्दुओं के शिक्षित वर्गों में सम्मिलित थे।

अन्य हिन्दू तथा मुस्लिम जातियां जो आबादी का बहुत बड़ा भाग थीं एतद्व्यवसाय—कृषि उद्योग और व्यापार—में लगी थीं जो उच्चतर वर्गों के लिए अनुपयुक्त समझ जाते थे। वे तो, वास्तव में राज्य के विशेषाधिकारहीन प्रजाजन थे, जिनका प्रशासन में कोई भाग या दखल न था। स्वभावतः ही सरकारी

सामान्य में उनकी बार्द रवि, न ही और सरकार का लाभ हासिल व प्रति भी उनमें उपाय भाव हा था।

स्पष्टतः हिन्दू-समाज-व्यवस्था में निहित भावना न साम्राज्य व पूर व्याप-व्यापार पर व्यापक प्रभाव डालता था, क्योंकि जाति की भावना न मुसलमानों में भी गहरा नहीं उभा सी थी और वह साम्राज्य के प्रशासनिक का आधार बन बैठा था। हिन्दू-व्यवस्था व अन्ततः क्षत्रियों का समाज-व्यवस्था का पावन-मरणा माना जाता था और यह न्यति दृष्ट तब पट्टेच गद विष अवन का अन्त गतियों के स्वर निराशा प्रथम स्वर-भक्तिवत व भा अधिवासी मानने लग। ऐस वस्तु-ता अवसर बाए नव पत्राय की परताय रिमान्त व रा-पूत नृणा और महाराष्ट्र नरे न व्यक्तिता और वों के स्वर उठा या गिरा दि। साम्राज्य धमाचाय के सामाजिक परचना के सारस्य है। इनके कामा म स एव था उन मराज सरदार अयमा अय व्यक्तिता व लिए उपयुक्त वा-लिया का धाय करना जा अपन-आपका राजपूता का वशन बनाना चाहत थे।

मुगल बादशाह उन क्षत्रिय नृणा व समाज व जिन्हा वतव्य सामाजिक अनुशासन बनाए रखता था। जबल फडल के कपनादुगार साम्राज्य चार ढग थे—मादा व्यापारी तथा बासीर विद्वान और किसान। 'वन मभट का मह वतव्य हा जाता है कि वह इनमें स प्रथे का यथास्थान बनए रहे और अपनी व्यक्तिगत साम्यता तथा दुमरी के प्रति बादर भाव-दान इन विश्व का पूजने-पूजने दे। जिस प्रकार राजनीति-स्था विरुद्ध पुण्य मनुष्या व उपयुक्त चार वों का स्थापना स अपना सन्तुलन बनाए रखता है उभा प्रथे बादशाह के अन्तिम म्यहय में भी एन हा चारा तत्ता (कुलाना साम्य-अधिवासी वद्वि-विना अथवा प्रान्तता और कमचारिया) का समास हाता है।'

जबल फडल न तिन चार वों का उपाय तिम उन्हें स मादा राज्य व मूसाधार थे। महत्व का नृष्टि स विद्वाना का स्थान उनके का था। दाय में विद्वान विधिदेता, धर्मशास्त्रवेत्ता, अध्यापन तयन और कवि शामिल थे। उनका पोषण करवार का वतव्य था। धान्य वरता राज-समाज का शान के बन्ध-वत बनाए में सब अनुभव करते थे। कनामा और बिनाके सामन बहाना उरे त्रिद या और न एने लागा का मान्यता तथा पुरस्कार देन व लिए जानुर र्त से जो रविता, धम-दान इतिहास साहित्य अथवा विज्ञान के क्षेत्र में शिष्यता हो जत थे। अन्य सरदार का अधिवासा स्वभाव हा मुसलमान उतमाका का प्राण हाता था, परन्तु हिन्दुवा की भा उद्वेग नहीं की जाता था। प्रथे बादशाह के दरवार में विज्ञान ससृज विद्वान और हिन्दा-कवि हा थे जामरट व वृजपत्र थ। हिन्दू पत्रा-पत्रों और विधिवत्ता की माता ता बरानर बना रती थी।

गिणित-वा व तोता का तत्रा अधि न हात व वार उतमा प्रभाव वतुन अधिठ थ। मध्य-कालन मुगल व पत्रिका का भावि उतमा पत्रिका और मन्त्रिम तथा हिन्दू-सामाजिक व वतुन उपाय-समाज होता था सन्तु अता शिवमा प्रतिष्ठा का भावि उतमा व वरति ताज नग था। उतमा अथवा हिन्दुव

म कोई एक मुठ घम-व्यवस्था स्थापित न हो सकी और इनमें से किसी न भी किसी ऐसे सर्वोच्च धार्मिक प्राधिकार का आवश्यकता अनुभव नहा की जिम्मे फसते विवादग्रस्त मामला में अन्तिम मान जा सक। धर्मोपदेश और विधि निषेध लिपित रूप में उपलब्ध थे और जिस व्यक्ति का भा अरबी की पर्याप्त जानकारी थी, वह उनके निवचन के योग्य मान लिया जाता था। वे ग्रन्थ इतने व्यापक थे कि उनसे समाज और व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षा का समुचित माग-दर्शन सम्भव हो जाता था।

हिन्दुआ में स्थिति इससे बहुत भिन्न न थी। केवल मुसलमाना ने ही धार्मिक विधाना के अध्ययन से किसी व्यक्ति को नहीं रोक रखा था, हिन्दुओं में भी केवल ब्राह्मणा ही धर्मशास्त्रा के निवचन का अधिकार था। फिर भी, व्यवहारतः निवचन का यह कार्य मुसलमाना में उस विद्यापिण्य वगैरे तक ही मरिमित था, जिसमें अधिकतर संयत् थे। ब्राह्मणा में थोड़े ही सागा ने अपन का अध्ययन-अध्यापन में लगाया था, उनमें से अधिकतर लोग अथ व्यवसाय—कृषि यापार और सेवा—में लगे थे।

उलमा अथवा धर्म विधिवत्ता दो प्रकार से अपना प्रभाव डालते थे। काश्तिया और मुफ्तिया के रूप में उनका सम्बन्ध इसाफ करने से था और कानूनी मामला में उनके फसले उदाहरण बन जाते थे। काजी जितना अधिक विद्वान् होता था, उसका आदर उतना ही अधिक किया जाता था। इतना ही नहीं वे ता जनसाधारण और शहजादा के पय प्रदर्शक और परामशदाता भी थे। धर्मोपदेश अथवा शिमा प्रदान करने के उनके दो तरीके थे या तो मस्जिदों में धर्मासना परसे दिए गए धर्मोपदेशों-द्वारा अथवा शासका के सभा भवना में विशेष श्रोताओं के सम्मुख दिए गए प्रवचनों-द्वारा। स्त्रूलो म घातका का पढाने तथा पुस्तकें लिखने का काम भी उहीं के सुपुद था और ये दोनों ही काम प्रचार के शक्तिशाली माध्यम हैं। मध्य-काल में ज्ञान और शिक्षा धर्मशास्त्र से श्रोतप्रोत थे और धार्मिक नियम सिद्धान्तों के प्रवक्तव्य के रूप में अध्यापका और लेखका को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

उलमाओं से सम्बन्धिता रहस्यवादी योगी—सूफी और दरवेग—थे। उलमाओं में से अनेक व्यक्ति पवित्र पारलौकिक और त्याग-तपस्यापूण जावा बिताते थे, परन्तु अथ साग व्यवहार मुसल अहकारी विद्वान् तथा तब वितरत विधिपेक्षा के सिद्ध मुख्यतः अपनी ही प्रगति में रुचि था। बलबन ने उन्हें 'उलमाए-जाहिरी' (आराम-उम्बरवाले विद्वान्) कह कर उन्हें आध्यात्मिक पालन-सम्पन्न उन व्यक्तिपय से भिन्न किया था जो उनमाए-जाहिरी की सना से विभक्ति थे। जिन धर्मशास्त्र व्यक्तिया ने विरत का परित्याग कर दिया था और ध्यान धारणा तथा आध्यात्मिक अनुनागत का माग अपना किया था उनमें ऐसे बहुत-से लोग थे, जो प्रमाण्ड पण्डित य परसूनिया के समूह में अधिकतर पण ही धर्मों और स्वच्छाचारिया न प्रथम प्राप्त कर लिया था जिन्होंने अपने का वपनकारण में छिपा रखा था। विशेष कर अठारहवीं शताब्दी म ता इग देश में सच्चे आत्मा बहुत हा रम थे, जबकि डोगी पाण्डित्या की सख्या बहुत अधिक थी। सच तो यह है कि वास्तविक रहस्यवाद का हास नितर गाम्भीर्य के क्षेत्र में होनेवाले उस सामान्य शक्तिपय का एक प्रधान कारण था जो अठारहवीं शताब्दी में व्याप्त था।

इन सूफियों का अनेक गुरु-परम्पराएँ ( निरस्तिते) — विश्विया न  
नकात्रिया कादिरिया, आदि—थी। प्रत्येक उच्च वर्गीय मुसलमान उन्  
एक परम्परा में शामिल होना, अपनी बस्ती में स्थित उच्च परम्परा के सवाच्च  
व्यक्ति के प्रति निष्ठा का प्रथम चरण जो धार्मिक बाना तथा अपने जीवन के  
सामान्य वायव्यताप के सम्बन्ध में भी उमका परामर्श प्राप्त करना वन्य समता  
था।

हिन्दू-समाज में भा ऐसी ही परिस्थितियाँ थीं। ब्राह्मण पण्डित समाजिया की  
गुरु-परम्पराओं के प्रभु और धार्मिक सम्प्रदाय हिन्दू-समाज में वही काम करते  
थे, जो मुस्लिम समाज में उलमा और धार्मिक अध्यक्षों-द्वारा किया जाता था।

दुभाग्यवत् ये दाना वगैरे एक-दूसरे से लगे-पगे पूरा तरह अलग थे। धर्म  
भाषा रीति रिवाज और सामान्य परिस्थितियाँ न उनके पारस्परिक सम्पर्क में  
बाधा डाला। उनके दा-पारे सत्ता थे। वे ऐसी मानसिक प्राधारा-द्वारा विभक्त  
थे जिन्हें नापा नया जा सकता था। कभी-कभी किसी अनुभूत जावेदान विज्ञान  
अथवा अथवा बिना दास शिवाह न उनके दीवारा का सोच जानन का प्रयास भले  
ही किया हा, कभी-कभी किसी मुस्लिम दरवेश और हिन्दू यागीने एक साथ बैठ  
कर विचारों का आदान प्रदान भले हा कर लिया हो, पर सामान्यतः इन दाना  
प्रणालियों के वास्तविक वर्गों के बीच की खाई गहरी ही बनी रही।

उदाहरण के लिए सस्कृत भाषा सीखन और सम्स्कृत-साहित्य, विज्ञान और  
दान का अध्ययन करनेवाले मुसलमानों को सज्जा बहुत ही कम थी। यद्यपि  
फिरोज तुगलक के समय से ही लगातार और मुसलमानों-द्वारा विशेष प्रयत्न  
रहितसे, फारसी अनुवादों के माध्यम से मुसलमानों का सम्स्कृत-प्रयोग से परिचित  
कराने के प्रयास किए जाते रहे, तथापि मुसलमान लेखकों की पुस्तकों से  
सस्कृत-भाषा का परिचय प्रायः प्रवृत्त नहीं होता। अनेक हिन्दूओं ने फारसी की  
पानपाठ और कुछ लेखकों ने अरबी की जनवारा अवश्य प्राप्त की, परन्तु समय  
क्रमसे पण्डित अपने-आपके ज्ञानमें अन्तर्गत बनाए रहे और सम्स्कृत में लिखी गई  
पुस्तकों में फारसी जैसे अरब-भाषियों का लाभो परी तरह उपेक्षा  
का गई।

दोनों जातियों का उच्चारण करना के बीच एक ऐसा खाद थी जिसे पाठना  
कठिन प्रभाव होता था। यह बड़े अक्षरों का वास्तविक विचार धर्म के कारण  
दोनों धर्मों के विद्वानों दक्ष प्रण की अलग-अलग रीतियों के प्रति अलग-अलग विज्ञाने रहे।  
इस ही दुष्परिणाम का कारण प्रकट हुए।

उत्तम और पण्डितों के प्रभाव दास्य के कारण समाज में मुक्त रूपसे ज्ञान  
प्रदान होता था। हिन्दू समाज में भक्ति-प्रणालियों के प्रवर्तन के कारण समाज में विद्वानों  
तथा सूफियों के एक वर्ग ने निष्पन्न हो, विद्वानों और बन्धु-व्यय के  
से उत्तर उत्तर कर जाणा-प्रति उत्तर के लिए एक सामान्य ज्ञान-प्रणाली का प्रयास  
किया। उन्होंने उन मर्यादा-हृदय व्यक्तियों के रूप और वास्तविक भावना से उत्तर  
उठाने की इच्छा व्यक्त की जो समाचार के क्षेत्र में अन्तर्गत एकाग्रता के बन बैठ  
थे। उन लोगों ने अनुभूति में प्रेम भावना और समाजिकता के स्थापना का  
प्रयास किया।

इसमें आरक्षक या बार्ड वान नहीं है कि सहिष्णुता के इन तथ्य-समर्पित मन्देश बाह्य। म मे अधिबलतर ब्राह्मणनर जातिया के थे। बवार जुलाहा से, नाक बेदाखती, रदास चमार घनाजाट सना आई गुदरदास बनिया मनुकदास छत्री वीरभात बारालात थीर प्रेमनाथ छत्री, धरणीदास धायस्थ जगजीवनरास ठाकुर और बुला गान्ध कुनवा। मगराष्ट्र म नाम्बव दर्जी गानधवर जातिबहिष्कृत ब्राह्मण चात्रा मेना गाह्य और तुकाराम शद्र थे। दक्षिण में वेमा विसान थ और रिखवल्लुवर परिया। बगान में यद्यपि चैतय वा नाम एव ब्राह्मण-परिवार में हुआ था तथापि 'नर शिष्या म शिष्य मयाज के निम्नतर वग के व्यक्ति और मुगलमान अधि' थे।

मुसलमानों म भा एग व्यक्ति और व्यक्ति-समूह के जाति-दूश्चन और घम का जानकारी प्राप्त करता चाहत थे। मानव-मुलभ दया भाव से उनका हृदय आतप्रान था और य जषा पवित्र आचरण प्रेम भाव निस्वाय सेवा थीर पार लौकिकता के आधार पर तागा का अपना आर आहृष्ट करना चाहते थे। जम थीर सम्पत्तिगत जनरा पर आधारित पुराग्रहा से मुका होन थीर निघन तथा दलित लोगा के प्रति मगनुभूतिपूर्ण ना के वारण समा वर्गों और स्तरा के लाग उाका वार शिष्य जाने थे। एस तागा में चिन्तिया-मुक्त परम्परा के सदम्प मरस प्रघात थ। भारत में इस मर-परम्परा के प्रकृतन मुइनुद्दीन चिश्ती पष्पीराज चौहान के शासन-काल में यहा जाए थीर अन्तरे में बम गए। जब उत्तर भारत तुकी के अधिकार में आ गया और शिला उाका राजघाना हो गई, तब चिन्तिया का प्रघात केन्द्र शिला ने आया गया। इन मर-परम्परा में कुछ महत्त हा उल्लेखनीय व्यक्ति—मुतुमुनीन रश्मिदारवाना त्रिगामान औरिया बामा फरीद शररगज और शर मन्नीम चिरगी—सामने आए।

वे ताग हिन्दू यागिया के साथ **धार्मिक परिचय** करते थे और उनके दक्षिण के प्रति प्रशंसा भाव व्यक्त करते थे। इना सम्पत्त के फलस्वरूप हिन्दू-योग की घनेर विवेचनाए दस्तानी धिन का अग बन गई। इस सम्प्रदाय का हिन्दुआ के प्रति क्या दक्षिण का यह निडाामुहीन के उत तयन सस्पष्ट हा जाता है जो उसने कुछ तोषा का मूर्ति-भजन करत हुए देख कर कहा था। 'उमने कहा था प्रत्यन राष्ट्र का अपना हा रास्ता है अपना ही घम और अपना हा मक्का।' अपना शिष्य गतिरहान चिराम-ए दिला का उत्सन परामश किया था लोगा के बीच रहने हुए उनके जयाचाग तथा प्रहारा का सहा करत हुए उनके प्रति नमना उदारता और 'यालुना त व्यवहार करो।' प्राधमर हवीर ने इस थीर सवेत किया है कि मर-मुसलमानों का घम-परिवर्तन करत चिन्ता त्रिगमिते के बाम का बार्ड अग त था।<sup>1</sup>

भारत में अठारवी शताब्दी के घमवेत्ताओं में सबसे अधिन विद्वान माने जायाने व्यक्ति भाह्य वला उल्ला त म विचार व्यक्त किया कि 'सभी का घम एत है अनार ता वनक विधि निषेधा मन्त्र में है।

1 'इस्लामिक इल्लुस्ट्रेशंस', अप्रैल 1946 पृष्ठ 940;

2. गाह्य वला उास, 'हृदय जलन'।

दृश्यमान उल्लेख पृष्ठ 182

द्वारा वह कार्यवाही गुरु-परम्परा का था। इस परम्परा के प्रवर्तक अनेक  
 वारिष्ठ विद्वानों थे जो बारहवीं शताब्दी में बंगाल में रहते थे। उनकी मान्यताएँ,  
 विधिवादी, प्रथाएँ, आदि अथ गुरु-परम्पराओं में मिलती थीं। उनके कुछ  
 अनुयायी उन्हें मुदा मानते थे। भारत में इस परम्परा का आरम्भ सोलहवीं  
 शताब्दी में हुआ और इसके सबसे विख्यात गुरु मित्रा मीर (भारतजी) थे, जिन्होंने  
 दारा गिकीह का अपना शिष्य बनाया।

अत्यन्त मन्त्रिणा के अतिरिक्त ऐम बन्दन स्वयन्त्र शक्ति भी थे  
 जिनका व्यवहार जय धर्मों के प्रति महिष्णुतापूर्ण ही नहीं कि मन्त्रापूषण तक था। एम  
 लोगो में कुछ नृत्तन श्रमि अनुद फुडन, फीती मुर्तीन्ना स्वाहामश मन्त्रन जान  
 जाना और अथ अनक व्यक्ति थे।

मुस्लिम शासन-काल में प्रेम और श्रद्धा पर आधारित धर्म की जा धारा  
 वेगवती हुई मर काग अनक मुन्त्रामुवन सम्प्रदाया का स्थापना हुई। ऐना  
 जान पहना है साया ज्ञान का उद्वारद शान फु पण हा। मानव-आत्माशा  
 का प्रवाह मित्रा जा उनकी चेतना शक्ति में वृद्धि हुई। आरम्भ में इस प्रवृत्ति का  
 वह धर्म में दिज्ञा शिया जागृन्ववा एमा एकात्मता गगना पर जागे चन कर  
 यह धारा गणनातिर बगारा के वाच भा उक्तान तथा। इत जना का  
धार्मिक और शक्ति तत्र जगृत्वा आत्मा में श्रद्धा पर गया और इतना प्रयोग  
अधिकतर सामाजिक गौरव का प्राप्ति में ही किया जान था, यद्यपि आध्यात्मिक  
जावन के प्रति मीरिक्त प्रामा भाव व्यक्त किए जाते रहे। उन शिया का यह एक  
राजक वस्तुस्थिति है कि दिव्य और पार्थिव प्रेम के बीच का अन्तर मित्र गया था  
स्वायत्त-पम्पामुत्र अन्धकार और ऐतिहासिक भाव विनाश सत्कर बन गए थे और  
उन्वतम दर्शन का बंधन निरूप्यम अर्थात् श्रद्धा का साथ रहे कर भा शिया  
का माना था।

दो सौ वर्ष से भी अधिक समय तक एक विचित्र जाग और उन्माद लाला  
 को स्थिति करता रहा और यह स्थिति मंगल-नाम्नाज का आरव्यजनक उपलब्धिया  
 का एक महत्वपूर्ण माध्यम रही। धार-धारे इसका वर मर पट गया और गमकव  
 जावन के नए विचार जगान अथवा एक नए ढंग की समाज-व्यवस्था का जन्म देने  
 में यह असमर्थ हो गया।

यूरोप में सुधारवादी जादानन ने राज्य का सर्वोच्चता और गणनात्मक  
 समाज के विचारों का तम दिया भारत में भक्ति-आन्दोलन गन्धर्विक दर्शि  
 में निरूपण बना रहा। उनमें व्यक्ति का हृदय जावन के लिए प्रेरणा अवलम्बित  
 पर एमग रूप में समाज तन-कानन बना रहा। मंगल-नाम्नाज का साध्यकारी शक्ति  
 मंगलना हावे ए समाज विघ्नक बन गया। परिणामतः मंगल-नाम्नाज के अन्त  
 काल उद्विग्न और आन्तरिक संघर्ष में जगत् शिष्ट का पश्चिम का युवोती का  
 सामना करना पड़ा।

मध्य काल में भारत के शासकों में सामाजिक मान्यता का शक्ति के विरुद्ध प्रगति  
 नहीं शिष्ट था। समस्त जावन के शिया भा मन्त्रानुव गणनात्मक पन्तू में बर  
 उन्मा गमकव रहा पाद। धर्म में छुटकारे मन्त्रानुव और महतिता के रूप में  
 विभाजन जा रहा। यथा तत्र कि प्रार्थना शिष्ट पर भी शिया धर्म-विरुद्ध के



अनुयायियों में एकता की वास्तविक और प्रभावपूर्ण चेतना न ता हिंदुओं ने जगाई और न मुसलमानों ने। सामाजिक स्तर पर, भाइचारा का सामाजिक व्यवहार और बर्फीला। मुगल और पठान, तराती और इरानी एक साथ मिलने के सचेतन प्रयास के बिना जंग चल रहा रहे। हिंदुओं की रक्षा इससे अच्छा न था वस्तुतः वह तो और भी बुरा था। दाना के मामले में गांव अथ-यवस्था का दृष्टि में एक आत्मनिर्भर इलाके की भांति था और गेप समाज के साथ उसका सम्बंध बहुत ही बच्चे घागा में जुड़ा था।

गाववालों के राजनैतिक स्वायत्तता ही सीमित थे। गाववालों राज्य को एक ऐसा दूरस्थ, वस्तुतः पराई और निस्संवेदक दूर वास्तविकता के रूप में ग्रहण करते थे जिसमें बचा नहीं जा सकता था। उन्हें उसे सहन ता करना होता था परन्तु वे उससे साथ सादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते थे। उनकी शक्ति एक दोहरा तलवार के समान थी जो बुरा भी खपती थी और मिटा भी सकती थी। राज्य की कमजोरी उनके लिए सुनवसर-तुल्य थी। राज्य एक ऐसी काल्पनिक वस्तु के समान था, जिस तक उनकी पहुंच सम्भव नहीं थी। यदि साम्राज्य यायप्रिय, उदार और सर्वदलशील होता था, तो शासन के व्यवहार के प्रति उनके हृदय में ईर्ष्या का भाव उदित हो जाता था, अथवा वे यह समझ कर उसे सहन करते रहते थे कि वह परमात्मा द्वारा दिया गया उनके पापों का दण्ड है।

राजनैतिक दृष्टि से भारतीय साम्राज्य-युगाधिक स्वतंत्र इकाइयों के पुत्र ही थे। जनता के साथ साम्राज्य के प्रकट सम्बंध सूक्ष्म थे, क्योंकि उससे काय तथा त्रिधा-बलाप बहुत ही सीमित थे। जब तक कोई जारदार शासक वागदोर सम्भाले रहा, तब तक वह जनता को एक सूत्र में बांधने और ऐसी सुव्यवस्थित परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में सफल होता रहा जिसे लाभ उठा कर लोग न शासन ही एक समुज्ज्वल खम्बता का ढांचा निर्मित कर लिया (राजकीय मामलों में पक्ष प्रदर्शन कर सकते वाले भ्रष्टाचार व्यवहार के अभाव में वह ढांचा उतना ही तेजी के साथ घीन घीन भी हो गया।

### 5 शासक-वर्गों की असफलता

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का पतन और विनाश हुआ। उनके उत्तराधिकारी के रूप में बहुत से प्रतियोगी सामने आए। पहला दंग में प्रतापक मसतमान सूबेदार थे। इनमें अधिक महत्वपूर्ण थे—निजाम, जिसका दायरों के छ सूबों पर शासन था, बंगाल का नवाब, जिसका शासन प्रदेशों में विहार और उड़ीसा के प्रांत शामिल थे, और अवध का नवाब, जिनका दायरों के उत्तर के तराई प्रदेश तक था।

इसके उपरान्त हिंदू सरदारों—राजपूत, स्थान  
था। दंग में पर सियाँ से बाद है  
विशेष दिलास समस्त ॥  
पास पठोस के व सरदार  
गठारवा शताब्दी में ॥  
सम्भारण आतापी थे। ॥

जावास्त्व में घनिष्ठ होकर हों, वह यह थी कि इन सब पर एक ऐसा विचार जानि का उदय हुआ जिसे मानवभूमि भाग्य के द्वारा माल दूरस्थ और विचार समुद्रों के कारण पदक था परन्तु जो इन दोहों में दूर प्रतियोगियों के साथ प्रविष्ट हुई, इसमें विजयी हुई और मुला के साम्राज्य का उत्तराधिकारिणी बना।

मुगल साम्राज्य ज्ञाना अक्षय्यता के साथ अपने में अत्यन्त दयालु, उत्तराधिकार के मामले में भारतीय नरदार पराजित क्या हुए भारत के पडाता भूवास्तविकता न अथवा पूर्व-मुगल का भाति सत्ता के अन्त अन्तर्गत का अन्तर्गत क्या महा किया इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है, क्योंकि बचन तर्कों प्रिटेन की विषय का मूल कारण नरद पाना सम्भव है।

एक एक स्वतन्त्र राष्ट्र है कि मानका का वास्तविक-स्योदय का साम्राज्य के उदय-अस्त के साथ पराम सम्बन्ध होता है। जब तक सामक-नत्व अथवा उदृष्टता बनाए रखने में राज्य की सरासरी स्वल्प और वास्तु बर्नीयता है परन्तु उन उदृष्टता के प्रभाव में राज्य में भी शांति, एका और-अवमान आ जाता है। उदृष्टता ही राज्य-भंगना है। उत्तम इच्छा अथ है पुनीतिया का सामना करने और उन पर विजय पाने को समर्थ। इसका अर्थ है, अपने दल-बान की शक्तियों के साथ आत्मन और उनके ऐसे पालुपूज्य उपायों की शक्ति, जिसे अपना नीति की सफलता में उने गहायन बजाया जा सके। विना, मानव का स्वल्प चाहे जो हो—एक स्वतन्त्र हा या स्वल्पतन्त्र हा, अथवा जनतन्त्र हो—प्रचलित मानव का आधारभूत तथ्य महा है कि वह ऐसा राजनीतिक शक्तिया के मूल सत्तलन पर आधारित होता है जिनका मुक्त-भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर जाता है। जनतन्त्रों में सरकार का आधार व्यापक हो जाता है और इसीलिए वे जम्हाए भी बहुत बड़ जाता है जिनके भारत उता सत्तलन बिना नहा पाता। जनतन्त्रिय राज्य बहुत ही जटिल तन्त्र होता है जितने मयात्रर तत्र उक्त। सम्पूर्ण रचना में गुपे होते हैं। वे बासा और दरावा, का विस्तृत भाग में विस्तृत दल ह और इन प्रकार साथ की स्थिरता बनाए रखने में महायत्न हान ह। जनतन्त्र न अथवा राजनीतिक उत्तम फेरा पर विजय पाने का अन्तिम उपाय मात्र विचारता है और इसीलिए ऐसी मानव-व्यवस्था में सरकार बदलने पर प्रायः जितना संभव हो सके अथवा अन्त-अन्तता का भय नहा रहता।

मध्य भारत में जिन प्रकार के राजतन्त्रों साथ थे उनमें इस प्रकार स्थिरतामूलक और आपात-नहन-पाल उपायों का अभाव था। वे अपने प्रजाजन अत्यन्त मूल्य के समर्थन पर आधारित हान थे और इसीलिए उनका शासन अस्थिर रहस्यित जाता था। यदि इनकी मयात्रर या कि मानव की मुला विनिमित हा सन्ती था। ऐसी जन था, जो आमान में पूरा नहा हा सन्ती थी। यद्यपि गुण का अभाव र निशचित करने के लिए ब्रह्मनुक्त को आधार बनाने का मध्य-भारत का प्रथम उदय-अस्त तन्त्र ह। पुनः था, परन्तु अभाव प्रथिमा का उदय निवासन को और अन्तिम उपाय मयात्र था।

यदि मानव शक्ति-सत्तलन तन्त्र हता है इतना बड़मूत्र हा या का शक्ति पर बड़े शक्ति के निमित्त अन्त-अन्तता का भय निवासन के निमित्त-

बयाओ का सहारा ल लिया जाता था। मुगल बादशाहों का यह गव था कि वे दो विश्व विजेताओं—शंगैज और तैमूर—के वंशज थे। शिवाजी को एक ऐसी वशावली प्राप्त थी, जिम्मे उसे मूल-वंश व सिसोदियो के साथ जोड़ दिया था। जाट यदुवंश के श्रीकृष्ण के वंशज होने का दावा करते थे। बहमनी सुल्तानों ने अपना सम्बन्ध महान्तम ईरानी वंश—अर्थात् बहमन से इसफदियार तक—से जोड़ लिया था। यह सिद्धांत बार-बार मध्य सिद्ध हुआ था, फिर भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।

उत्तराधिकारियों के चयन में यह धारणा बराबर अपना प्रभाव डालती रही, यद्यपि शक्ति व हस्तांतरण का निमग्न तक अस्वीकार न किया जा सता। शहजादा का प्रतिद्वंद्विता इसा त्वरागति की अभिव्यक्ति थी। परन्तु इसी प्रतिद्वंद्विता ने उत्तराधिकार विषयक उन युद्धों का जन्म दिया, जिन्होंने समय समय पर राज्य का नीबू हिला दा और अततागत्वा उस विनष्ट ही कर दिया।

विभागा शासन के भाग्य निर्धारण में मुख्य भूमिका उमम सम्पूर्ण शहजाद का उदरग्रस्ता अथवा दूमरे शरणा में उसका शासन श्रमता की था। महत्त्व की दृष्टि से इससे अगला स्थान उस बात को प्राप्त था कि वह शहजादा ममाज व उन तत्वों से किस प्रकार का समयन ग्रहण कर पाता था जा राजनीति में भाग लेते थे। ऊपर बताया जा चुका है कि मुगल शासन उच्च जाताय शासन था अर्थात् उन उच्चतर जानिया का शासन था जिनमें यादा भी थे और विद्वान् भी। पर व दाना मित कर भी राज्य रूपी प्रासाद का ग्रहण ही हल्का आधार प्रदान कर पाते थे। उन शिवा ऐसे लोगों का सख्या बढ़ा था यह अनुमान लगाना कठिन है। तब उनका सख्या कुल आबादा के लगभग दस प्रतिशत के बराबर है परन्तु यह सख्या भ्रामक है क्योंकि इसमें ऐसे बहुत-से लोग भी शामिल कर लिए गए हैं जिन्होंने शासन से कोई सरोकार नहीं। अठारहवां शताब्दी के ऐसे भूस्वामियों की सख्या के जाकड़े उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे राज सेवा का जाणा की जाती था, परन्तु शर्मा द्वारा की गई गणना <sup>1</sup> के अनुसार, सन 1690 में औरंगजेब के शासन काल में 14,556 मनसबदार थे। प्रशासनिक सेवाओं का उच्चतर सवग उहा के द्वारा निर्मित था। उनके अतिरिक्त ऐसे लोग भी थे, जिनका गणना मनसबदारों की सूची में तो नहा का गर् थी परन्तु जा अधीनस्थ कापालया में अथवा असनिक पदा (बाजी आदि) पर रह कर सरकारी सेवा करते थे। वे सभी सरकार में सरक्षित भूस्वामा थे। उनके अतिरिक्त ऐसे बहुत से पुणनी हिंदू जमीदार थे जिनका सरदार के साथ घनिष्ट सम्बन्ध नहीं था। ये शभा तम्य इम निष्पक्ष की आर इगित वन्त हैं कि मुगल सम्राट बहुत अधिक सक्रिय गहायता का मराता गहा रख सकते थे और उनके आश्रिता का सख्या भी बहुत अधिक नहीं था। महा तब कि रुमक जारा के अधीन रहनेवाले आश्रिता का मर्या अधिक आन पढ़नी है क्योंकि स्थानिक के अनुभार, उनका पाछे भू-सम्पत्ति द्वारा कुलानतन्त्र के लगभग एक लाख ताम हजार व्यक्ति थे। बर्नियर के अनुसार शिवा में जा गामाय की तुलना में श्रेष्ठतर व्यक्तियों का अनुपात दस में दस तक तान ता था, जबकि उसा तमय पैरि में व अनुपात सात में था ठ तब था।

1 एस० जार० शर्मा, 'द रेसिजम पालिमा आफ द मुगल एम्परा', पृष्ठ 131-32

2 ए०० बर्नियर, पूर्वोद्धृत 'ट्रिबेल्स' पृष्ठ 282

## भारत की राजनीतिक प्रणालियाँ

बाई राज्य बितने समय तर बिचमान रहेगा, इसका नियम उसकी सरचना के अनिश्चित उमकी कार्यविधि पर भी निर्भर करता है। ठीक नाकिया अपनाने स  
राज्य मजबूत हुआ और गलत नाम अपनाने के बन्धनार।

मुगलों में बड़े पीढ़ियाँ तक असांभाल रूप में योग्य व्यक्ति शासन भार सम्भाल रहे। मुगल-साम्राज्य के संस्थापक बाद में सैनिक, राजनयिक और साहित्यकार व गुणों का अद्भुत संगम था। हुमायूँ अपने पिता से भिन्न होने पर भी उदारमना, योग्य और बुद्धिमान था। जबबर में तो बहुत ही उच्चकोटि की प्रतिभा साधारण ही थी—वह एक तेजस्वी व्यवस्थापक, दूरदर्शी राजनयिक, हथ सेनानायक और सत्य-वा सच्चा तथा निर्भीक सघानी था। मुघल-सैन्य और भोग विलास का प्रेम ही हाने पर भी जहागीर में इतनी धमती था कि वह अपने महान् विना-द्वारा संस्थापित तन्त्र का तत्त्विक बनाए रख सकता। शाहजहाँ चञ्चलचित्त और सतत आचार व पय पर पर उसमें गुण परखने, सुयोग्य व्यक्तियों का चयन करन और सतत आचार व पय पर चलने की क्षमता थी। व्यक्तिगत चरित्र की दृष्टि से वह सदाचार का चकार था। उस पर वह एकमात्र सम्राट था, जो सुरा सुदरी और सगीत के वधना से मुक्त था। उस समयपूण जावन जिनाया और अपने धार्मिक कृतव्या के परिपालन में वह नियमित तथा एवनिष्ठ बना रहा। जहाँ तक मानन-नाय का सम्बन्ध है वह असांभाल उद्यम व साथ अपने काम पूरे करता था। उसे मजग तथा सुधममेदिनी प्राप्त थी और शासन विरमण मानला में बड़े बराबर बड़ा निाराणी रखता था। अपने निरवय में वह अटिग था और काघाए के वन उनके सन्त्य को पुष्टकर ही बन पाती थी।

परतु और गजैव की नीलिया गलत रही और वह उस विनाल प्रासाद का विध्वन सिद्ध हुआ, जिसे बाद में जबबर और शाहजहाँ ने बनाया था। उसका बहुत जबदस्त भूलें दो थी—(1) उसने राज्य के समोजक उतवा पर पयाण ध्यान नहीं दिया। सरकारी बिल-व्यवस्था के प्रति उनका उपेक्षा भाव का बुभभाव राजस्व और व्यय दोष पर पडा। सनिकों का येतन चुनाने के लिए उसे ऋण लेना पडा। सरकारी खजाने में पनी आ जान के प्रशासन की स्थायी क्षति हुई। (2) उतने अपने उच्च वर्गीय हिन्दू प्रजाजनो को नाराज कर लिया, जो साम्राज्य के अवलम्ब थे।

राजस्व के स्रोता में भूमि का स्थान प्रधान था। भूमि दो क्षेत्रों में बंटी थी। भूमि के कुछ भाग पर तो सरकार का प्रत्यक्ष प्रशासन था। ऐसी भूमि को 'घालसा (सरक्षित)' कहा जाता था। 'घालसा' भूमि का राजस्व शाही अधिकारी इकट्ठा करते थे और यह खम मुध्या बादशाह और उसके दरबार से सम्बन्धित कामों पर ही खय की जाता थी। दूसरे भाग अथवा 'जागीर' भूमि से प्राप्त खम में से मनसबदारा के येतन आर मत्ते पूपाए जाते थे। खजाने से प्रयत्न नगर भुगाल किए जाने व बदले में अधिकांशिया के लिए 'जागीर' भूमि के राज्य का अग निर्धारित कर दिया जाता था।

अपना सासा के उर्जातबे वय में जबबर न नारी भूमि को 'धानता' वा दिया था। ऐसा करन में जाना प्रयत्न जूहेन यह था कि मदी जमीनों के प्रशासन का बना स्थय साधन द्वारा ही और मनसबदारा के येतन-महिता सभी सरकारी खय राजस्व विना-द्वारा माहाउ गमेविउ निधिया में से लिए जाए। यह एक

मौलिक सज़ थी। यदि इसका पालन बराबर किया जाता, तो कदाचित्त भारत के इतिहास का सम्पूर्ण रूप ही परिवर्तित हो गया होता। दुभाग्यवश, परम्परा और तात्कालिक सुविधा की भावनाओं की विजय हुई और अकबर का शासन-काल समाप्त होते-होते 'खालसा' भूमि कुल भूमि का एक चौथाई भाग के बराबर रह गई।

अपव्यय की दृष्टि से जहागीर बहुत ही लापरवाह था और उसने 'खालसा' भूमि को और भी कम करके कुल भूमि के बीसवें भाग के बराबर कर दिया। शाहजहाँ ने इन ज़मीनों का फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न किया और धीरे-धीरे 'खालसा' ज़मीन को बढ़ा कर कुल ज़मान के सातवें भाग के बराबर कर दिया। औरंगज़ेब एक निरृष्ट दाय का उत्तराधिकारी बना, परन्तु खालसा भूमि को बढ़ा कर कुल भूमि के पाचवें भाग के बराबर करने में वह सफल हुआ। उसका रक्षक यह था कि पूरे साम्राज्य से प्राप्त होनेवाले कुल 80 करोड़ रुपये से अधिक के राजस्व में से 4 करोड़ रुपये 'खालसा' भूमि से प्राप्त हों। 3 33 करोड़ रुपये उसने इस प्रकार इकट्ठा भी कर लिए।

यह कोई बुरी बात नहीं पर उससे द्वारा उठाए गए अत्यन्त कम पूंजी अविवेक प्रकृत थे। नू राजस्व का निर्धारित अंश उमन कुल उपज के एक तिहाई भाग से बढ़ा कर आधे के बराबर कर दिया और इस प्रकार किसान पर पड़नेवाला भार बहुत बढ़ गया। दूसरे, उसने ज़ब्रिया लगा दिया जो गरीबों के लिए सचमुच बहुत ही दुःखदायी था। इस कर का परिणाम यह हुआ कि किसान के पास बचल जीने भर का साधन शेष रह गया। ऐसा कोई बचत सम्भव नहीं रही, जिसे वह अपनी खेती के विकास या विस्तार में लगा सकता था।

जहाँ तक 'जागीर' ज़मीनों का सम्बन्ध था, राजस्व इतना घटा दिया गया कि जागीरों के प्रति कोई आकर्षण ही शेष नहीं रहा और जागीरदारों को अपनी जागीरें लगाने पर किसानों को सौंप देने के लिए विवश होना पड़ा। राजस्व-संग्रह के इस दोषपूर्ण तरीके का दुष्परिणाम गावा पर भी पड़ा और सरकार पर भी। काश्तकारों का दमन हुआ और सरकारी राजस्व का दुरुपयोग।

हिन्दू राजस्व-संग्रहकों के स्थान पर मुस्लिम अधिकारी रखने का प्रयास करके औरंगज़ेब ने एक और भयकर भूल की क्योंकि अपने धर्म के प्रति मुसलमानों में जो उत्साह था, उससे राजस्व विषयक मामला में उनकी जानमारी और अनुभव की कमी की क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती थी। उक्त नीति को बदल देने से न तो ईमानदारी विषयक सरकार की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और न ही हिन्दू अधिवास्ियों की घबराहट दूर हो पाई, जिनमें से केवल आधा को उनके स्थान पर फिर से नियुक्त कर दिया गया।

एक ओर इन उपायों ने सरकार की आय पर प्रभाव डाला और दूसरी ओर दक्कन के शिवाजी तथा महाराष्ट्र के हिन्दुओं की धार्मिक असहिष्णुता से प्रेरित दक्कन की आर विस्तार करने की नीति ने साम्राज्य के साधन को निरर्थक खर्च में डाल दिया। सत्ताईस वर्ष तक बादशाह ने लगातार एक विशाल सेना को उन महम अभियानों में लगाए रखा जिनका अन्त पूंजी विफलता में हुआ। मराठा-युद्ध के अनेक परिणाम सामने आए। साम्राज्य की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। साहमी मराठा अम्बारोही मुगलों के बड़े-बड़े अचल और विकास निम्न शिविरों को देख कर उनकी हमी उदाते थे उनके चारों ओर घबबर लगाते थे, उनकी रसद-व्यवस्था समाप्त कर देते थे और मुगल प्रदेशों में राज-कर लगा देते थे।

### भारत की राजनीति प्रणालिया

दखन से प्राप्त हानवाला साम्राज्य, जो 18 वरा रूपसे प्रति वष था, मनाप्त हो गया जो उक्त राजाप वा गहरी क्षति पहुची। बादशाह के पूवाधिकारिया ने जो माल-घजाना जुटाया था वह गमाप्त हा गया। उक्त देहान व समय घजान में 12 वराह रूपे वा नगण रकन रूप था।

जोरजैव वा पगमातपूण धार्मिक नीति व लिए उनकी निजा की जाती है। यह उचित ही है क्वाकि वह नीति राजनीति व दृष्टि से अविशेषपूण था जोर धार्मिक दृष्टि से अनुचित। इन वहुत क्षति पूचाइ। धार्मिक पट्टरता ने हिन्दू और मुसलमान उक्त वर्गों के बीच वा छाई और चीने वर दो, व पाव भी हरे वर दिए निहूँ ठीक करने वा प्रयास अवजर की नीति न बिया था, और हिन्दुआ को यह अनुभव करा दिया कि वे एक पटिया म्तर के नागरिक हैं। उक्त नातिन उक्त सात्रप्रिय धान्दान में भी बाधा डाली, जिसे ववार और दादू ने दाना धर्मों के बीच मल मिलाप पदा करने के लिए चलाया था। परन्तु यह बहना अनिजमानिपूण है कि इमन वारण मूगन-साम्राज्य के विरुद्ध बगावत वा प्रेरणा दी। उम्ने तो केवन काना बिना विद्रोह करनेवाला के राजनीति उद्देश्या के पण में प्रचार करने के लिए एव मूल्यवान कारण प्रस्तुत कर दिया और अन्तोप की दहनती हुई व्याग में पूनाहृति डाल दी।

बिनी आम हिन्दू बगावत वा ता खवाल ही पैग नहीं होता था, क्वाकि हिन्दू किसी पूव वहुतसख्या दन के रूप में नहीं थे और न ही वे किसी एक निजा व रूप में संगठित-व्यवस्थित थे। एव बात यह भी हूइ कि औरजैव की नीति उम्ने देहात के साथ हा व्यवहारत समाप्त हा गइ, यर्था उम्ने वाद भी उक्त की वृ-स्मतिआ और प्रतिरोध मावनाए बनी रहीं।

उक्त समय होरोवाला बगावत वा विलेपण करने से यह वात स्पष्ट हो जाई। पर, सन 1672 में नारलीन में साम्राज्य के अधिकारिया के माय पगन हो गया। उहीने पुनिम औरतना की जयानता अन्वीकार कर दी। उनका यह विजय अन्त्या वर निया और वहा अपनी सरकार स्थापित कर ली। उनका यह विजय अन्त्या वर निया के तावत में एव राजपूतनेना उक्त विरुद्ध भेजी। हिन्दू और मुस्लिम मुगन; प्रहागारा—दखरदाग नागर मुम्बद घात और रफी था—न यह नहीं माना है कि वे हिन्दु व के प्रतिनिधि थे। हिन्दू इतिहासकार के अनुसार "सनामी बान ही गदे और हुए है। अपने नियमाचारों में वे हिन्दुआ और मुसलमाना के बीच वा भेद नहीं करते और मूररतया दूनर गदे जानकरा वा भगना करते हैं। यदि उनके सामने घाते के लिए कुते वा मान भी रख निया जाता है ता वे उम्ने प्रति बाई विरग्य स्वयं नहीं करते। पाप और दुगचार में उन्हें कोई बुराई नग दियाइ देता। कारी दोआब में जाट उनीगरा गरा लिए गुर विदोरे की बिना भा प्रचार धार्मिक बिरोह नहीं माना जा मतना। बन्दोय गातव और पुर्तना मूमानिया

1 पनुनाय सरकार-द्वारा 'हिन्दू की जाट और जैव', पृष्ठ 3, में पृष्ठ 296-97 पर उद्ध

(जमानरो) के आपसी सम्बन्ध कुछ स्वामी झगड़े की तरह थे। मध्य-काल के इतिहास ऐसी यद्धानियों से भरे पड़े हैं, जहाँ अनिष्टपूर्ण सरदारों ने दबाव के बिना सरकारी देनदारियाँ चुकाने से इन्कार कर दिया। प्रारम्भिक प्रतिरोध, खुली बावत—यदि अबसर अनुकूल है, तो—शाही सेनाओं का आगे बढ़ना और दमन, यह तो भागो एक सामान्य प्रक्रिया बन गई थी। प्रत्येक सरदार चाहे वह कितना ही मामूली क्या न हो, शक्ति की दृष्टि से कम टावर भी ओहदे में सर्वोच्च शासक के समान ही था और अपनी जागीर बढ़ान और यदि सुयाग सुलभ है, तो स्वयं राजा बन बठने के लिए सदा तयार रहता था।

## 6 जाट

दक्कन में औरंगजेब की अनुपस्थिति को महत्वाकांक्षी और उत्तमी जाट जमींदारों ने एक ऐमा सुअवसर समझा, जिसका उपयोग वे अपन लाभ के लिए कर सकते थे। इस दिशा में उनके प्रारम्भिक प्रयास विफल हो चुके थे। इसके उपरान्त राजाराम ने दो राजपूत-वंशों के बीच के झगड़े से लाभ उठा कर अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए उनमें से एक का समर्थन प्राप्त कर लिया। परन्तु वह एक दलीय सघर्ष में मारा गया और उस मुगल सेना ने इस विद्रोह का दमन कर दिया, जिसमें अम्बर के राजा विष्णु सिंह कछवाहा ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

राजाराम के छोटे भाई चणामन ने औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् होनेवाले उत्तराधिकार-युद्ध में अन्ततः जीवनवाले पक्ष का साथ दिया और वह मनसबदार बन बैठा। बहादुर शाह के पुत्रों के बीच होनेवाले दूसरे उत्तराधिकार-युद्ध और उसमें परिणामस्वरूप होनेवाली अव्यवस्था में चणामन ने अपनी स्थिति सुधार ली और वह ऐसे शुल्क तथा कर सख्ती के साथ वसूल करने लगा, जिनका प्रतिरोध स्वाभाविक था। बादशाही दरवार में गुटबंदी होने के कारण उससे विरुद्ध कोई बड़ी कारवाई नहीं जा सकी पर उसके अपने पुत्रों के बीच होनेवाले झगड़ों ने उसने जीवन को इतना कटु बना दिया कि उसने विषपान करके आत्महत्या कर ली।

चणामन का उत्तराधिकारी उमरा भतीजा पप सिंह था, जिसने अपने पूर्वाधिकारियों के उपद्रवपूर्ण वायकलाप का अंत कर दिया और एक व्यवस्थित रियासत की नींव डाली, जिसमें मुगल दरबार का सामान्य आडम्बर विद्यमान था। "उसने अपने दरबार में पर्याप्त ज्ञान शक्ति रखी। उन अनेक मुसलमान अधिकारियों ने, जिन्हें उसने नियुक्त कर लिया था, उसके दरबार में अभीष्ट निष्कार और ज्ञान का संचार कर दिया और वहाँ रह कर वे दरबारी जीवन के आदर्श पुरुषों तथा असंख्य न्यायतियों का शिष्टाचार की शिक्षा देनेवाले अध्यापकों का रूप ग्रहण कर बैठे।" <sup>1</sup> उसने अपने पुत्र को एक उच्च वर्णजात मुस्लिम मुलीन की भाँति शिक्षित किया। उसके पोते बहादुर सिंह ने अरबी में 'शराह जामी' तक अध्ययन किया। <sup>2</sup>

जाट राज का उसने बाद का इतिहास अठारहवीं शताब्दी में मुगल-साम्राज्य के गद्दबादी और मुलीना के बीच होनेवाले झगड़ा तथा पडयत्ता की कष्टकथा से

1 के० आर० फानूनगी, 'हिस्टरी ऑफ द जाट्स', पृष्ठ 63

2 'इमादुल सागात' (नवबखशोर सस्वरण), पृष्ठ 56

निर्गम रहा है। उन्होंने बना हिंदू और मुसलमान समानाधिकारों के प्रति नतीजा विरोध विवेक का ही प्रदान किया और नदरदरिगा का, खोर एम बाग का विचित प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि अपने सामानिक पारिवारिक हित से भागे बड़ कर उन्होंने हिन्दूनाम के हित-मात्र में महापुरुष इन्हें किंचित उद्देश्य का बड़ा पालन किया। कछवाहा और राजीवों के बीच हानवाली गद्द में उन्होंने कछवाहा का साथ दिया और ऐसा करने समय व जाटों व बिड़ड़ गए जानवाने उन अभियानों का मुता बठे विनवा नामक कछवाहा-नरो विष्णु सिंह और तवाई जय सिंह न किया था। उन्होंने रोहिल्ला के बिड़ड़ साम्राज्यवादियों की दिला के बिड़ड़ व बिड़ड़ अवध के नरार की मराठा के विरुद्ध सम्राट का तथा कछवाहा के बिड़ड़ मराठों का सहायता की और उन पहियों में भी वे टहरल और देवन का गेन प्रेरित रहे, जय मया और बुलावन नारा पर तनदारे बमरत रणा था, उनका प्रतिष्ठा बजाये उन्होंने साम्राज्य की शक्ति का रक्षा करने की योजना बनाई, उनका मराठा का शरारत का मया। पानापत्र की सहा के समय उन्होंने पहले ता मराठा का शरारत मित्रता मुनम का पर बाद में वि-वानपात की जाका से उन्हें अत्यन्त गह बखली का सामना करने के लिए धक्का छाड़ दिया।

एक अविश्वसनीय घातकारीता से दूसर मान्यता का नमन रणा हा पाना वि जाट टिडू घम व मरुत के जार और देन की धामिन नीति के प्रति घम भावना न व आघातमय हो उठे थे।

7 मराठे

सांगाय के उत्तराधिकार के दावगारा म मराठों का स्थिति, परिस्थितियों की गणना करने अधिक अनुकूल था। प्रहिन उहूँ एक ऐसा टाम प्रदान कर दिया था, जहां प्रेता पा मगम नथा। पगर और तन-नरु व बाउ मरुठर बा भाति बढ़ा है परिवर्ती पाट का निम्न पत्रमात्रा, परिवर्ती दसन की उच्च सममियों और करण के तन्त्र-ने ने मित कर मराठा की एम मानप्रति का निर्माण किया।

दूर-दूर ता पना दृशा अव-मातर इन्ने तदवर्ती प्रदान का प्रणालन करता है।

एक दन भूमि पर अमूल्य वरणा—मृगाधार बना और अन्तरमह-दीपाय व्यापार—की बपा की है। 'पाट' ने एन मृत्गा-म्यन मलय विण है जहा मनु अमराहियों को पददान से मुक्ति मधुकर है। बड़ा की चट्टाने उन भवानत दुर्गों का रचना में महात्म रहा है, जिन्होंने मनु-द्वारा पीछा किए जान से मराठों की रक्षा की और शाल-भाम के समनन हलाकों पर छा जने में उन्हें मुविधान-हामला पड़ुकार है। उच्च समभूमि के बीच-बाव से पागिया है जिनमें से पव दिना की भार नदिया बहती है। पाटियों का मिट्टा उपराल है, इन प्रदेशों की बासी भूमि बेदन माटे और पटिया बनाओं—बवार और बादरे—की घेना व लिए हा उपयुक्त है।

मरु-नर, पनाहिन और उच्च भूमियों के इन प्रदेशों में मराठे बटोर और मित ब्यदी जे-नन विज्ञान से। उनका परिवर्ती उन ता। में स्वाधीनता, उद्यम और पृष्ट कार्मनिभमता के साथ पालन म गमर्ष रण है। उत्तर तथा दणिग भारत में घन की ब्या अत्यधिक विरमताएँ सिद्धान्त रण है, उन्हें पर प्रे-मुका रखा और गेडिहर समिपत्तियों का एक बड़ा व मराठ-भमात्र का मरु-नर था। जातिगत सं-माव,





भारत की राजनीतिक प्रगति

सम्बन्ध में यदुनाय नखार का कथन है "शिवाजी की विद्वान्नीति और कुरान अनुसार विद्वान्नीति की समता इतनी पूरा है कि कृष्णजी आनन्द नामक दरबार-द्वारा लिखे गए शिवाजी के इतिहास और जायिकारिय रूप से फारसी में लिखे गए बीनापुर के इतिहास में एक निश्चित राजनीतिक उद्देश्य सिद्धि के नाते पड़ोसी प्रदेशों पर किए गए हमलों का बगन करते समय बिल्कुल एक ही शब्द 'मुल्कगोरी' का प्रयोग किया गया है शिवाजी न (उनके बाद पेशवाओं ने भी) सभी पड़ोसी प्रदेशों का प्रयोग किया गया है शिवाजी न (उनके बाद और धनवान हिन्दुओं का भी उनको ही निन्दयता के साथ लूटा-खसोटा, जितनी नृशंसना मुसलमानों के साथ करती गई।"

शिवाजी का उदय एक ऐसे समय में हुआ था, जब धार्मिकता की एक नहर ने पूरे देश पर की पर इस आन्दोलन में कोई उल्लेख दृष्टान्त न थी। तुंगाराम और अन्य मराठा सन्त नैर्गम-हृदय बहुरूपी न थे और उनका 'मक्ति' में भा एतान्तिक नहीं था। बन्तुन के तो हिन्दुत्व और इस्लाम के अनुयायियों को नफ़ट माना चाहते थे। वह हिन्दुत्व की मूर्तिपूजा, अग्रविश्वास, जाति प्रावना, तीर्थ यात्राया, जादि वा भी विरोध करते थे और इस्लाम की अनहिष्णुता वा भी। शिवाजी का सन्तो का अपना गुरु मानते थे इसीलिए उन्होंने 'जियो और जाने दो' की नीति को पालन किया। उन्होंने मुस्लिम सन्तो इस्लामा धर्मग्रन्थ तथा मस्जिदों के प्रति आदर भाव व्यक्त किया। इस बात का बाद विवरण प्राप्त नहीं है कि उन्होंने इस्लामी नीति शिवाजी धरया धर्म-बायों में कोई बाधा छाती या मुसलमानों के साथ हिन्दुओं के मित्र स्वर वा बताव किया।

परन्तु शिवाजी हिन्दु धार्मिक स्वतन्त्रता के अप्रणी पावय थे। उन्होंने राज्यापत्तन पर औरगजेव को चुनौती दी और औरगजेव के साथ इनके युद्ध किया कि इस्लाम की राजनीतिक श्रेष्ठता वा दावा उन्हें स्वीकार न था और न ही उन्हें हिन्दुओं के लिए निरुत्था की वृत्ति मान्य थी, जो औरगजेव बलपूर्वक उन्हें डेना चाहता था। महलगीजता, जाय और समानता की जो भावनाएँ उनके अपने शासन की मूलमन्त्र थीं, उन्हीं वा परिपालन वह मुगल-शास्रण्य में भी होत देपना चाहते थे। अशेषाहत अन्य आय में हा शिवाजी का देहान्त हो गया। उस समय वह केवल 52 वर्ष के थे। उनकी मृत्यु अत्यन्त दुःसाग्यपूर्ण घटना था, क्योंकि उस समय तब वह नवोदित राज्य अपना जट्टे भा पूरी तरह नहीं जमा पाया था। वह राज की हस्तान्तरण वा कोई शान्तिपूर्ण तरीका विकसित नहीं कर पाया था। उस राज्य की 'सुदू राज्य' अथवा 'राष्ट्र निर्धि' की अशेषा स्वयं शासन वा परिवार-भोजन ही अधिक गमना जा पाया। शिवाजी के देहान्त में पहले ही शासकता मरु अर्थात् स्वतंत्र के तसना दिया देने को थे। अन्तिम वर्षों में राज्य के दास्य के सम्बन्ध में उद्योगों शिवा ने उनका राज्य मरु बना दिया था। उनके सबसे बड़े पुत्र शम्भूना ने अन्ते पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और वा मुगलों के जा मिला उनके मजिदमन्त्र में लाना पड़ा, दानों शोषणाली मन्त्रों और 'सर्व' 'प्रयत्न रूप से एक-दुसरे के साथ बहुरा रा थे।'

जब अन्ततोगत्वा सम्भाजी का अपने पिता के प्रति भिन्न भाव हुआ और वह सिंहासन पर बठा तब उसने उन मन्त्रियों तथा अधिकारियों से बदला लिया, जिनके वारे में उस अपने प्रति शत्रु भाव रखने का सन्देह था। अपनी सौनेली मा सोयराबाई, सचिव अमराजा दत्तो तथा अन्य अनेक व्यक्तियों को उसने मौत के घाट उतार दिया। ब्राह्मण मन्त्रियों के विरुद्ध तो उसने बश-वर ही आरम्भ कर दिया। उसकी निष्पत्ता, हिंसा और दुराचार ने उसके कुछ प्रमुख ब्राह्मणों का उसे समाप्त कर देने की योजना बनाने के लिए विवश कर दिया।<sup>1</sup> परिणामतः उसके साथ विश्वासघात किया गया। एक मुगल सेनानायक ने उसे पकड़ लिया और औरंगजेब के आदेशानुसार उसके पिता के देहान्त के नौ वर्ष पश्चात् उसका सिर घड़ से अलग कर दिया गया।

इसके उपरान्त बास बप का वह अवधि आई जिसमें मराठा तथा औरंगजेब की सेनाओं के बीच शीघ्रपूण सघष हुआ। मराठा सेनानायकों की वीरता, निर्भीकता और बुद्धिमत्तापूर्ण चालवाजिया ने मुगल सम्राट को शिथिल कर दिया। वह काय विरत होकर औरंगजेब चला गया जहाँ उसने सबधा निराश व्यक्ति के रूप में प्राण-त्याग किया। युद्ध में मराठा की विजय तो हो गई, पर उन्हें उसका मूल्य बहुत अधिक चुकाना पड़ा।

इस सघष के परिणामस्वरूप केंद्र विमुख शक्तियों को बल मिला। शिवाजी ने एकांतिक राज्य की स्थापना-द्वारा मराठा सरदारा तथा जनता पर जा एकाता अरापित की थी उसका अन्त हा गया। जिन मराठा सरदारा को मुगलों के विरुद्ध लुप्त छिप कर युद्ध करने पड़ते थे वे अपने हा विवश तथा इच्छा पर निर्भर रहने के इनने अधिक अम्मासी हो गए कि उन युद्धों के बाद भी वे स्वतन्त्र रूप से काम करने की अपनी आन्त सवक न सके। समय बीतने के साथ-साथ केन्द्रीय सत्ता के प्रति उनका वफागारा म कभी आने लगी और अन्ततोगत्वा उन्होंने अपने-आपको अपने-अपने प्रदेशों के स्वतन्त्र शासक बना लिया। वे खुद को पेशवा के समक्ष समान लगे और उसके आदेशों के प्रति आदर भाव दिखाने में हिचकने लगे। जिन बातों में उन्हें पेशवा के पसरो पसन् नहीं होते थे, उनमें तो वे उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने का तयार थे।

इससे भी बुरा परिणाम यह सामने आया कि वह नतिक उमाद, महाराष्ट्र घम की अप्रता का वह उत्साह जो शिवाजी ने उसके हृदय में भरा था समाप्त हो गया। जाका जा उत्साह बास बप से अधिक समय तक उन्हें मुगल-साम्राज्य की शक्ति के विरोध पप पर अग्रसर करता रहा था उसका स्थान घरता और घन के लाभ ने ले लिया। नेकी और आजादी के लक्ष्य की आर कोई पचास वर्ष तक बढ़ते रहने के बाद मराठे मुगल तौर तरीका के तुच्छ अनुकर्ता-मात्र बन गए। युद्ध ने उनके आचार भ्रष्ट कर दिए आशवाद का अन्त कर दिया। वे भी दिल्ली-दरबार के भोग विलास और शान शौकत के लिए सत्तायित होने लगे। उनके मूल सद्गुणा—मिन ययिना सरलता और वतव्यपरायणता—का धीरे धीरे लोप होने लगा। किसी महान् ध्येय के लिए जीने और उसी के लिए मरने की उमंग का स्वात अहवार और आत्म-बुद्धि न ल लिया।

शिवाजी ने जिन अस्वास्थ्यप्रद राजनीतिक प्रवृत्तियों को रोक रखा था वे अब प्रवृत्त

1 पदुनाय सरदार-द्वारा 'द हाउस ऑफ शिवाजी' (1940 का संस्करण) में पृष्ठ 203-4 पर उद्धृत एक मार्टिन के 'संस्करण'

हान सर्वा। नरा क उिहानन और परवा की गद्दी के उत्तराधिकार क लिए हानेवाल विवाद मराठा-राजनीति के त्रिभू-मूल बन गए। मन्मार्जी का विरोध उनके सौतेले भाई राजाराम न किया था। गारू के वषास्थापन का विराय राजाराम की विपवा पत्नी पाराबाई न किया। गारू पुत्रविहीन था। उनके उत्तराधिकार के प्रश्न पर प्रमुख अधि वारिया के बीच सभ्य हुआ। जब राजा शक्तिहीन हो गया और पत्नी ने सत्ता हथिया ना, तब परवा की मृत्यु पर भी ऐसे ही विवाद उठ खड़े हुए।

पत्नी की शक्ति-वृद्धि न आन्तरिक ईर्ष्या-द्वेष पैदा कर दिए। एक ओर राजा और दूसरी ओर मराठा सरदार अपनी महना के इस क्षय से क्षुब्ध हो उठे और त्रिपक्षीय पद्धन्त गचकीय मानता का बराबर नष्ट श्रष्ट नरन रहे। जब गणेशजी भोगन न बगात पर मानता किया तब बहा के नवाब अनी बर्दी खा न भातले के विरुद्ध परवा का समन प्राप्त किया और उसे खदेड़ दिया (1743)। दानाबा गायनबाड और दामादे न ताराबा समन में पत्नी क प्रदल में लूट-खनाट की। चाये परवा माधवराव और उठने चाचा रघुनाथ राव एक गृह-युद्ध में उनके त्रिनमें हान्वर और भातल तथा दक्कन के शानन निबाम अना न चाचा का पग लिया (1761)। पाचवें परवा का प्रागन रघुनाथ राव-द्वारा भठकाई गई हिना के वारण हुआ (1773)। जब महादजी निधिवा उत्तर में बागहयप तक लडाइया लडन के दाा पूना पत्नी तब बहा बून अधि पबराहट मय गई और पूना के राजानि त्रिनवा नता निधिवा में पत्नी वरनदाना नाना फणबीस था, इनने भयभीत हा गए जि उठाने वानवारिस से मनूर से लौठो बन्धद रजिनष्ट उन्हें उगार द देने के लिए प्रायना का (1792)। वष भर दाना पग पत्नी-द्वार क विरुद्ध लपट का महारा लेने रह और नाना निधिवा का परामव सभद वरन के लिए हान्वर तथा जय व्यस्त्रिया के साथ मित्र वर पठदन्त करन रहा। जून में, निधिवा और हान्वर के बाध प्रत्यग युद्ध छिड गया और हान्वर का साखेरा नामक म्यान पर सवया पराजिन कर दिया गया (1793)। मन्मार्जी के उत्तराधिकारी दानन राव न ता बाजीराव क दहने पर छनपुवन नाना का बन्दी तक बना दाना और केन्द्र सरकार की राजधानी पूना का लूटन क लिए वह जमनर हा गया (1798)। नाना होन्वर और निधिवा के गमहा न राय की आधार मिलाए िला दा। रघुनाथ राव और बाजीराव दिनाय की प्रत्यग मूयता मराठा के मधर म्पी दुा में त्रिटिग ईन्ट इण्डिया-म्पी एक सहृषी घाटा युवा लार्ई। लडाइया हुई। मराठा सरदार और मन्त्रिया न आत्मघातक और परस्पर दिना-वारी सधरों में घा किया। इनसे अथेडा को लाभ हागा स्वाभाविक ही था मन् 1802 तक उठाने पत्नी का पराज-स्वाधीनता के समानि-मत्र पर ह्मनाशर करन क लिए विवग वर गया। शोध ही कय सरदारा की घर-दरद और समानि का वान पूरा किया गया और मन् 1818 तक मराठा प्रभुता का स्वप्न सवया निरोहित हो गया।

औरंगजेब के मय हानवान सभ्य क वारण अनिवाज्य किए गए प्रारम्भिक परिदरना न उन मुत्त दाये की शक्ति साध ली था मितवा निनाग उन राज्य के मस्यापन विवाजी न किया था। निगान के तौर पर जगारणाग प्रया किर से आरम्भ वर दो गई। निदमिन रूप से राजत्व-सपह सम्भव न था और अधिराजिया का वान देने का एवमात्र तरीका था, म् राज्य में स उनका अग निधारित कर दन। औरंगजेब के विरुद्ध होनेवाले युद्ध में सैना में सौन-उान वृद्धि हा गई थी। उनका धन पूरा वरन के लिए पत्नी प्रदेता

से कड़ी बसूनी की नीति अमल में लाई गई। प्रतिव्यप जाठ महीने तक उत्तर और दक्षिण, पूव और पश्चिम में लूट बटारों के लिए अभियान चलाए जाते थे, पर लूट की उस रकम का अधिपति स्वयं लोलुप सेनानायक रख लेते थे और लूट अथवा राजस्व की बहुत ही कम रकम पूना स्थित खजान तक पहुंच पाती थी। पेशवा सदा ही श्रेणप्रस्त थे और धन की याचना करते रहते थे।

बाजीराव प्रथम (1720-40) एन शूरवीर पेशवा और महान् सैनिक था। उसने निजाम के विरुद्ध बर्नाटक तक, और उत्तर में अभियाना था संचालन किया। उनसे उसे श्वाति मिली और उसने अधीनस्थ प्रदेश का विस्तार भी हुआ, पर वह श्रेणप्रस्त हो गया। 'उसकी सेनाओं के वेतन बढ़ाया रह गए, साहूकारों न गिनवा वह पहले से ही अतिव्यय रूप से कई लाख रुपये का बजटदार था, और श्रेण देने से इकार कर दिया और वह अपने शिविर में होनेवाले उन अनवरत विद्रोहों तथा उपद्रवों के प्रति घेद-गरिताप प्रकट करता रहा जिनके कारण उसे बहुत चिन्तित और दुखी होना पडा। 'पेशवा ने लिखा था, 'लेनारा से पिरा मनरक-कुण्ड में पडा हू साहूकारों' तथा 'सिल्लीदारों' को शान्त करने के लिए उनके चरणा पर पडा हू। इस प्रकार नतमस्तक होता हू कि मुझे अपने मापे से उनके चरणा की त्वचा का स्पश करना पडता है।'<sup>2</sup>

बाजीराव प्रथम के उत्तराधिकारी बालाजी राव ने सन् 1740 और 1760 के बीच कुल मिला कर 1 करोड 50 लाख रुपये का उधार लिया, जिस पर उसे 12 से 18 प्रतिशत तक ब्याज देना पडा। यद्यपि उसने सन् 1751-52 में 3 करोड 65 लाख रुपये की रकम—अधिकतम संगृहीत राशि—राजस्व के रूप में बसूल की, तथापि उसके उत्तराधिकारी माधव राव के सिंहासनारोहण के समय राज्य पर काफी बज्र बाकी था। बालाजी ने अपने मित्र नाना फटणवीस व नाम लिखे एक पत्र में अपनी आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। उसने अनुतापपूर्ण शब्दों में कहा है कि बसे हो सोने की एक धारा उत्तर से और दूमरी दक्षिण से महाराष्ट्र में बही चली आ रही है, पर "इससे हमारी प्यास बराबर बढ़ रही है।" कारण जब वह (सोने की धारा) पूना के शुष्क प्रदेशों में प्रविष्ट होगी तब ये समझता हू कि यहां अपने निर्दिष्ट तब, पहुंचने से पहले ही बिलीन हो जाएगी।"<sup>3</sup> पानीपत की लड़ाई के कारण खजान में बहुत कमी हो गई। माधव राव ने राज्य के ससाधनों का प्रयोग बहुत ही सावधानी के साथ करने का प्रयास किया, 'पर खजाना खाली हो गया।' नाना फटणवीस बहुत ही बजूस था और अपने लिए बहुत अधिक धन बटोर लेने पर भी उसने सेना को भूया मार दिया, यहां तक कि 'जब उसका शव अन्तिम सत्कार के लिए ले जाया जा रहा था, तब ड्यूटी पर तनात अरब रसक अपने वेतन की बढ़ाया रकम की मांग करते हुए बतार बना कर खड़े हा गए।"

माधव राव (1761-72) के उपरांत सिंधियाबा की शक्ति ने पेशवा के शासन को फीका कर दिया परन्तु सिंधियाबा ने भी अपनी आमदनी-खर्च में पेशवाजी जसी लापरवाही दिखाई। उन्होंने बड़ी-बड़ी सेनाएं रख लीं, मुगल-साम्राज्य के मामलों में वे दखल देने लगे और सामन्ती छल प्रपंच में शामिल होकर ऐसे किसी भी व्यक्ति के

1 प्रांट इफ, 'हिस्टरी ऑफ द मराठाज' (1921 का संस्करण) खण्ड 1, पृष्ठ 390

2 यही, पाद टिप्पणी

3 श्री० एल० सरवेतार्डे, 'द हिस्टरी ऑफ द मराठाज', खण्ड 2, पृष्ठ 242

हाथ अपनी सेवाएँ बेचने लग, जो उनकी माँ परी करने का वचन देना था। ये वचन देती सरलता से दिए जाने थे, पर उनकी पूरति के लिए सग ही वैदिक जमियाला की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार, समस्त सहाय रात्र-कर और उप-कर की रकमें खच हा जाती थीं और प्रशासन में-केन प्रकारेण जावित नर रह पाता था।

महादजी सिधिया के प्रतिनिधि-द्वारा सन् 1785 में नाना फणवीज के नान सिधे गए इन शब्दा से यह बात स्पष्ट हा जाती है 'समी प्राप्त रकमें (उसके जमीनस्य प्रान्तों से प्राप्त) पंदन सेना और तोजपाउ पर ही खच की जाती थी और सेना वा मरठा वा, अरवारही सेना भूषी मर रही थी और बहुत अद्रिभ मर्या में मेरा वा छाए कर जा रही थी। साहूजरा से बड़ी-बड़ी रकमें उधार ली गई थी। सामान्य समी साहूजरा—मरठे, गुजराती और रादों—न राजा निजा गया था।' साहूजरा की सहाई (1787) के बाद सिधिया ने फिर नाना स सहायता के लिए आग्रह किया। उसने कहा 'धन की कमी से मैं असहाय बना हू। नाना को चाहिए कि वह मेरे लिए बन-ने-बन दस लाख रुपये मुनम कर दें। मेरे सहायन समान्त हो चुके ह अत मे हिंजुस्ता में और अधि नहीं रह सकता।'<sup>2</sup>

सन् 1793 में बानवानिस ने लिखा था 'उसकी (महादजी सिधिया की उत्तर से) अनुपस्थिति में उसके राजन्व में इतनी तबी के साथ कमी हुई है कि वह उसकी सेना कर रख रखाव के लिए सबया जन्मात् हा गया है और एन० उ० दोन के अमीनस्य सैन्य-दला की अदायगी करने के विचार से कुछ विषय व्यवस्था करने के लिए उसे उन अधिकारी का तदायता जैशद नामक एक विने में करना पडा है जिसमें से प्रतिवष अनुमानत सत्तारस लाख रुपये एनज होते है उनकी सत्ता जोर सुग्या की दृष्टि से यह बदन इतना ममान है कि अय साधना के निजान्त अमाव में ही उसे यह बदन उठाना पडा हागा।'<sup>3</sup>

महादजी सिधिया सहाई में यूरोपीय प्रशिक्षण प्राप्त सेनाओं की दृष्टि से इतना प्रभावित हुआ कि उसने यूरोपीय नून पर ही एन सेना तैयार करने का निश्चय किया। पसदनों की भरती करने तथा उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए उसने कई कमीती अधिकारी नियुक्त किए। ये पसदने नहगी थी और महादजी के वचन अपनी अय पसदना की भूषा मार कर हा इन्हें नियमित रूप में वेतन दे सता था। विदेशी सनिकों की सहायता कमी भी निश्चित नहीं थी और अन्तत बदांगी निरु भी हुए। प्रशिक्षण का कमी के कारण भारतीय अधिकारी उनका स्थान नहीं न मगन थे और वित्त-अवस्था अस्वस्थित होने के कारण धन पूर नहीं किए जा सकते थे।

मराठों की विदेश-नीति भूल भरी थी। उनके कारण सरकार पर ऐन काम वा पडे थे, जिन्हें वह उठा नहीं सकती थी। सिंधिया के जन्य की 'मुल्तगीरी' में औचित्य की किन्हीं छाया विद्यमान थी क्योंकि उसे जन्म और धनायता के विरुद्ध प्रतिक्रिया माना जा सकता था। जब तक अन्तित रण के लिए आलायक के साथ युद्ध जारी रहा, इसका औचित्य भी बना रहा। परन्तु पन्जाबों के समय में हा ज्ञान विरुद्ध दवेण का रूप पटा

1. हिंजुस्तान परम रिजर्विंग टु महादजी सिधिया (1937), पृष्ठ 887-9

2. वही पृष्ठ 704-5

3. 'दूता रेडिरेमो कारेनस-देन', पृष्ठ 1 (मनुष्य सरकार-द्वारा सम्पादित), पृष्ठ 390

कर लिया। अपन आक्रमणों में वे शत्रु और मित्र का भेद नहीं करते थे। वे तो सभी स राज-शर लेते थे और ऐसा करते समय न ता अपनो सङ्घर्षमिया को छूट देते थे और न मुगल कुचीनों के उस हिन्दुस्तानी दल को जिसन राजपूता और जाटा के साथ घनिष्ठता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार, अपन शूलवा और लूट-पसाट से उहाने राजपूतो, जाटा और बुदेलों को अपना शत्रु बना लिया और उनको अत्याचारों ने बगान तथा गगा की घाटी में आतक पैला दिया। स्वयं अपने अधिकार-क्षेत्र के बाहर मराठों की दाय प्रणाली में लूट-पाट के अतिरिक्त और कुछ न था।

जिन इलाकों पर मराठे विजय पा लेते थे, वहा भी वह राज्यनीति-मूलभूत बुद्धिमत्ता का व्यवहार नहीं करते थे। वे ऐतिहासिक दमन करते थे और उन लोगों से रुपया ऐंठने के लिए बडे बरदम उठाते थे। अथ हिन्दू राज्या ने अपने द्वारा विजित प्रदेश की रक्षा सुधारने में गव का अनुभव किया। उहाने वहा मन्दिर बुरा नहरे, सडके और सावतनिर उपयोग के अथ स्थान बानाए। मराठों ने ऐसा काई काम नहीं किया। उनको 'मुल्क गौरा' हमला ने विजित प्रदेश के उद्याग तथा धन-वभव को लूट करके केवल सोन के अण्डे देवाती मुर्गी का मार डालने का ही काम किया।<sup>1</sup> शावाडे ने स्वीकार किया है कि 'विजित प्रदेशों में लोगों के सम्पत्ति पर विजय पान में पशवा असफल रहा। वहा ऐसा सन्याए स्थापित नहीं का गइ जिनसे विजित लोगों के सम्पत्ति मराठा-आदर्शों पर प्रभाव पडता और मराठों की लक्ष्य तिडि के लिए उाका समवेत सान्यन प्राप्त हो पाता। अपनी नड विजया में मराठे कन्नडिया, आंध्रो गुजरातिया, सिन्धा बुन्देला, पूर्विया और रगदा के लिए अपरिचिन ही बने रहे और इसलिये विसा बाहरा शत्रु का भय उत्पस्थित होन पर वे इन लोगों का सहायता का काम करसता न कर सके। पाठ्यपत्र-अभिध्या में मराठों का पुरानी बरावा में निहित सत्य को अनुभव कर लिया कि बठने के अतिरिक्त मगाना का उपयोग और विसी भी काम के लिए किया जा सजता है।

मराठा नेताओं की असफलता बहुत बडा अभिशाप बनी। उसने विदेशियों के लिए द्वार खोल दिया और अपना दुग दीधबाला आधिपत्य के लिए उनको हवाले कर दिया।

## 8 मिला

सिध-समाज को सरचना एक ऐसा सामाजिक व्यापार रहा है, जिनकी कुछ निजी विनिष्ठाएँ परिनिष्ठित होती हैं। सिध-मा के सन्यापन गुरु नाथ उस समय हुए, जब भक्ति-आन्दोलन पूरे धम पर था। रामानन्द बचोर रामदेव, त्रिलाचन, चनय तथा अन्य महानुभाव सत्रिय रूप से मानव के प्रति प्रेम और परमात्मा के प्रति श्रद्धा पर आधारित धर्म का प्रचार कर रहे थे। उहाने एक ही परमात्मा की आराधना, गुरु के प्रति आधर भाव और सामाहिक उपासना पर जोर दिया। उन्होंने मूर्तिपूजापणता और जातिगत भेदभाव की निन्दा का तथा हिन्दुत्व और इस्लाम के अंतर को दूर करी का प्रयत्न किया। उन्होंने सभी मनुष्या की समानता का उपदेश दिया और सद्भाव तथा धारस के जानकारी को प्रोत्साहन दिया।

1 'सम्पन्न हिस्टरी ऑफ इंडिया', खण्ड 4 (भारतीय सत्करण), पृष्ठ 414-15

2 'राजशाहज राजदिल' ( - - - - - ), पृष्ठ 189-90

गुरु नानक भी इन विचारों में भागदार बने और उन्होंने इनके प्रचार सभी वर्गों के लोगों में किया। उनके मरल और सहज उपदेश, पवित्र और न्यायनिष्ठ जीवन ईमानदारी और सच्चाई के अग्रगण्य व्यक्तियों को उनका गिण्य बनने के लिए आह्वान किया। उन लोगों में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। उनमें से कुछ लोग उच्च स्तर के भी थे, पर अधिकांशतर नाग सामान्य स्तर के थे। गुरु नानक ने उन्हें इसी सत्कार में रह कर परमात्मा के प्रति मनमग्न भावना रखने का ज्ञान और काम करने का उपदेश दिया।

गुरु नानक का वाक्य गुरु आदि और उनके उत्तराधिकारियों का प्राप्त हुआ। उनमें से अनेक व्यक्ति दानु हैं उन्नेचनीय थे। उन्होंने नानक के सन्देश का प्रचार किया और उनके धर्मानुसंधियों के समूह का एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार एक विशिष्ट धार्मिक समान रूप में सिखा का संगठन हुआ। इसीलिए अग्र सत्ता के अनुयायी वा हिन्दू-समान के ढांचे में ही संगठित रहे परन्तु सिखा ने एक विशिष्ट व्यक्तित्व पा लिया।

यह सब है कि उन्होंने हिन्दू-धर्मद्वारा और विभिन्न-व्यवस्था का अन्त विरोधनाए स्विकार कर ली थी, फिर भी हिन्दू-दबी-दबताया हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों की प्रति-पाति को ही ध्यवस्था और समाज में ब्राह्मणों का आभक्तता का स्विकार न करके सिखा ने अपने समवेत जीवन की स्वाधीनता पर बल दिया। इन दम्पुयिनि में जिन तीन गुरुओं ने विशेष योगदान किया, वे थे गुरु अर्जुन गुरु हरगोविन्द और गुरु गोविन्द सिंह। इनमें से प्रत्येक ने अपने धर्मानुसंधियों का वाक्यकल्प कर दिखाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह प्रक्रिया अन्तिम गुरु तक आते-आते पूर्ण हो गई जिनके सिखा (शिष्यों) को 'दस घान्त' (दस हुए लोग का समूह) का स्वरूप प्रदान कर दिया।

एक रहस्यप्रधान प्रयासों के माध्यमों के एक उत्तम समाज में परिवर्तन की यह प्रक्रिया धीमी होकर या अनिवाय थी। बाबर और उसके प्रथम दो उत्तराधिकारी धार्मिक विषयों में उत्तर थे। बाबर का विद्वान-अज्ञान मस्तिष्क धर्म के क्षेत्र में नए विचारों और नई अनुसंधानों के माध्यम में ही आनन्दित होना था और वह समझता था कि लोगों के ध्यवस्था में हानिना उद्देशन स्वात्म्य का विरुद्ध है। स्वभाव ही उसने सिख-धर्म के प्रचार में बाई बाधा न डाली। परन्तु सिखा पर परिवर्तन की धामा पड़ती जा रही थी और बाबर के उत्तराधिकारों उत्तर उत्तरना न थे। अहागीर ने गुरु अर्जुन को मार मार पर दन्दी बना लिया कि वह 'हत्या' धर्म के समर्थक थे। गुरु अर्जुन के पुत्र गुरु हरगोविन्द भी जगजग के वाक्यभाजन बन और पञ्जाब में उन्हें अधिकारियों के साथ मध्य करना पड़ा। उनके नेतृत्व में सिखा सत्ता की दृष्टि से बढ़ गयी और 'महात्मा' के भीतर ही एक ऐसा पदक रख्य' बना पड़े जिसका अन्तर्गत व्यक्तित्व और मना थी।

गुरु गोविन्द सिंह का मन्त्रिमन्त्र उन समय विद्यमान था जय और अज्ञेय का शासन था। सिखा के प्रति विरुद्ध जगजग और गुरु अर्जुन के वाक्यभाजन उनके मन में अग्र्य रही था। उनके अनुयायी अपने हाथों में नई भूमि पर नए जमा करने के निम्न धर्म और सत्ताति का मन्त्रिमन्त्र था। और अज्ञेय का मन्त्रिमन्त्र और उनके द्वारा 'महात्मा' का नामों ने उन्हें ही अज्ञेय पद पर सिखा सत्ता देने के लिए आह्वान कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अज्ञेयने ज्ञान और



मृत्यु के बीच के सघप में सिखा का कायावत्प अनिवाय था। गुरु गोविन्द सिंह ने गुरु नानक-द्वारा सिखाए गए धार्मिक सिद्धान्तों का प्रति एक नया उल्लाह उत्पन्न करने और निष्ठावान व्यक्तियों के उस सगठन के लक्षणा और विशेषताओं की स्पष्ट व्याख्या करके सिखा का उस सघप के लिए तैयार किया। इस प्रकार, एक रहस्यप्रधान धर्म-व्यवस्था के खालसा रूपी सखि धर्म-व्यवस्था का रूप ग्रहण किया। गुरु गोविन्द सिंह ने इस विरादरी में कुछ नई और राबक वाता का भी समावेश किया। उन्होंने गुरु का पद समाप्त कर दिया और ऐलान किया कि भविष्य में अथ साहब को ही गुरु माना जाएगा और जहाँ भा पाच सिख एवत्र हागे, वही गुरु की आत्मा विद्यमान रहेगी। इन पाच का चुगाव सभा सिखा-द्वारा किया जाना था। इस प्रकार पूरे 'पाच' का ही इस ढंग से सगठित कर दिया गया कि वह उनका पय प्रदर्शन और गुरु बन गया।

दुर्भाग्यवश, ये विचार फलीभूत न हो सके। गुरु गोविन्द सिंह और औरगजेव का देहान्त हा जाने पर गुरु-मुद्द आनमण और अराजकता का युग आरम्भ हो गया और पञ्जाब एक भयकर उथल-पुथल में ग्रस्त हा गया। सिखा को भी इसमें शामिल होना पडा। शाही सत्ता शाध्रता से शिथिल पडन लगी और नादिर शाह तथा अहमद शाह अफगाना के हमलो ने इस सम्पन्न प्रान्त को अव्यवस्थित और विनाश का श्रीडास्यल बना दिया। उस समय सिख ही ऐसे एकमात्र व्यवस्थित समुदाय के रूप में विद्यमान थे, जिसने उस विनष्ट प्रदेश में सगति की छाया बनाए रखी। इसीलिए आक्रमण की वाढ़ उतरते ही राजनीतिक खाइ पाटने के लिए वे जागे बड़ आए।

यह अवश्य है कि इस अवधि के सघपों में खालसा की अखण्डता भी अखण्ड न रह सकी। इसका विशेष कारण यह था कि उह एक बनाए रखनेवाला कोई असाधारण नेता नही था। सिख वारह वर्गों (मिस्लो) में बटे थे, जिमें से प्रत्येक वर्ग अपना हा अस्तित्व बनाए रखन में सघपरत था। वर्ग विशेष के सरीणतामूलक हितों की रक्षा का स्वभाव न उन्हें पारस्परिक सघपों में लगा दिया। नानक और गोविन्द सिंह ने इनमें धार्मिक निष्ठा और आध्यात्मिक अभ्युदय की जो भावना भरी थी, सिख विरादरी के प्रति त्याग और सेवा की जो भावना भरी थी, वह शक्ति और आत्म वृद्धि की आशा का परिपूरित हो गई। धर्म-व्यवस्था जधम राजनीतिक भार के नीचे दब गई।

उसी समय सिख-समाज में एक अथ महान् नेता का उदय हुआ, पर सिखा की प्रवृत्ति में परिवर्तन आ चुका था और राजनीतिक शक्ति की आकांक्षा धार्मिक सदाचार पर अधिकार का चुकी थी। महाराजा रणजीत सिंह का नेता के उत्कृष्टतम गुण प्राप्त थे। वह निभय और दण्डतापूण सेनानायक, महान् व्यवस्थापक, सुयोग्य प्रशासन और चतुर राजनीतिज्ञ था। अपने उद्देश्यों की सिद्धि में वह निमम हो था पर अत्याचारी नहा। उसमें उदारता दया और आतिथ्य भाव था। वह अपने समय तथा अपने वर्ग की सम्झोरिया में आवद्ध था। हृदय से धर्मपरायण न होने पर भी वह धर्माध्यक्षों के प्रति न केवल आनुरूपण, बल्कि विायपूण भा था।

रणजीत सिंह एक छटे-मे सघ का सरदार था पर अपने पराक्रम से उसने सतलुज की दाइ आर की सभी सिख मिस्तरा को अपने अधीन कर लिया और फिर मुद्द अथवा बूटनीति-द्वारा उसने विशाल प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया, जिसमें

सिद्ध से परे वेतार मूल्यात कमतर कारण और पहासी पहासी राज्य तथा साम्राज्य के कदाचित् इनात धानित थे।

व्यवस्थापक के नाते राजात सिंह का मुख्य उद्देश्य यी समा का बालून रूप परिवर्तन। उक्त एउ अनियमित व्यवस्था व नामक के रूप में बाधारम्भ किया था। परन्तु धार-का उक्त एक ऐसा सेवा का साज्ज कर लिया, जिसमें मुरासिप नम्ने पर उँमार का गँ एउ पैदन-सना थी, सुप्रसिद्ध तापजाना था और एउ नियमित व्यवस्था था। युद्ध की व स्वाधिक शक्तिगाल, व्यवस्था थी, और किसी भी एगिपार्ट मूल्या कनेमा श्रेष्ठत थी।

उपरी समा साति का मूल्य रणजित सिंह ने यह तथ्य मुता यिा कि समा राज्य का एक साज्ज-मन्त्र हूँ है का अर्थ यह स्वनिता बन जाता है तब राज्य सफट में पड जाता है। जनन जननिक प्रदानत का अर्थ उक्त विषय ध्यान नहीं दिया। उक्तो वित्त-व्यवस्था मनुकी थी और दावनी तथा कौजरायि मय प्रान्तन का मार सराज पर छा दिया गया था।

राज्यत सिंह ने यह श्रेय तबय प्राप्त है कि उक्तन अपन समय में पत्राव में फला बन्द-व्यवस्था में स ए. नुमाश्रित सरकार का टावा घटा कर लिया, पर मुरासिपक बहु राजा कमजा नीवीं पर बना। उक्तन राज्य धानिक निग्र-यान्य नहीं माना जा करता था। वह सिद्ध-विद्यार्थी की स्वच्छा-पुनर् की गई सांगे-दाय भी नहीं थी, बरकि सतसुत्र-भार की सिद्ध मिन्मा को बतसुत्रक इकट्ठा किया गया था और सतसुत्र क रथ पार के वीं न उक्त अधीन हुना अस्वेकार करके वस्तुत अज्ञेय का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। परिणामत त्रित सिद्धों ने कप्तन-काफला उक्त हाथ में छाड दिया था उक्तो भी वक्षानत पुनत हासिक नहीं थी।

राज्यत सिंह ने समा धानिक ठाँवों का जनन साम के लिए इकट्ठा करन का प्रयत्न किया। उक्तो अधीन हिन्दू, मुसलमान और निग्र अधिकांश का अधिस्तन उत्तराधित्व पर प्राप्त थे और यह धनगत भेदभाव रजे बिना सब पर भरोसा करता था। परन्तु यह सब हान पर भी क्रियसात व्यक्तित्व रूपस पूरी बनायाते और उताह क साम जाका सेवा करत थे, व राज्य व साम स्पेह क किसी बधन स नहीं बधे थे। मना में या उक्त शक्ति का मुताधार यी साधारण पदा पर भा और अधिकांशों में भाटिन्दू मुसलमान और सिद्ध थे। उक्तो मुरासिप सेना-नायका और हिन्दू मुसलमान तथा सिद्ध सेना-पत्री और कप्तनों ने तदाश्या में बहा चौहर लिया। परन्तु व सब स्वय मतायका राज्यत सिंह के लिए मदे— वम जाति बपका था व लिए नहीं।

राज्यत सिंह का वा पत्राव पर अनेक वरीं तरु शक्तिन कर करता था पर मुरासिपका उत्तर पुत्र-पौत्रों में ऐजा काँ न था त्रिनत बनता उक्तो रूप प्रहा किया ही। भारत में अज्ञेय-जानन की स्थापना के कारण राजनीतिक परिस्थितियों में धी, बालून परिवर्तन हुआ था। स्वय राज्यत सिंह के समय में अज्ञेय पत्राव क वारी और एक मतिव प्राधर घटा कर रहे थे। उहाँने उके सतसुत्र के पार बढ़ने स श्रेष्ठ किया था, सिद्ध पर बन्या कर लिया था और अज्ञेय-विज्ञान की धार के अज्ञा प्रभाव बढ़ा रहे थे। नव समय कठ तेरी के रूप भारत के उत्तर-पश्चिमा प्रद-द्वारों

का ओर बढ़ रहा था अतः, रुम के साथ अंग्रेजों की प्रतिद्वन्द्विता स पन्ना के उगम स्वतन्त्र राज्य में भी उसी प्रकार की कठिनाईयाँ पैदा होना अनिवार्य था जैसी इसी कारण आगे चल कर अफगानिस्तान में पैदा हुई। इस स्थिति में यह सदेहा स्पष्ट ही है कि रणजात सिंह के उत्तराधिकारी बहुत समय तक स्वाधीनता का उपभोग कर पाते। सघन अनिवाय था और बहिष्कृत्यपूर्ण प्रजाजन वाले एक स्वेच्छाचार। शासक तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं में बंध देश प्रेम से ओतप्रोत लोगों के समयभर पर आधारित एक शक्तिशाली आधुनिक सरकार के बीच होनेवाले उस युद्ध का परिणाम एक ही हो सकता था।

पंजाब के इस सिंह का देहान्त होने पर अंग्रेजों और सिखों के बीच होनेवाली लड़ाइयों में यह तथ्य भलीभांति प्रकट हो गया। देखते-ही-देखते उसके राज्य का वह विशाल प्रासाद टूट कर गिर पड़ा और धूल में मिल गया। कुछ लड़ाइयाँ लड़ी गई, जिनमें से कुछ अनिर्णीत रही, परंतु उस सगठन ने सुदृढ़ प्रतिरोध की कौर शक्ति व्यक्त नहीं की। इनमें शौर्य की कमी न थी—उस पक्ष के सैनिकों ने शूरवीरों की भांति युद्ध किए, बात तो यह थी कि सय अधिकारी अथ-लोलुप और भ्रष्ट थे। वे तुच्छ ईर्ष्या-द्वेष, निवृष्ट स्वायत्त और विश्वासघातपूर्ण भावनाओं में प्रस्त थे। इसीलिए वह भव्य सेना खण्ड-खण्ड होकर विनष्ट हो गई।

सिख राजतन्त्र की इस कथा से अनेक उपयोगी शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं। पहली बात तो यह स्पष्ट हो जाती है कि भारत में कभी भी सुयोग्य नेताओं—चरित्र-सम्पन्न और सुयोग्य व्यक्तियों—की कमी नहीं रही, और दूसरी बात यह कि क्षमता और श्रेष्ठता का एकाधिकार किसी एक ही समाज अथवा वर्ग को प्राप्त नहीं होता। रणजीत सिंह के दरबार का जिन प्रकाश-युजा ने आलोकित किया, वे विश्व के किसी भी भाग में किसी भी सरकार को अपनी आभा से आलोकित कर सकते थे। उनमें वे लोग भी थे, जो समाज के निम्न वर्गों से उद्भूत थे और वे भी, जिनका जन्म उच्च वर्गों में हुआ था—उनमें ब्राह्मण, राजपूत और जाट, खत्री, गूजर और मुसलमान दुकानदारों, धिंदमतगारों, व्यापारियों और नौकर-चाकरो के पुत्र भी शामिल थे आर धनी तथा राज-परिवारों के बच्चे भी।

मराठा और मुगलों की भांति सिखा का भी पराभव योग्य तथा ऊँचस्वी व्यक्तियों के अभाव के कारण नहीं अपितु उस भावना के अभाव के कारण हुआ, जो व्यक्ति का योग्यता तथा ऊर्जा को पूरे समाज की सेवा तथा भगल-नामना पर आश्रित कर देती है और इस प्रकार मनुष्य के पृथक्ता तथा क्षणभंगुरतामूलक तत्त्वों को सावभौमिकता एवं शाश्वतता प्रदान कर देती है। इसी दृष्टि से श्रेष्ठ व्यक्ति भी विफल रहे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते भारत तेजी के साथ भयंकर प्रतिरोध की ओर अग्रसर हो रहा था। जिस मुगल-साम्राज्य ने दो सौ वर्ष तक भारत के राज-कुमारों और प्रजाजन का एकीकृत राजनीतिक पद्धति की ओर से बाधे रखा था, वह आन्तरिक विष्वस और उत्तर-पश्चिम से होनेवाले हमला की दाहरी शक्तियों का शिकार हो चुका था। केन्द्रीय सत्ता के ह्रास के साथ-साथ केवल राजनीतिक शक्ति ही विनीत नहीं हुई और मलबदी ने ही अपना कुटिल मस्तिष्क ऊपर नहीं उठाया बल्कि आचरण तथा व्यवहार में भी सामान्य गिरावट आ गई। समाज

गैर-निष्ठा से कभी वा गई। बहूकार और धन तथा शक्तिसिद्धि ने समवेत  
 रित की नाव धोखली कर दी। अविलम्ब व्यक्तिगत लाभ की इच्छा ने लोगों  
 के राज बना दिया। बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता ने उनका इतना अधिप परिखाया  
 कि वे न तो अपनी नीतियों के तात्कालिक परिणामों का ही पूर्वागुमा  
 करने से और न सच्चे मित्रों तथा शत्रुओं को पहचान पाते थे। जा पड़ता  
 कि नियति ही उन्हें आत्म विनाश की ओर धीरे लिए जा रही थी।

पुनः शान्त के अन्त से सभी वर्गों की क्षति हुई। अधिवाहियों तथा खण्ड  
 शक्तियों के दमन ने किसानों को कुचल डाला। सरकाको के आर्याप्य षष्ठिवादियों  
 रक्षित हो जाने के कारण कारीगरों को हानि पहुँची। पञ्जाब में, जहाँ से होकर  
 बाणिज्य बाराका जाया करत थे, अस्त-व्यस्तता की स्थिति उत्पन्न हो जाने के  
 कारण अल्पकाल में स्वयं-भागों से विदेशों के साथ होनेवाले व्यापार में बाधा उत्पन्न  
 होने तथा भारत तक आनेवाली समुद्री जलधाराओं पर उन यूरोपीय शक्तियों  
 का अधिकार हो जाने के कारण, जिनके समुद्री बेड़े सर्वोपरिता के लिए प्रतिस्पर्धित्व  
 प्रारंभ से और माल के लाने-ले जाने के विधिसम्मत व्यवसाय के प्रति घुड़ और  
 शत्रुता में भाग लेने लगे थे, कारीगरों तथा व्यापारियों, दोनों की क्षति पहुँची।  
 विशेषी व्यापार व्यापारियों के हाथ से निकल गया और गृह-गुण तथा कुलीन वर्ग की  
 विपन्नता ने देश के आन्तरिक व्यापार में बाधा, उत्पन्न कर दी।

## अठारहवीं शताब्दी में आर्थिक परिस्थितियाँ

मध्य-काल के अन्त में यूरोपीय अर्थ-व्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषता थी वाणिज्य का विस्तार। नगरों में उद्योग का विकास हुआ और इससे व्यापार को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार, एक ऐसे बग का जन्म हुआ, जिसने आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वह मध्य-बग था। वह न तो सामन्ती कुलीनों का बग था और न पतिहर श्रमिका का। इस बग के उदय ने सामन्ती यूरोप का रूप ही बदल दिया और उस शक्तियों को गतिशील बना दिया जिनकी परिणति राष्ट्रीय राज्यों के विकास में हुई। यही कारण था कि नगरों में पहले मध्य वित्त-बग के माध्यम से यूरोप की सामाजिक शक्ति पूरी हुई।

वस्त्रों का व्यापार और उद्योग

दूसरी ओर भारत में परिस्थितियाँ भिन्न थीं। यद्यपि आत्मनिर्भरता और आजीविका-मूलक कृषि संयुक्त भारत की ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था की अनेक बातें मध्य कालीन यूरोप की कृषि-व्यवस्था से मिलती-जुलती थीं, फिर भी भारत के वस्त्रों का व्यापार तथा उनके कला-शैली और वाणिज्य की संरचना का यूरोप की नगरीय व्यवस्था के साथ नाममात्र का भी साम्य नहीं था। भारत में वस्त्रों की बिक्री नहीं थी, पर उनमें ऐसे वस्त्रे घाटे ही थे जिनका अस्तित्व केवल उद्योग अथवा व्यापार पर निर्भर था। आबादी बढ़ने के साथ-साथ वहाँ उद्योग और व्यापार का विकास हुआ, पर इस बात में वे यूरोपीय नगरों से भिन्न थे कि उनके नागरिक जीवन पर आर्थिक मामलों का प्रभुत्व नहीं था। भारतीय वाणिज्य बग यूरोप के मध्य-बग से—प्रकृति, वायों तथा उद्देश्यों, सभी के नाते—पूणतः भिन्न था। औद्योगिक विकास अथवा राजनीतिक-बातों पर इसका प्रभाव नहीं था जसा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम में मध्य वित्त-बग का था। इसलिए भारत में न तो औद्योगिक क्रान्ति हुई और न एक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्रीय राज्य का ही विकास हो पाया। यहाँ वाणिज्य बग ने एक उद्यम तथा पुनर्स्थापनाशील औद्योगिक बग को भी जन्म नहीं दिया।

अनुमान लगाया गया है कि अक्बर-द्वारा शासित प्रदेशों में 120 नगर और 3,200 वस्त्रे थे। आगरा की आबादी अनुमानतः पाँच-छ लाख थी। यह आबादी तत्कालीन लन्दन की आबादी से अधिक थी। इस दृष्टि से दिल्ली का मुकामला पेरिस के साथ किया जा सकता था। अहमदाबाद लन्दन के लगभग बराबर था। साहौर का स्थान यूरोप के किसी भी नगर के बाद का नहीं था और पटना की आबादी लगभग दो लाख थी। पर इतनी अधिक आबादी का बावजूद, ये नगर अपने मुकामले के यूरोपीय नगरों की बराबरी नहीं कर सकते थे क्योंकि इनमें वस्त्रे स्वतन्त्र सम्पत्ति विद्यमान नहीं थे—उनकी स्थापना यूरोपीय नगरों और वस्त्रों में व्यापारोन्मत्तों ने करनी थी। अठारहवीं शताब्दी में लड़ाइयों हमलों

अठारहवीं शताब्दी में आर्थिक परिस्थिति

और बच आपसजा न विध्वन मचा दिया जोर उत्तर में लाहौर, दिल्ली, आगरा मयूरा, आदि नगर और दक्षिण में देव के विलुप्त भूमा तवाह हो गए। भारत के समुद्र-तटदरती भागा में यूरपीय व्यापारियों के उदय न बृष्ट सीमा तक उक्त विनाश की क्षतिपूर्ति कर दी। वे मोन चांग के बदले में भारतीय वस्तुएँ खरीदने के और इस प्रकार उद्योग का बड़ावा देन थे।

उच्चतर वर्गों की आवश्यकता-पूर्ति करनेवाले भारतीय बलाकौल केवल नगरा तक ही प्रतिबन्धित न थे। कुलनाययोग वस्तु-उद्योगों में नगरा और गावा दोना नही प्रयाता प्राप्त की थी। पारागरा के विभिन्न तमूह उत्पादन के विभिन्न अंग वा वायमार सम्भालने के और विशेषतः मित्र-जुल कर बिन्नी-योग्य वस्तुएँ तैयार करते थे। मिता के तौर पर, सूती कपड़े के उत्पादन में रई धुतनेवालों वाननेवालों, बुननेवालों रगनेवालों, विरजना, छापनेवालों आदि के स्वतन्त्र समूह थे। औद्योगिक विशेषता वा एव और प्रकार वा, विशेष गावा तथा कस्बा में कुछ नगर के अलग-अलग भागा में बने थे, बड़ई, जोहरी, लाहार तेली आदि अपनी अपनी बस्तियों में रहते थे। उदाहरणतः कुछ गावों में मोटा सूती कपड़ा तयार होता था इगरा में मन्मल और कुछ में पगडिदा तयार की जाती थी। कामदार कपड़ा (कामधवा) रानी कपड़ा, सोने चाँदा के तारा (गोट विनारी) से बना कपड़ा विभिन्न स्थानों पर विशेष रूप से बनाया जाता था।

विशेषतः प्रयोगा में बृद्धि होती है। इसीलिए अपनी बारीगरी की प्रयोगा वा दृष्टि से भारत के बारागरा ने उस समय के सगार में बना अद्वितीय स्थान बना दिया था। उद्योग-विपन्न मगल और प्रविधिवा की दृष्टि से भी भारत पश्चिम की तुलना में बड़ा आगे था। भारतीय उद्योग-द्वारा निर्मित वस्तुएँ केवल एशिया-अफ्रीकी देगा वा आवश्यकता-पूर्ति नहीं करती थीं, अपितु यूरपीय मण्डलों में भी उनका बहुत माग थी। वे वस्तुएँ समुद्र तथा म्बन्-भागों से पश्चिम देगा में पहुँचती थीं।

पूर्वी वस्तुओं के आपूर्तिकर्ता भारतीय व्यापार इगन वा छोड़ और लात सगार से मन्मन् बररागहों में प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित थे। वे बाराग, बामुल बलत्र बुयारा कानार आदि में, अरुआनिम्बान और मध्य-एशिया में, ईगन में शीरुड इम्फहान से तथा मेनेर में और रूप में बाकू अम्बानान, तिनी नोवो रो आदि में मा पर्याप्त मध्या में विद्यमान थे। रूप के पाटर महानु के कपडानुमार, भारत वा बाणिज्य विद्य वा बाणिज्य है और जा व्यक्ति एवान्त उद्योग निर्वाण कर गरा है वही मूरोन वा कानागह है।

गालाय वस्तुएँ पूव एशिया देगों—बर्मा, मलाया, इदानीया, चीन गालाय—में मा जा पहुँची वा। कोरोमण्डल-तट और बगान इन वस्तुओं के आपूर्ति-केन्द्र थे।

औद्योगिक संरचना

भारतीय उद्योग में दक्षिण दिश प्रसार की माँग पूरी करने की अगता की जाती

थी। इनमें से एक उन आम लोगों की आवश्यकताओं से सम्बद्ध थी जिनमें से अधिकतर गावों में रहते थे और दूसरी का सम्बन्ध समाज के उच्चतर वर्गों से था।

जो उद्योग श्रमीण जनता की आवश्यकताओं के लिए निमित्त वस्तुएं सुलभ करते थे, उनकी सरचना पुराने ढंग की थी। कारीगर वय के कुछ महीना में खेती करते थे, क्योंकि उनके उत्पादना की मांग समग्रत इतनी अधिक नहीं थी कि वे पूरे वय उस उद्योग में लगे रह सकें। गावा में वस्तु विनिमय प्रथा-द्वारा नियन्त्रित होता था और कारीगरों की मजदूरी, जो घेत से सम्बद्ध प्रत्येक किसान का अंश वहा की उपज में से निर्धारित करके चुवाई जाती थी पुरानी प्रथा के आधार पर निश्चित की जाती थी—मांग और आपूर्ति की मण्डी विपयक शक्तियों के आधार पर नहीं।

ऊचे वर्गों—सामायत भद्रों और धनी व्यापारियों—की मांग में विलास की वस्तुओं का समावेश था। इसकी मात्रा काफी थी। धनी व्यक्तियों ने, सध्या में अपेक्षाकृत कम होने पर भी विलास की वस्तुओं की काफी मांग पैदा कर दी थी, क्योंकि उन्हें जीवन की अच्छी वस्तुएं प्रिय थी और वे उपयोग तथा प्रदर्शन, दोनों की दृष्टि से उत्कृष्ट रीति से धनी महंगी वस्तुएं प्राप्त करना चाहते थे। ऐसी वस्तुओं की मांग देश के बाहर भी थी और उनका उल्लेखनाय परिमाणों में निर्यात किया जाता था।

बहुत बढ़िया रिस्म की विलास की वस्तुएं बनानेवाले उत्पादक या तो अपने घरों में ही काम करते थे, या कस्बों में स्थित सरकारी कारखाना में। गाव के कुछ कारीगर भी, जिन्होंने अपने काय विशेष में दक्षता प्राप्त कर ली थी, अपने-अपने गाव में रह कर भी उन वस्तुओं की मांग की पूर्ति किसी हद तक करते रहते थे।

यहां के कारीगरों का संगठन यूरोप के श्रमिक-संघों (गिल्डों) जितना मजबूत नहीं था। गुजरात वह एकमात्र इलाका है, जहां सुव्यवस्थित शिल्प-संघ विद्यमान होने का प्रमाण मिलता है। आमतौर पर, पुराने कारीगर उस व्यवसाय में आनेवाले नए कारीगरों को प्रशिक्षण दिया करते थे। शिल्प-पुस्तना व्यवसाय होता था और कारीगर किसी विशेष जाति का सदस्य होता था। अतः श्रमिक-संघ जाति की सत्ता का अतिश्रमण नहीं कर पाता था। वस्तुतः उक्त व्यापार से सम्बन्धित सभी मामलों उस जाति-की पचायत और चौधरी के सामने रख दिए जाते थे। इस प्रकार, यूरोपीय श्रमिक-संघों के प्रशासनात्मक काय भारत में जाति-द्वारा पूरे किए जाते थे।

मध्य-कालीन यूरोप की उद्योग-व्यवस्था का एक अर्थ पहलू अर्थात् कारखाना से अलग रह कर काम करने की तरिका भारत में भी प्रचलित हुआ। चूंकि अधिकतर कारीगर निधन थे इसलिए उन्हें उन व्यापारियों के लिए काम करना पड़ता था जो उन्हें या तो दलाला की माफन पेशगी धन दे दते थे या गुमाश्ता के माध्यम से उनके साथ तेन-तेन किया करते थे। कारीगरों का औजारों तथा कच्चे माल के लिए धन दिया जाता था और तयार वस्तुओं के बदले पेशगी मजदूरी दे दी जाती थी। जब तक पूरा निर्धारित परिमाण में वस्तुएं तयार नहीं हो जाती थीं और उन पर व्यापारी की मुहर नहीं लग जाती थी, तब तक कारीगर को व्यापारी के लिए काम करना ही पड़ता था। आमतौर पर निर्धारित तयार वस्तुओं को इकट्ठा करके मण्डी में बेचने के लिए लाता था। कभी-कभी कुलीन लोग कारीगरों के साथ स्वयं सौदे कर लेते थे। इससे उन्हें शरीर कारीगरों के साथ सख्ती करने के मौके मिल जाते थे।

वे सरकारी कारखाना सबसे सुव्यवस्थित थे जो सल्तनता की राजधानियों में

थे। बतियार<sup>1</sup> ने ऐसे बड़े-बड़े कमरा का काम किया है जिनमें विभिन्न कारीगर काम करते थे। वे 'मातिहा' और 'दारागाँव' की देख रेख तथा नियन्त्रण में रह कर काम करते थे। कारखाने उन शामका—नुरेना और प्रान्णपनिया—के प्रत्यक्ष सरक्षण में चलते, थे, जो वहाँ के काम में गहरा दिलचस्पी लेते थे। वे विशेष पुरस्कार देकर प्रतिभाशाली कारीगरों को प्रोत्साहित करते थे और बतियार की जानेवाली यन्त्रा की विस्म सुधारण में भी सहायता देते थे।

उत्पादन-काय समग्रत छोटी छोटी इकाइयाँ—बुछ कारागरा के परिवारा—के रूप में होता था। उनकी आय साधारण होती था और पूरा काम व्यापारियों से प्रेशगी रकम मिलने या सुरक्षित की सहायता पर हा निभर करता था। उद्योग में लगी पूँजी कम थी और उम यह समबल स्वरूप नहीं मिल पाया था जो यूरोप में मिल गया था। इनके अलावा, प्रत्यक्ष व्यवसाय एक ऐसी जाति पर आधारित था जो एक अग्रजि शील गमदायक रूप में थी। इसमें एक व्यापार व्यवसाय स दूसरे मध्यमिका व म्यादाकरण और विभिन्न व्यवसाया व धोंन का पारस्परिक सहयोग यदि मवया अमम्भा रही तो बठिठ अवश्य बना लिया।

भारतीय गांव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिभर इकाइया थी। गांव की जनता व आसपास का गिना तुनी था और व प्राय गांव व भीतर हा पूरी भी हा जाती थी बाकी बाकी पान भू रान्ध के रूप में नरेश का भिन जाती थी और किमान के पास सरकारी माग पूरी करने व बा, ऐसा अधिस बुछ शेष नहीं रह पाता था जिससे वह नागरिक उद्योग-द्वारा बना बन्गुए खराद सन। ऐसा परिस्थितिया में गांव की नगर के बाव होनाउन निनिमय का धारा धीग ही रहनी था। गाँव के अभास, जनि रा बचना की पुनर्ना और गांव तथा गहर के बाव होनाउन व्यापार व नोम्ब्या व युग व्यापार तथा साहारा व काम में नो परम्पना व्यापारा-बाँव का पुरासाय हा वे नो नु-नो-नो-नो-नो-नो का ग्राह्य करने से रोक रखा।

गांव का सरल तथा स्वायत्तत्वमय अव-व्यवस्था और गाँव के बराबर दृष्टिगत व एत-दुनर पर प्रभाव डाला और व दाना पन्धर प्रभावित भी हुए गाँव का धमप्रजा प्रगति व भीतर इन्तर्ओं के प्रति बराबर भावना हा उत्तर का ऐंद्रा इच्छा का ताँटि का जोर बड़ पाहा और उनका दान पुन सनगा गाँव था। समाजि भना एक ब्रजाव थी। गमना-वम अस्थिर और गाँववाता यह था ह और इसी नहा यह बडिमान व्यक्तिता का प्रप्य नहीं बन सनता था। नरन ओ गाँव नमात नया गाँव के प्रान्त से आलनाष्टि बन कर वे और उज एमा करना उचित बन गाँव जाए पर धुल्लर गाँव ता व गाँव तथा औरा डेब निय पर तब बरहा ता सन थे। बाकी तथा मन्त्रा व किमुत्या जी बराग ही बरनिभ आना तप्य थे। हा प्रगर ता ननि वानावल्प पुानेव व जन हिल व गोर व हा नरना विवार प्रया ल्य किन्ना और मनामना व उत्तराष्ट्रार किन्ना वाना पतिारो म बहूत सनप तब धन कायन गज में स्याय हने व पुताव व्यक्तिता व दहा पर उनही ताँति राजा-द्वारा हथिया जन का प्रना

1 गाँव बतियार के नाम पर गाँव (बातबर गाँव) का नाम (स्मिथ द्वारा गाँव) 1934 पृष्ठ 258-59



उस लोका में एक पुस्तकी घना-वग का जन्म नहीं होने दिया। जय विज्ञान की ओर भारतीय विद्वानों ने ध्यान ही नहीं दिया।

जिन व्यापारियों साहूकारों और रुपया उधार देनेवालों ने भारतीय वणिज्य-मन्त्रालय का निर्माण किया और जिन्हें उस समय का एक प्रकार का मध्यम-वर्ग समझा जा सकता है, उन्होंने धन तो बहुत कमाया पर अपनी पूँजी का त्रिंशत् विनिर्माण उद्योगों की स्थापना तथा विकास के लिए नहीं किया। उन्होंने उस धन का उपयोग शासक-समाज के सम्स्या का बहुत अधिक याज्य पर ऋण देना और कारीगरों को उनके द्वारा बनाई तथा सुलभ की जानवाली वस्तुओं की अग्रिम रकम अदा करने में ही किया। उन लोगों में उद्यम की उस भावना का अभाव था जो यूरोपीय उद्योग का प्रधान शक्ति-स्रोत थी। इसके अलावा समवेत सघ और श्रमिक विद्रोह बना कर काम करनेवाले यूरोपीय व्यापारियों से भिन्न भारतीय व्यापारी व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक रूप से पथकत व्यापार करते थे।

भारतीय उद्योग यद्यपि पूँज्य-मूर्खवादी स्तर का ही बना रहा और भारत में औद्योगिक मध्यम-वर्ग का भी विकास नहीं हुआ, तथापि विनिर्मित वस्तुओं के विविध और उत्पादन विधियों के नाते उस समय भारत समकालीन यूरोप की तुलना में औद्योगिक दृष्टि से बड़ी आगे था। भारत की मध्य-कालीन जय-व्यवस्था के इतिहासकार मोरलण्ड के भी जिसका इकाव भारत की उपलब्धियों के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की ओर नहीं हो सकता था यह स्वीकार किया कि मेरी समय से तो यह बात अब भी निर्विवाद है कि उद्योग के क्षेत्र में भारत, आज की तुलना में, उस समय पश्चिमी यूरोप से कहीं आगे था।<sup>1</sup>

भारतीय उद्योग और संस्कृति की महानता तथा मौलिकता के सम्बन्ध में पाइराड का साक्ष्य स्यायी रूप से महत्त्वपूर्ण है। उसका कथन है 'सक्षेप में मैं एक ओर सोने, चांदी लोहे इत्यादि ताम्र तथा अन्य धातुओं, और दूसरी ओर हीरे जवाहरात कीमती सक्की तथा जय मूल्यवान् एवं दुर्लभ पदार्थों से विनिर्मित वस्तुओं की विविधता का पूरा वर्णन कभी नहीं कर सकता। बात यह है कि वे सब बहुत चालाक हैं और किसी भी बात में पश्चिम के लोगों के ऋणी नहीं हैं क्योंकि उन्हें उससे अधिक प्रखर मेधा प्राप्त है जो हम लोगों में प्रायः पाई जाती है और उनके हाथ भी हमारी भाँति निपुण हैं किसी भी काम को वे एक बार देख अथवा सुन कर सीख जाते हैं। वह वास्तव में, धान्य और शिल्प प्रवीण जाति है। हाँ, वे लोग न तो दूसरों को धोखा देने के अभ्यास में न स्वयं सरलता से धोखे में आते हैं। उनसे द्वारा कनी सभी वस्तुओं की एक सामान्य विशेषता यह है कि वे बला की दृष्टि से उत्कृष्ट भी होती हैं और सस्ती भी। मने चतुर व्यक्तिगत में उतनी तहजीब-समीक्ष और बहा नहीं देखी, जितनी इन भारतवासियों में दृष्टिगत होती है। इनमें बस बबर अथवा असंस्कृत कोई बात नहीं है जो हम प्रायः इन लोगों में समझा करते हैं। यह सत्य है कि वे लोग पुनर्जातियों के चोर-नरीने अपनाते को तयार नहीं हैं, फिर भी उनसे वस्तु निर्माण तथा कारीगरी के सम्बन्ध में जानने के लिए अविलम्ब तत्पर हो जाते हैं क्योंकि वे सभी जाकारी पाने में बहुत ही आराभी तथा जिगमू हैं। वस्तुतः पुनर्जातियों ने इन्हें जो कुछ दिया है, उसमें

1. इन्डियन एज० मोरलण्ड, 'इण्डिया एण्ड इट्स आक गवर्नर', पृष्ठ 155-56